अक्तूबर-दिसम्बर, 2017 [संयुक्तांक]

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय

संपादक
विनोद कुमार आर्य

महत्वपूर्ण निर्णय

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 3 – हितबद्ध साक्षी – घटना के दौरान नातेदार साक्षियों का आहत होना – स्पष्ट साक्ष्य दिया जाना – नातेदार साक्षियों द्वारा घटनाक्रम से संबंधित स्पष्ट साक्ष्य दिया गया है, इसलिए उनके साक्ष्य को इस आधार पर अविश्वसनीय नहीं ठहराया जा सकता कि वे हितबद्ध साक्षी हैं और उनके साक्ष्य के आधार पर की गई दोषसिद्धि न्यायोचित होगी ।

मुत्तइकोस उर्फ **सुब्रह्मणि** बनाम **तमिलनाडु राज्य** मार्फत **पुलिस निरीक्षक** 189

संसद् के अधिनियम

गर्भधारण पूर्व और प्रसवपूर्व निदान-तकनीक (लिंग चयन प्रतिषेध) अधिनियम, 1994 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (31)

पृष्ठ संख्या 1 – 196 [2017] 4 उम. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका – अक्तूबर-दिसम्बर, 2017 [संयुक्तांक] [पृष्ठ संख्या 1 – 196]

संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि,
सेवानिवृत्त अपर विधि सलाहकार,
विधि मंत्रालय

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु
गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

डा. ऋषिपाल सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं विधायी
परामर्शी, राजभाषा खंड

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री विनोद कुमार आर्य,
संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री असलम खान और पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 57

वार्षिक : ₹ 225

© 2017 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

अक्तूबर-दिसम्बर, 2017

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
पवन **उर्फ** राजिन्दर सिंह **बनाम** हरियाणा राज्य	47
बचपन बचाओ आंदोलन **बनाम** भारत संघ और अन्य	1
बालकृष्णन् **बनाम** भारत संघ और अन्य	23
बिहार राज्य **बनाम** अनिल कुमार	56
मुत्तइकोस **उर्फ** सुब्रह्मणि **बनाम** तमिलनाडु राज्य **मार्फत** पुलिस निरीक्षक	189
राज तलरेजा **बनाम** कविता तलरेजा	146
वसंत संपत दुपारे **बनाम** महाराष्ट्र राज्य	155
सुधा रेनुकैय्या और अन्य **बनाम** आंध्र प्रदेश राज्य	115
सुरैन सिंह **बनाम** पंजाब राज्य	98
सोउ (डा.) जयाश्री उज्जवल इंगोले **बनाम** महाराष्ट्र राज्य और अन्य	87
हरि शंकर शुक्ला **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य	79
हिमांशु मोहन राय **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य	32

संसद् के अधिनयम

गर्भधारण पूर्व और प्रसवपूर्व निदान-तकनीक (लिंग चयन प्रतिषेध) अधिनियम, 1994 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 – 31

पृष्ठ संख्या

आय-कर अधिनियम, 1961 (1961 का 43)

– धारा 10(37) [सपठित भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 की धारा 4, 6 और 9 तथा भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता अधिकार अधिनियम, 2013] – कृषि भूमि का अनिवार्य अर्जन – बातचीत के आधार पर प्रतिकर की रकम तय किया जाना – आय-कर विभाग द्वारा आरंभ में प्रतिकर की रकम को पूंजी अभिलाभ शीर्ष के अधीन प्रभार्य आय न मानते हुए स्रोत पर की गई कर कटौती का प्रतिदाय किया जाना – बाद में भूमि के अर्जन को अनिवार्य अर्जन न मानकर स्वेच्छया विक्रय मानते हुए निर्धारण पुनः खोला जाना – अपीलार्थी ने मुकदमेबाजी से बचने के लिए बातचीत का रास्ता अपनाया था और अंतिम प्रतिकर की रकम सहमति के आधार पर तय होने मात्र से भूमि के अनिवार्य अर्जन के स्वरूप में परिवर्तन नहीं हो जाता है ।

बालकृष्णन् बनाम **भारत संघ और अन्य** 23

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 465 [सपठित अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 9] – अन्वेषण की शक्ति का प्रदान किया जाना – राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति से संबंधित अपराधों के मामले में पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से नीचे के पुलिस अधिकारियों/ कर्मचारियों द्वारा अन्वेषण किया जाना प्राधिकृत कर सकते हैं, बशर्ते अभियुक्त के प्रति कोई पक्षपात या न्याय की अवहेलना न हो ।

बिहार राज्य बनाम **अनिल कुमार** 56

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 299 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872

पृष्ठ संख्या

की धारा 3] – आपराधिक मानव वध – अपीलार्थी द्वारा मृतक पर हाथापाई के दौरान गोली चलाया जाना – अभियोजन साक्षियों के कथन में संगतता – मृतक पर अपीलार्थी द्वारा उसके तमंचे से हाथापाई के दौरान गोली चलाई गई है, ऐसी स्थिति में छोटे-मोटे विरोधाभासों के बावजूद अपीलार्थी को दोषमुक्त नहीं किया जा सकता किंतु चूंकि अपीलार्थी को भी क्षतियां कारित हुईं हैं इसलिए उसके दंड में कमी की जा सकती है ।

हरि शंकर शुक्ला बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** 79

– धारा 300 – हत्या – अचानक हुई लड़ाई में मृत्यु कारित किया जाना – धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से यह साबित होने पर कि पक्षकारों के बीच अचानक हुई लड़ाई में अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा एकदम अपनी कृपाण निकालकर मृतकों को पहुंचाई गई क्षतियों के परिणामस्वरूप उनकी मृत्यु हुई, इससे यह साबित होता है कि हमला पूर्वचिंतन और मृत्यु कारित करने के आशय के बिना आवेश की तीव्रता में किया गया था और अभियुक्त द्वारा कोई असम्यक् लाभ नहीं लेने और अप्रायिक या क्रूरतापूर्ण रीति में कार्य नहीं करने के कारण उसे धारा 300 के अपवाद-4 का फायदा लागू होता है और धारा 304 भाग-2 के अधीन दोषसिद्ध करना उचित होगा ।

सुरैन सिंह बनाम **पंजाब राज्य** 98

– धारा 302 – हत्या – सेशन न्यायालय द्वारा अभियुक्त को दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति – अभियुक्त द्वारा मृतक पर बंदूक की गोली चलाने की बाबत प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का परिसाक्ष्य सत्य और विश्वसनीय पाए जाने तथा साक्षी द्वारा

पृष्ठ संख्या

अभियुक्त को मिथ्या रूप से फंसाए जाने के हेतु के बारे में तनिक भी साक्ष्य न होने पर छुट-पुट संदेहों और तकनीकियों के आधार पर उच्च न्यायालय द्वारा की गई अभियुक्त की दोषमुक्ति को स्वीकार नहीं किया जा सकता है तथा सेशन न्यायालय के निर्णय को कायम रखना उचित होगा ।

हिमांशु मोहन राय बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य** 32

– धारा 302 – हत्या – मृत्यु दंडादेश में परिवर्तन के लिए आवेदन – अपीलार्थी द्वारा बर्बरतापूर्वक हत्या किया जाना – आहत की आयु केवल 4 वर्ष होना – विचारण न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत मृत्यु दंडादेश की पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा होना – मामले का विरल से विरलतम मामले की कोटि में आना – गुरुतरकारी परिस्थितियों का प्रभावी होना – गुरुतरकारी परिस्थितियों अर्थात् बर्बरतापूर्वक रीति से जिसमें अपराध कारित किया गया है और आहत की आयु केवल 4 वर्ष होने से उपशमनकारी परिस्थितियां स्पष्ट रूप से विचार में लाने योग्य नहीं हैं और मामला विरल से विरलतम मामले की कोटि में ही आता है, अतः मृत्यु दंडादेश में कोई भी हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

वसंत संपत दुपारे बनाम **महाराष्ट्र राज्य** 155

– धारा 302 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – हत्या – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का विलंबित होना – पुलिस थाने से घटनास्थल का दूर होना – आहत को सर्वप्रथम अस्पताल भेजना – घटना 4.30 बजे अपराह्न में घटित हुई थी और उसके तत्काल पश्चात् आहत को अस्पताल ले जाया गया, ऐसी स्थिति में घटनास्थल से छह किलोमीटर दूर पुलिस थाने में 11.30 बजे अपराह्न में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराना विलंबित

पृष्ठ संख्या

नहीं कहा जा सकता ।

मुत्तइकोस उर्फ **सुब्रह्मणि** बनाम **तमिलनाडु राज्य** मार्फत **पुलिस निरीक्षक** 189

– धारा 302 और 34 [सपठित आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25] – यदि साक्ष्यों के मूल्यांकन करने पर यह पाया जाता है कि अभियोजन अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 और आयुध अधिनियम की धारा 25 के अधीन दंडनीय अपराध के आरोप को साबित करने में असफल रहा तो अपराध युक्तियुक्त संदेह से परे साबित न होने के कारण अभियुक्त दोषमुक्त किए जाने के हकदार हैं ।

पवन उर्फ **राजिन्दर सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य** 47

– धारा 302 और 149 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – हत्या – सामान्य उद्देश्य – क्षतिग्रस्त और प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों का साक्ष्य – जहां क्षतिग्रस्त साक्षी सहित प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों ने अभियोजन पक्षकथन का पूर्ण समर्थन किया और भिन्न-भिन्न अभियुक्त व्यक्तियों की भूमिकाओं को साबित किया वहां अभियोजन पक्षकथन को मात्र इस आधार पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि यह सामूहिक प्रतिद्वन्द्विता और शत्रुता का मामला है ।

सुधा रेनुकैय्या और अन्य बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** 115

– धारा 302 और धारा 376 – बलात्संग और हत्या – 4 वर्ष की बालिका के साथ अपीलार्थी द्वारा बलात्संग किया जाना और तत्पश्चात् उसकी पैशाचिक रूप में हत्या करना – आहत को अपीलार्थी के साथ अंतिम बार साइकिल पर देखा जाना – चिकित्सीय साक्ष्य से बलात्संग और नृशंस हत्या की पुष्टि होना – मृतका के गुप्तांगों पर पाई गई क्षतियां चिकित्सीय साक्ष्य के अनुसार बलपूर्वक

पृष्ठ संख्या

मैथुन किए जाने से कारित हो सकती हैं और बरामद किए गए पत्थरों से पीट-पीट कर हत्या करने की संपुष्टि होती है, ऐसी स्थिति में निचले दोनों न्यायालयों द्वारा निकाला गया दोषसिद्धि का निष्कर्ष न्यायोचित है ।

वसंत संपत दुपारे बनाम **महाराष्ट्र राज्य** 155

– धारा 304क – उपेक्षा द्वारा मृत्यु – उपेक्षा का साबित न होना – अपीलार्थी का काल पर बुलाए जाने वाले चिकित्सक के रूप में कार्य करना – काय चिकित्सक की आवश्यकता होना – काय चिकित्सक के आने के पूर्व ही अपीलार्थी का रोगी के पास से चले जाना – अपीलार्थी को बुलाए जाने पर वह रोगी का उपचार करने रोगी के पास आई और उसने उसके शरीर में कोई भी रक्तस्राव होता नहीं पाया और न ही कोई क्षति देखी, अतः अपीलार्थी ने काय चिकित्सक को बुलाए जाने की सलाह दी और वह काय चिकित्सक को आने के पूर्व ही रोगी की परीक्षा करके चली गई किंतु अपीलार्थी को किसी भी व्यक्ति द्वारा पुनः चिकित्सा के लिए नहीं बुलाया गया, ऐसी परिस्थितियों में अपीलार्थी को उपेक्षा के कारण रोगी की मृत्यु के लिए दायी ठहराना उचित नहीं होगा ।

सोउ (डा.) जयाश्री उज्जवल इंगोले बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य** 87

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 32 [सपठित किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015 की धारा 2(14), धारा 3, धारा 77 और 78] – स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ से बालकों का संरक्षण – लोक हित याचिका – बालकों को अल्कोहल, तम्बाकू और ओषधि दुरुपयोग की प्रवृत्ति से संरक्षित करना केंद्रीय, राज्य सरकार और अन्य सरकारी अभिकरणों की बाध्यता है और

पृष्ठ संख्या

राष्ट्रीय, राज्य और क्षेत्रीय स्तर पर स्वापक ओषधि दुरुपयोग का एक आंकड़ा तत्काल तैयार किया जाना चाहिए और राष्ट्रीय स्तर पर विद्यालय पाठ्यक्रम में अल्कोहल, तम्बाकू और ओषधि दुरुपयोग से निपटने के लिए विषयवस्तु सम्मिलित करने के साथ-साथ एक व्यापक राष्ट्रीय योजना विरचित और अंगीकार की जानी चाहिए ।

बचपन बचाओ आंदोलन बनाम **भारत संघ और अन्य** 1

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

– धारा 3 – हितबद्ध साक्षी – घटना के दौरान नातेदार साक्षियों का आहत होना – स्पष्ट साक्ष्य दिया जाना – नातेदार साक्षियों द्वारा घटनाक्रम से संबंधित स्पष्ट साक्ष्य दिया गया है, इसलिए उनके साक्ष्य को इस आधार पर अविश्वसनीय नहीं ठहराया जा सकता कि वे हितबद्ध साक्षी हैं और उनके साक्ष्य के आधार पर की गई दोषसिद्धि न्यायोचित होगी ।

मुत्तइकोस उर्फ **सुब्रह्मणि** बनाम **तमिलनाडु राज्य** मार्फत **पुलिस निरीक्षक** 189

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– धारा 13(1)(ia) – क्रूरता के आधार पर पति द्वारा पत्नी के विरुद्ध विवाह-विच्छेद की डिक्री की ईप्सा – पत्नी द्वारा पति, उसके परिवार के सदस्यों के विरुद्ध मानहानिकारक अभियोग लगाया जाना – जांच करने पर सभी अभियोग मिथ्या पाया जाना और पत्नी के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही आरंभ किया जाना – निचले न्यायालयों द्वारा पत्नी की शिकायत को मिथ्या और असद्भाविक न मानते हुए पति की विवाह-विच्छेद की अर्जी खारिज किया जाना – यदि यह पाया जाता है कि अभिकथन स्पष्ट रूप से मिथ्या हैं तब निस्संदेह पति या पत्नी द्वारा एक-दूसरे के विरुद्ध मिथ्या अभियोग लगाने का ऐसा आचरण क्रूरता का

पृष्ठ संख्या

कृत्य होगा और चूंकि इस मामले में पत्नी के सभी अभिकथन मिथ्या पाए गए हैं इसलिए विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करके विवाह का विघटन करना उचित होगा ।

राज तलरेजा बनाम **कविता तलरेजा** 146

तुलनात्मक सारणी

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

[2017] 4 उम. नि. प.

अक्तूबर-दिसम्बर, 2017

क्र. सं.	निर्णय का नाम व तारीख	उम. नि. प.		ए. आई. आर. (एस. सी.)		एस. सी. सी.	
1	2	3		4		5	
1.	बचपन बचाओ आंदोलन **बनाम** भारत संघ और अन्य (14 दिसंबर, 2016)	[2017] 4	1	2017	754	(2017) 1	653
2.	बालकृष्णन् **बनाम** भारत संघ और अन्य (11 जनवरी, 2017)		23		-	2	634
3.	हिमांशु मोहन राय **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य (7 मार्च, 2017)		32		1425	4	161
4.	पवन **उर्फ** राजिन्दर सिंह **बनाम** हरियाणा राज्य (8 मार्च, 2017)		47		1323	4	140
5.	बिहार राज्य **बनाम** अनिल कुमार (23 मार्च, 2017)		56		2716	-	-

1	2	3			4		5	
6.	हरि शंकर शुक्ला **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य (5 अप्रैल, 2017)	[2017] 4	79	2017	1959		(2017) -	-
7.	सोउ (डा.) जयाश्री उज्जवल इंगोले **बनाम** महाराष्ट्र राज्य और अन्य (6 अप्रैल, 2017)		87		-		-	-
8.	सुरैन सिंह **बनाम** पंजाब राज्य (10 अप्रैल, 2017)		98		1904		5	796
9.	सुधा रेनुकैय्या और अन्य **बनाम** आंध्र प्रदेश राज्य (13 अप्रैल, 2017)		115		2124		-	-
10.	राज तलरेजा **बनाम** कविता तलरेजा (24 अप्रैल, 2017)		146		2138		-	-
11.	वसंत संपत दुपारे **बनाम** महाराष्ट्र राज्य (3 मई, 2017)		155		2530		6	631
12.	मुत्तइकोस **उर्फ** सुब्रह्मणि **बनाम** तमिलनाडु राज्य **मार्फत** पुलिस निरीक्षक (3 जुलाई, 2017)		189		-		-	-

[2017] 4 उम. नि. प. 1

बचपन बचाओ आंदोलन

बनाम

भारत संघ और अन्य

14 दिसंबर, 2016

मुख्य न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर, न्यायमूर्ति ए. एम. खानविलकर और न्यायमूर्ति (डा.) डी. वाई. चंद्रचूड़

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 32 [सपठित किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015 की धारा 2(14), धारा 3, धारा 77 और 78] – स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ से बालकों का संरक्षण – लोक हित याचिका – बालकों को अल्कोहल, तम्बाकू और ओषधि दुरुपयोग की प्रवृत्ति से संरक्षित करना केंद्रीय, राज्य सरकार और अन्य सरकारी अभिकरणों की बाध्यता है और राष्ट्रीय, राज्य और क्षेत्रीय स्तर पर स्वापक ओषधि दुरुपयोग का एक आंकड़ा तत्काल तैयार किया जाना चाहिए और राष्ट्रीय स्तर पर विद्यालय पाठ्यक्रम में अल्कोहल, तम्बाकू और ओषधि दुरुपयोग से निपटने के लिए विषयवस्तु सम्मिलित करने के साथ-साथ एक व्यापक राष्ट्रीय योजना विरचित और अंगीकार की जानी चाहिए ।

इन कार्यवाहियों में, जो बचपन बचाओ आंदोलन द्वारा संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन संस्थित की गई हैं, भारत में बालकों में मादक द्रव्यों और मदिरा के उपयोग में हो रही खतरनाक वृद्धि पर फोकस किया गया है । यह याचिका बालकों, विशेषकर जो मादक पदार्थ के उपयोग और दुरुपयोग से ग्रस्त हैं और अंतर्वलित हैं, के मूल अधिकारों को प्रवर्तित करने के लिए लोक हित में संस्थित की गई है । याची ने इस न्यायालय से भारत संघ से बालकों में मादक द्रव्यों, मदिरा और मादक पदार्थ के दुरुपयोग के मुद्दे पर बालकों के लिए राष्ट्रीय कार्रवाई योजना विरचित करने और क्रियान्वित करने के लिए परमादेश जारी करने हेतु हस्तक्षेप की मांग की है । याची के अनुसार इसमें पहचान, अन्वेषण, स्वास्थ्य लाभ, सलाह और पुनर्वास से संबंधित मुद्दे इसकी परिधि के भीतर आने चाहिएं । यही विशिष्ट रूप से

मुख्य अनुतोष है जिसकी ईप्सा की गई है । अन्य आनुषंगिक निदेशों में विद्यालय पाठ्यक्रम में समुचित विषयवस्तु सम्मिलित करने के लिए कदम उठाना ; समन्वयकारी निकाय का सृजन ; विद्यालय के प्रधानाचार्यों और पुलिस पर मादक द्रव्यों और मादक पदार्थ के दुरुपयोग की रिपोर्ट करने के लिए आज्ञापक कर्तव्य घोषित करना ; प्रत्येक जिले और तहसील स्तर पर व्यसन-रोधी केंद्र स्थापित करना ; बालकों को वर्णित मादक द्रव्यों के प्रयोग की अपहानि से सुरक्षित रखना ; राष्ट्रीय डाटाबेस तैयार करना और बालकों को तम्बाकू, शराब और मादक द्रव्यों की आपूर्ति करने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध मामलों के रजिस्ट्रीकरण का निदेश देना सम्मिलित है । इन कार्यवाहियों में पूरक अनुतोषों का भी दावा किया गया है । उच्चतम न्यायालय द्वारा रिट याचिका का निपटान करते हुए,

अभिनिर्धारित – 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत 44 करोड़ बालकों से अधिक की सामर्थ्य वाला विश्व का सर्वाधिक बालक जनसंख्या का देश है । इसमें, देश की जनसंख्या के 24 प्रतिशत गठित करने वाले 24 करोड़ बच्चे प्रौढ़ हैं । वे सामाजिक, शैक्षिक, नैतिक और शारीरिक विकास के लिए एक संवेदनशील आयु समूह गठित करते हैं । भारत में पदार्थ दुरुपयोग के व्यापक प्रचार से बालकों को संरक्षित करने की एक वृहत नीतिगत चुनौती झेल रहा है । शासकीय और प्राइवेट दोनों अभिकरणों की हाल ही की रिपोर्टों में यह उपदर्शित है कि नवयुवकों में पदार्थों के उपयोग और दुरुपयोग में सारवान् वृद्धि हुई है । राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण, 2005-06 के रूप में संपूर्ण देश में एक प्रतिनिधायी घरेलू नमूने के आधार पर देशव्यापी सर्वेक्षण किया गया । याची ने कई रिपोर्टों का अवलंब लिया जो बालकों में पदार्थ दुरुपयोग की प्रकृति और विस्तार को उपदर्शित करते हैं । इनमें से कई ने नीति की विरचना और क्रियान्वयन की सिफारिश की है । विश्वसनीय आंकड़े का सृजन पदार्थ दुरुपयोग को रोकने के लक्ष्यित नीति की आवश्यक अपेक्षा है । राष्ट्रीय, राज्य और क्षेत्रीय स्तर पर सही आंकड़ों के अभाव में, नीति हस्तक्षेप केवल तदर्थ ही बना रहेगा । आंकड़े के अभाव में, संवेदनशील राज्यों और क्षेत्रों ; अधिक जोखिम जनसंख्या ; संपूर्ण राज्यों में गैर व्यसन केंद्रों सहित अवसंरचना की अपेक्षा ; प्रशिक्षित मानव शक्ति की अपेक्षा ; और पुनर्वास उपचार और सलाहकार सेवाओं की अपेक्षा, को ध्यान में रखते हुए अपेक्षित नीति हस्तक्षेपों की प्रकृति और विस्तार का कोई वास्तविक निर्धारण नहीं होगा । आधारभूत कमी है जिसे केंद्रीय सरकार को आरंभ में ही दूर करना चाहिए । न्यायालय निदेश देता है कि केंद्रीय सरकार आज से छह मास की अवधि के भीतर ओषधि दुरुपयोग पर यथाशीघ्र

राष्ट्रीय सर्वेक्षण कराएगा । केंद्रीय सरकार ने यह उल्लेख किया है कि ओषधि मांग कमी की राष्ट्रीय नीति को अंतिम रूप दिया जा रहा है । हस्तक्षेप के पूर्विकता क्षेत्रों में सभी स्तरों और अंतर-क्षेत्रीय सहयोग स्तरों पर कौशल मानव शक्ति निर्माण, शिक्षा और जागरूकता निर्माण को ध्यान में रखते हुए सेवा प्रदाताओं की क्षमता निर्माण और प्रशिक्षण सम्मिलित होगा । नीति गैर व्यसन केंद्रों की अभिवृद्धि की व्यवस्था को स्वीकार करने का भी प्रस्ताव करती है । न्यायालय की दृष्टि से, नीति को प्रत्येक जिले में गैर व्यसन केंद्र की स्थापना करने की आवश्यकता और विशेषकर बालकों सहित अधिक जोखिम मानवों के संदर्भ में विनिर्दिष्ट संवेदनशीलता पर ध्यान देना चाहिए । न्यायालय यह निदेश देता है कि यह कार्य पूरा किया जाए और आज से छह मास की अवधि के भीतर एक राष्ट्रीय नीति विरचित की जाए । विद्यालय पाठ्यक्रम में अल्कोहल, तम्बाकू और ओषधि दुरुपयोग विषयक मुद्दों से निपटने के लिए संपूर्ण हल स्वीकार करने के महत्व को पर्याप्त रूप से बल दिया जाना चाहिए । न्यायालय का यह मत है कि चूंकि संपूर्ण मुद्दा सरकार के पास विचाराधीन है इसलिए अंतिम विरचना की प्रतीक्षा करना उचित होगा । तथापि, न्यायालय यह उपदर्शित करता है कि विस्तारित शीर्षक या विषय के भीतर ऐसे महत्वपूर्ण विषय के "विवक्षित समामेलन" पर विराम देने के बजाय, यह उचित होगा यदि सक्षम प्राधिकारी यह विचार करें कि ऐसे बालकों को पदार्थ दुरुपयोग के खतरे से संरक्षित किया जाए । यह ऐसे विषय हैं जिनको कालीन के अंदर छिपाया नहीं जाना चाहिए । प्राधिकारियों को विचार करना चाहिए कि कैसे बालकों को ओषधि उपयोग के खतरों, ओषधि उपयोग को रिपोर्ट करने की आवश्यकता और व्याप्त अभिजात और सामाजिक दबाव से प्रतिरोध विकसित करने की आवश्यकता से बालक को संवेदनशील बनाया जाए । समस्या की अधिकता एक कार्यवाही में सभी मुद्दों से निपटने के लिए न्यायिक प्रक्रिया को अव्यवहार्य बनाती है । न्यायालय ने उपरोक्त तीन व्यवस्थित मुद्दों पर विचार किया । न्यायालय को केंद्र सरकार की विद्यमान नीतिगत अवसंरचना के आधार पर ऐसा करना पड़ा जैसा ऐसी सामग्री द्वारा प्रदर्शित है जिसका उल्लेख न्यायालय ने इस निर्णय के प्रारंभिक भाग में किया है । न्यायालय ने न्यायिक पुनर्विलोकन के प्रयोग में अधिकथित नहीं किया है । न्यायालय ने विद्यमान विधायी और प्रशासनिक अवसंरचना के अधीन बाध्यताओं को प्रवृत्त करने का निदेश दिया है । न्यायालय यथापूर्व उपदर्शित केंद्रीय सरकार को संक्षेप में अपना निदेश देने की प्रक्रिया आरंभ करते हैं ; केंद्रीय सरकार, राष्ट्रीय सर्वेक्षण पूरा करेगी और छह मास की

अवधि के भीतर राष्ट्रीय डाटाबेस बनाएगी ; चार मास की अवधि के भीतर एक व्यापक राष्ट्रीय योजना विरचित करेगी और अंगीकार करेगी जो अन्य बातों के साथ-साथ पूर्व उद्धृत तत्काल चिंताओं के क्षेत्रों के बारे में होगी ; और एन. ई. पी. के. तत्वावधान में विद्यालय पाठ्यक्रम में विशिष्ट अंतर्वस्तु को अंगीकार करेगी । (पैरा 2, 10, 11, 12, 14, 15 और 16)

आरंभिक (सिविल) अधिकारिता : 2014 की रिट याचिका सं. 906.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट याचिका ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री एच. एस. फूल्का, ज्येष्ठ अधिवक्ता, जगजीत सिंह छाबरा, अमरजीत सिंह बेदी, भूवन रिभू, (सुश्री) एन. विद्या, (सुश्री) शिल्पा दीवान और सक्षम महेश्वरी
प्रत्यर्थी की ओर से	सर्वश्री मनीन्दर सिंह, अपर महासालिसिटर, (सुश्री) वी. मोहना, अशोक भान, ज्येष्ठ अधिवक्ता, सी. डी. सिंह, अपर महाधिवक्ता, एस. वसीम, ए. कादरी, (सुश्री) रेखा पांडेय, आर. एस. नागर, जी. एस. मक्कर, डी. एस. मेहरा, (श्रीमती) अनील कटियार, डा. संजय गुप्ता, कुलबीर सिंह मलिक, अजय सिंह, डा. सुशील बलवादा, (सुश्री) साक्षी कक्कर, संदीपन पाठक और (सुश्री) अनीन्दिता पुजारी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (डा.) डी. वाई. चंद्रचूड़ ने दिया ।

न्या. (डा.) चंद्रचूड़ – इन कार्यवाहियों में, जो बचपन बचाओ आंदोलन द्वारा संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन संस्थित की गई हैं, भारत में बालकों में मादक द्रव्यों और मदिरा के उपयोग में हो रही खतरनाक वृद्धि पर फोकस किया गया है । यह याचिका बालकों, विशेषकर जो मादक पदार्थ के उपयोग और दुरुपयोग से ग्रस्त हैं और अंतर्वलित हैं, के मूल अधिकारों को प्रवर्तित करने के लिए लोक हित में संस्थित की गई है ।

याची ने इस न्यायालय से भारत संघ से बालकों में मादक द्रव्यों, मदिरा और मादक पदार्थ के दुरुपयोग के मुद्दे पर बालकों के लिए राष्ट्रीय कार्रवाई योजना विरचित करने और क्रियान्वित करने के लिए परमादेश जारी करने हेतु हस्तक्षेप की मांग की है । याची के अनुसार इसमें पहचान, अन्वेषण, स्वास्थ्य लाभ, सलाह और पुनर्वास से संबंधित मुद्दे इसकी परिधि के भीतर आने चाहिएं । यही विशिष्ट रूप से मुख्य अनुतोष है जिसकी ईप्सा की गई है । अन्य आनुषंगिक निदेशों में विद्यालय पाठ्यक्रम में समुचित विषयवस्तु सम्मिलित करने के लिए कदम उठाना ; समन्वयकारी निकाय का सृजन ; विद्यालय के प्रधानाचार्यों और पुलिस पर मादक द्रव्यों और मादक पदार्थ के दुरुपयोग की रिपोर्ट करने के लिए आज्ञापक कर्तव्य घोषित करना ; प्रत्येक जिले और तहसील स्तर पर व्यसन-रोधी केंद्र स्थापित करना ; बालकों को वर्णित मादक द्रव्यों के प्रयोग की अपहानि से सुरक्षित रखना ; राष्ट्रीय डाटाबेस तैयार करना और बालकों को तम्बाकू, शराब और मादक द्रव्यों की आपूर्ति करने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध मामलों के रजिस्ट्रीकरण का निदेश देना सम्मिलित है । इन कार्यवाहियों में पूरक अनुतोषों का भी दावा किया गया है ।

2. 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत 44 करोड़ बालकों से अधिक की सामर्थ्य वाला विश्व का सर्वाधिक बालक जनसंख्या का देश है । इसमें, देश की जनसंख्या के 24 प्रतिशत गठित करने वाले 24 करोड़ बच्चे प्रौढ़ हैं । वे सामाजिक, शैक्षिक, नैतिक और शारीरिक विकास के लिए एक संवेदनशील आयु समूह गठित करते हैं । भारत पदार्थ दुरुपयोग के व्यापक प्रचार से बालकों को संरक्षित करने की एक वृहत नीतिगत चुनौती झेल रहा है । शासकीय और प्राइवेट दोनों अभिकरणों की हाल ही की रिपोर्टों में यह उपदर्शित है कि नवयुवकों में पदार्थों के उपयोग और दुरुपयोग में सारवान् वृद्धि हुई है । राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण, 2005-06 के रूप में संपूर्ण देश में एक प्रतिनिधायी घरेलू नमूने के आधार पर देशव्यापी सर्वेक्षण किया गया । याची ने कई रिपोर्टों का अवलंब लिया जो बालकों में पदार्थ दुरुपयोग की प्रकृति और विस्तार को उपदर्शित करते हैं । इनमें से कई ने नीति की विरचना और क्रियान्वयन की सिफारिश की है ।

3. निर्णय के इस भाग में, हम उपरोक्त वर्णित रिपोर्टों की अंतर्वस्तु को व्यापक रूप से संक्षिप्त करेंगे :–

(i) 12वीं पंचवर्षीय योजना 2012-17 की विरचना के लिए प्रौढ़ और युवा विकास की योजना आयोग की कार्य-समूह की रिपोर्ट –

"नवयुवकों में पदार्थ दुरुपयोग बढ़ रहा है । यह दबाव या तनाव और कुंठा के कारण हो सकता है । बच्चे अपने स्वास्थ्य और अपने जीवन के दुरुपयोग की पूर्ण जटिलताओं से पूर्णतः अवगत नहीं हैं । मादक द्रव्य माफिया और उत्पादक संघ शहरों और नगरों में नवयुवकों को अपना लक्ष्य बनाते हैं और एक बार उनके आदी हो जाने पर यह उनके लिए एक आसान बाजार हो जाता है ।"

(ii) बालक अधिकार संरक्षण पर राष्ट्रीय आयोग द्वारा अनुसंधान अध्ययन (अगस्त, 2013) :

5-18 आयु वर्ग के बीच 4024 बालकों का अंतिम अध्ययन नमूने लिए गए । अध्ययन यह उपदर्शित करता है कि –

".....15-19 वर्ष (संख्या 13009) की आयु के लड़कों में से 28.6 प्रतिशत तम्बाकू उपयोग करने वाले और 11 प्रतिशत अल्कोहल उपयोग करने वाले पाए गए । इसी प्रकार, 15-19 वर्ष (सं. 24811) आयु की लड़कियों में से, 3.5 प्रतिशत तम्बाकू उपयोग करने वाली और 1 प्रतिशत अल्कोहल उपयोग करने वाली पाई गईं । पूर्व सर्वेक्षण (एन. एफ. एच. एस.-2, 1998-99) की तुलना में बढ़ती प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है जहां अल्कोहल का उपयोग लड़कों में 2.4 प्रतिशत और लड़कियों में 0.6 प्रतिशत पाया गया था । इसके अतिरिक्त यह प्रतीत होता है कि उन लोगों में से, जो 'शराब पीते हैं', में से लड़के और लड़कियों में से काफी लोग कम से कम साप्ताहिक (18.3-39.8 प्रतिशत) या लगभग रोजाना (3.4-6.8 प्रतिशत) अल्कोहल का उपयोग कर रहे हैं ..... अधिकांश जीवन भर भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थों का उपयोग करते पाए गए हैं । 83.2 प्रतिशत तम्बाकू और 68 प्रतिशत अल्कोहल का उपयोग आम पदार्थ के रूप में है जिसके बाद भांग (35.4 प्रतिशत), अंतर्वाही (34.7 प्रतिशत), फार्मास्युटिकल्स अफीम (18.2 प्रतिशत), उपशामक (7.9 प्रतिशत) और हिरोइन/स्मैक (7.9 प्रतिशत) आते हैं । इंजेक्शन पदार्थों के उपयोग का पर्याप्त अनुपात (12.6 प्रतिशत) है ।"

अध्ययन से बालकों में पदार्थ दुरुपयोग के पैटर्न से संबंधित कई मुख्य मुद्दे दिखाई पड़ते हैं :–

* तम्बाकू और अंतर्वाही पदार्थों का उपयोग प्रायः दैनिक आधार पर किया जाता है । कई अन्य पदार्थों का उपयोग पिछले महीने में गैर-प्रतिदिन या विरामी आधार पर किए जा रहे थे ।

* अध्ययन से यह पता चला कि प्रारंभिक मध्य आयु तम्बाकू के लिए (12.3 वर्ष) न्यूनतम थी और इसके पश्चात् अंतर्वाही (12.4 वर्ष), भांग (13.4 वर्ष), अल्कोहल (13.6 वर्ष) का उपयोग था । इसके पश्चात् कठोर पदार्थों-अफीम, हिरोइन (14.3-14.9 वर्ष) की आयु द्वारा उपयोग किया जाता है और अंततः इंजेक्शन माध्यम से (15.1 वर्ष) पदार्थों का उपयोग किया जाता है ।

* अध्ययन में क्षेत्रीय मुद्दों और अधिमानों को उजागर किया । पदार्थों की रुचि कुछ भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में देखी गई ।

* अध्ययन में समाज की मुख्य धारा में बालकों के पुनर्वास और एकीकरण से संबंधित विभिन्न अन्य मुद्दों को भी उजागर किया गया ।

* सिफारिशें :

1. अध्ययन में निवारण और उपचार के कार्यक्रम आरंभ करने की घोर आवश्यकता को उजागर किया है । देश के बालकों में पदार्थ के उपयोग की समस्या के बारे में राज्य सरकारों और सभी महत्वपूर्ण पणधारियों को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है ;

2. निवारण कार्यक्रम का लक्ष्य विशेषकर पदार्थ का उपयोग करने वाले बालकों, इंजेक्शन वाले पदार्थ का उपयोग करने वाले बालकों, गली के बालकों, बाल श्रम में लिप्त बालकों, मानव व्यापार से ग्रस्त बालकों, अवैध कामुकता से जात बालकों और जोखिमग्रस्त किसी अन्य प्रवर्ग के बालकों संवेदनशील बालकों के बहुल प्रतिवेश और बहुल जोखिम कारकों के लिए होगा ;

3. विद्यालयों के निवारण में शिक्षा और जीवन कौशल कार्यक्रम जैसे सार्वभौमिक निवारण कार्यक्रमों को शामिल किया जाना चाहिए । विद्यालय जाने वाले ऐसे बच्चे जिनकी जोखिम में जाने की अधिक संभावना है, को विद्यालय व्यवस्था के अंतर्गत वृत्तिक सलाह दी जानी चाहिए ।

4. ऐसे बालकों को जो पदार्थों का उपयोग कर रहे हैं के लिए विशेष उपचार सेवा उपलब्ध कराने की आवश्यकता है । ऐसी सेवाएं सरकारी अस्पतालों ; सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय द्वारा वित्तपोषित, गैर-सरकारी संगठनों और ऐसे गैर-सरकारी संगठनों जो आवारा बालकों को सेवाएं उपलब्ध कराते हैं, द्वारा भी उपलब्ध कराई जानी चाहिए । गैर-सरकारी संगठनों में पुनर्वास सहित सरकारी व्यसन निवारण केंद्रों/गैर-सरकारी संगठनों के साथ जुड़े सामुदायिक केंद्रों में निर्विषीकरण उपलब्ध होना चाहिए ;

5. कौशल निर्माण पर फोकस डालते हुए, पुनर्वास प्रयास और व्यावसायिक प्रशिक्षण, गैर-सरकारी संगठनों द्वारा उपलब्ध कराया जाना चाहिए ;

6. किशोर न्यायगृह और बालगृहों में उपचार सेवा को जोड़ते हुए, पदार्थ का प्रयोग करने वाले बालकों के लिए उपचार सेवा का उपबंध किया जाना चाहिए ;

7. गैर-सरकारी संगठनों द्वारा ऐसे बालकों के लिए जो इंजेक्शन द्वारा पदार्थ का उपयोग कर रहे हैं, सेवा की व्यवस्था करने की आवश्यकता है । एन. ए. सी. ओ./एस. ए. सी. एस. द्वारा कार्रवाई की जाए ;

8. निवारण प्रयासों का लक्ष्य मांग और आपूर्ति की कमी के प्रति होना चाहिए । आपूर्ति कमी के प्रयास द्वारा रिहायशी क्षेत्रों और विद्यालयों के नजदीक तम्बाकू और अल्कोहल की उपलब्धता को सीमित किया जाना चाहिए ;

9. पदार्थ उपयोग करने वाले बालकों की मात्रा का अनुमान विशिष्ट अधिक जोखिम वाले क्षेत्रों, महानगरीय शहरों और परस्पर विरोधी क्षेत्रों में लगाया जाना चाहिए ; और

10. विद्यालय आधारित सर्वेक्षण का आयोजन प्रतिनिधि नमूने के आधार पर राष्ट्रीय स्तर पर किया जाना चाहिए ।

(iii) सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट (2013-14)[1]

---

[1] सुसंगत भाग पृष्ठ 20, पूरी रिपोर्ट पृष्ठ 157.

रिपोर्ट किसी ऐसे व्यक्ति को 'पदार्थ दुरुपयोग का शिकार' के रूप में परिभाषित करती है जो शराब, मादक ओषधि, मादक पदार्थ या किसी अन्य व्यसन पदार्थ (तम्बाकू से भिन्न) का आदी है/पर निर्भर है । रिपोर्ट में यह उल्लेख है –

• मद्यव्यसनिता और पदार्थ दुरुपयोग का चलन काफी चिंताजनक है । 12वीं योजना अभिसरण तरीके से कार्यक्रमों के माध्यम से प्रभावी की शीघ्र आवश्यकता की प्रत्युपायों परिकल्पना करता है ।

• विभिन्न केंद्रीय मंत्रालयों के बीच बेहतर समन्वय और संमिलन की आवश्यकता है ।

• मंत्रालयों द्वारा बनाए गए सभी विद्यमान स्कीमगत और गैर-स्कीमगत हस्तक्षेपों को एक मिशन कार्यक्रम के अधीन समेकित किए जाने की आवश्यकता है ।

• आपूर्ति और मांग दोनों को कम करने के लिए निवारक उपाय किए जाने और मद्यव्यसन और ओषधि दुरुपयोग के निवारक उपचार और पुनर्वास की पहुंच सार्वजनिक बनाने की आवश्यकता है ।

• मद्यव्यसनिता और पदार्थ (ओषधि) दुरुपयोग के रोकथाम के लिए सहायता स्कीम के अधीन व्यसनी समेकित पुनर्वास केंद्र और स्वैच्छिक संगठनों द्वारा चलाए जा रहे सामाजिक सुरक्षा सेवाओं को मजबूत बनाए जाने की आवश्यकता है ।[1]

• व्यापक रणनीति[2]

(i) समग्र रणनीति केंद्रीय और राज्य सरकार, स्वैच्छिक संगठन और अन्य राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय निकायों के सहयोगी प्रयासों के माध्यम से ओषधि आश्रित व्यक्तियों की जागरूकता सृजन, पहचान, सलाह, उपचार और पुनर्वास करना है । **व्यसन पदार्थों की मांग और उपभोग को कम करने की दृष्टि से, रोकथाम शिक्षा कार्यक्रमों, व्यसनी व्यक्तियों के व्यापक सुधार और समाज में उनके समामेलन पर बल दिया जाएगा ।**

---

[1] पृष्ठ 167.

[2] पृष्ठ सं. 175 से आगे ।

(ii) नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए मुख्य रणनीति इस प्रकार होगी :–

▶ ओषधि आश्रित व्यक्तियों के मद्यव्यसनिता और पदार्थ दुरुपयोग के निवारण, उपचार और पुनर्वास के लिए समुचित मॉडल विकसित करना ;

▶ आश्रिता के लिए संवेदनशील या खतरे में पाए गए व्यक्तियों और समूहों में सामूहिक पहल और स्वसहायता प्रयास का संवर्धन करना ;

▶ आश्रिता उत्पादन पदार्थों की मांग की कमी के लिए सामुदायिक भागीदारी और सार्वजनिक सहयोग को बढ़ाना ;

▶ सेवा प्रदाय तंत्र को मजबूत बनाने के लिए प्रशिक्षित मानव संसाधन व्यक्तियों और सेवा प्रदाताओं के समूह सृजित करना ;

▶ पदार्थ दुरुपयोग निवारण के क्षेत्र में राज्य, कारपोरेट पहल, स्वैच्छिक सेक्टर और अन्य पणधारियों द्वारा हस्तक्षेप के बीच समुचित सहयोग स्थापित करना और पैदा करना ;

▶ समुचित परामर्श को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से नीति निर्धारकों, सेवा प्रदाताओं और अन्य पणधारियों के बीच नेटवर्किंग प्रदान करना ;

▶ स्वसुधारगत तंत्र सहित सतत् मानीटरिंग और मूल्यांकन प्रणाली का संवर्धन करना और उसे बनाए रखना ।

(iii) प्रारूप राष्ट्रीय नीति का यह लक्ष्य है कि ऐसे समाज बनाने का प्रयास करें जहां जागरूकता सृजन और निवारण के माध्यम से ओषधि के मादक उपयोग को हतोत्साहित किया जाए और व्यष्टियों की सहायता करने वाले नवयुवकों और प्रौढ़ व्यक्तियों को समुचित विकल्प चुनने और ओषधियों से दूर रहने को प्रेरित किया जाए । पदार्थ दुरुपयोग पर आश्रित व्यक्तियों की देखभाल और उपचार सेवाओं के सातत्यता के माध्यम से ओषधि छोड़ने को प्रोत्साहित किया जाएगा । सरकारी और सिविल सामाजिक संगठनों सहित सभी पणधारियों के सक्रिय सहयोग से व्यसनकारी पदार्थों की मांग को कम करना लक्ष्य है ।

(iv) सेवाओं की आवश्यकता को मान्यता प्रदान करते समय, समाज के गरीब और सेवांत वर्गों पर फोकस के साथ रोकथाम, उपचार और पुनर्वास के लिए सेवाओं के क्षेत्र को बढ़ाना और हस्तक्षेप के विभिन्न तरीकों तक पहुंच रखना भी आवश्यक है । गंभीर जोखिम वाले समूहों पर विशेष ध्यान दिया जाएगा ।

(v) विद्यालयीय बच्चे शीघ्रता से प्रभावित होते हैं और साथियों के समूह बर्ताव द्वारा अधिक प्रभावित हैं । जागरूकता सृजन के लिए विद्यालयों और महाविद्यालयों में पाठ्यक्रम/सह-पाठ्यक्रम अंतर्वस्तुओं के रूप में समुचित हस्तक्षेप किया जाएगा । हस्तक्षेप साक्ष्य आधारित और सतत् रणनीतियों द्वारा समर्थित होंगे ।

(vi) अवारा बच्चे/प्रौढ़ फार्मास्युटिकल, विलायक, अंतर्वाही आदि जैसे कतिपय ओषधियों के दुरुपयोग के प्रति अतिसंवेदनशील पाए जाते हैं । उनकी पहुंच स्वास्थ्य देखभाल तक नहीं है और इन बालकों के लिए निवारक पहल की बिल्कुल कमी है क्योंकि वे विद्यालय प्रणाली और सामुदायिक कार्यक्रमों से कटे हुए हैं जो ऐसे हस्तक्षेपों के सामान्य उपाय हैं । फार्मास्युटिकल और अन्य ऐसे पदार्थ जिनके अंतर्गत विलायक, गल्यु आदि हैं के विक्रय दुरुपयोग को रोकना नीति का महत्वपूर्ण तत्व होगा । बालकों के अधिकारों का सम्मान और संरक्षण किया जाना चाहिए । राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग (एन.सी.पी.आर.) प्रत्येक क्षेत्र के विशिष्टताओं और मजबूत शक्तियों को ध्यान में रखते हुए राज्य, जिला और ब्लॉक स्तरों पर बारीकियों के साथ-साथ राष्ट्रीय नीतियों और कार्यक्रमों के अधिकार आधारित पहलुओं की सजीव कल्पना करता है ।

(vii) केवल ऐसे प्रौढ़ों के लिए सुविधाएं उपलब्ध कराई जानी चाहिए । उनके लिए आवश्यक अपेक्षाओं में मानसिक सामाजिक सहयोग, जीवन कौशल प्रशिक्षण, पोषाहार और स्वास्थ्य सुविधाएं, शैक्षिक और औपचारिक प्रशिक्षण, खेल-कूद और रिफरल सेवाओं सहित मनोरंजक सुविधाएं सम्मिलित हैं । रात्रि आश्रय/केंद्रों में पहुंचाने और सलाह तथा व्यसन मुक्त सुविधाओं सहित स्वास्थ्य सेवाओं तक आसान पहुंच के माध्यम

द्वारा संरक्षणात्मक उपाय किया जाना चाहिए । पुलिस और न्यायपालिका को इन मुद्दों के बारे में संवेदनशील बनाया जाना चाहिए ।

(viii) महिलाएं और नवयुवतियां विभिन्न माध्यमों से ओषधि और अल्कोहल दुरुपयोग द्वारा प्रभावित । वे पुरुष ओषधि उपयोगकर्ताओं के भागीदार के रूप में आर्थिक, सामाजिक और शारीरिक परिणामों से ग्रस्त हैं । उनमें से कुछ स्वयं व्यसनी हो जाती हैं जिससे उनके उप-समूह जनसंख्या के प्रभाव में आने में वृद्धि होती है ।

(ix) पदार्थ दुरुपयोग और एच.आई.वी./एड्स के बीच गहरा संबंध होने को मानते हुए और यह तथ्य कि सूई के द्वारा ओषधि लेने वाले व्यक्ति की एच.आई.वी./एड्स के ग्रस्त होने की अधिक संभावना होती है, राष्ट्रीय नीति में यह परिकल्पना है कि जोखिमग्रस्त जनसंख्या को खतरे से आगाह किया जाए और जहां आवश्यक हो एच.आई.वी./एड्स की जांच और पहचान के माध्यम से उपचार किया जाए । पदार्थ दुरुपयोगकर्ताओं के बीच एच.आई.वी./एड्स के फैलाव को रोकने के लिए ओषधि मांग कमी और एच.आई.वी./एड्स निवारण कार्यक्रमों को क्रियाशील बनाया जाएगा ।

(x) पदार्थ दुरुपयोग हस्तक्षेप रणनीति के निम्नलिखित तीन भिन्न-भिन्न स्तर होंगे :–

प्राथमिक निवारण जागरूकता सृजित कर इनसे दूर रहने के लिए प्रोत्साहित करना ;

अति-जोखिम वाले व्यक्तियों के व्यवहार परिवर्तन, प्रभावित व्यक्तियों की शीघ्रता से पहचान, उपचार और परामर्श की प्रक्रिया को सुकर बनाना ;

तृतीय निवारण, सुधर रहे व्यक्तियों को सामाजिक मुख्यधारा में पुनर्वास और एकीकरण उपलब्ध कराना है ।

व्यापक रणनीति

- विभिन्न अभिकरणों द्वारा निवारक शिक्षा और जागरूकता निर्माण ।
- प्रभावित व्यक्तियों के स्वास्थ्य लाभ के लिए व्यापक पैकेज ।

• सेवाओं के रेंज को बढ़ाना ।

• मध्यस्थता के बहुल साधनों का विकास करना ।

(iv) राजस्व विभाग, वित्त मंत्रालय द्वारा प्रारूपित स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ (एन.डी.पी.एस.) पर राष्ट्रीय नीति :

नीति में ओषधि दुरुपयोग के संकट को दूर करने का प्रयास किया गया है और इसमें ओषधि दुरुपयोग के पीड़ितों के उपचार, पुनर्वास और सामाजिक एकीकरण का उपबंध है ;

• नीति के पैरा 55 में बालकों में ओषधि दुरुपयोग के संकट को रोकने पर विशेष बल दिया गया है अर्थात् स्थानीय पुलिस को स्कूलों और विद्यालयों के परिवर्ती क्षेत्रों पर विशेष ध्यान देना चाहिए ; विद्यालयों और महाविद्यालयों को व्यसन के स्तर का निर्धारण करने के लिए सर्वेक्षण करना चाहिए ; शैक्षिक प्राधिकारियों को ओषधि दुरुपयोग और अयुक्त व्यापार तथा इसके सामाजिक और आर्थिक आयाम पर एक आदेशात्मक और व्यापक अध्याय सम्मिलित करना चाहिए ।

नीति के अपने उपाबंध में समयबद्ध और एक विनिर्दिष्ट कार्य-योजना सम्मिलित है । नीति में निम्नलिखित सिफारिशों के संबंध में कार्य-योजना तैयार की है ; राष्ट्रीय ओषधि नियंत्रण व्यवस्था, ओषधि दुरुपयोग पर राष्ट्रीय सर्वेक्षण, मांग कमी क्रियाकलाप, आपूर्ति कमी क्रियाकलाप, अफीम-पोस्ता की अवैध खेती और अफीम आदि के उत्पादन का नियंत्रण ।

4. हम यह पाते हैं कि सरकार के विभिन्न अंगों द्वारा कई नीतिगत कथन हैं । इस बात की आवश्यकता है कि एक व्यापक राष्ट्रीय योजना तैयार की जाए जो मुद्दे पर राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर के विशेषज्ञ संस्थानों के सहयोग से अपने-अपने अभिकरणों के साथ केंद्रीय और राज्य सरकारों द्वारा समन्वित मध्यस्थता के आधार पर गठित किया जाएगा ।

5. **संयुक्त राष्ट्र संघ कन्वेंशन**

क. भारत,

1. स्वापक ओषधि पर कन्वेंशन, 1961 ;

2. मनःप्रभावी पदार्थ पर कन्वेंशन, 1971 ;

3. स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ में अवैध व्यापार के विरुद्ध कन्वेंशन,

वाले मुद्दों के तीन संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशनों का हस्ताक्षरकर्ता है ।

भारत ओषधि दुरुपयोग को रोकने के लिए अंतरराष्ट्रीय रूप से बाध्य है । संयुक्त राष्ट्र महासभा में 1998 में अपनी 20वीं विशेष सत्र में ओषधि नियंत्रण रणनीतियों के अनिवार्य स्तम्भ के रूप में मांग कमी को स्वीकार किया । मांग कमी रणनीति में ओषधि दुरुपयोग के निवारण के लिए ओषधि आश्रित व्यक्तियों की शिक्षा, उपचार, पुनर्वास और सामाजिक एकीकरण शामिल है ।

ख. 1961 के एकल स्वापक ओषधि के कन्वेंशन का अनुच्छेद 38 ओषधि के दुरुपयोग के विरुद्ध निम्नलिखित उपायों का सुझाव देता है :–

1. "पक्षकार ओषधि के दुरुपयोग के निवारण के लिए सभी व्यवहार्य उपायों पर विशेष ध्यान देंगे और अपनाएंगे तथा लिप्त व्यक्तियों की शीघ्र पहचान, उपचार, शिक्षा, पश्चात् देखभाल, पुनर्वास और सामाजिक एकीकरण करेंगे तथा इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अपने प्रयासों का समन्वय करेंगे ।

2. पक्षकार यथासंभव ओषधि के दुरुपयोगकर्ताओं के उपचार, पश्चात् देखभाल, पुनर्वास और सामाजिक एकीकरण में लगे कार्मिकों के प्रशिक्षण का संवर्धन करेंगे ।

3. पक्षकार ऐसे व्यक्तियों की सहायता करने के लिए सभी व्यवहार्य उपाय करेंगे जिनके कार्य के संबंध में ओषधियों के दुरुपयोग और इसके निवारण की समस्या को समझने में ऐसी आवश्यकता होगी और आम जनता में ऐसी समझ का भी संवर्धन करेंगे यदि ऐसा जोखिम है कि ओषधि का दुरुपयोग काफी दूर तक फैल जाएगा ।"

ग. स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ पर सार्क कन्वेंशन का अनुच्छेद 12[1]

स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थों की अवैध मांग को दूर करने के उपायों का उल्लेख इस प्रकार किया गया है :–

---

[1] अनुच्छेद 12, स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ पर सार्क कन्वेंशन ।

1. प्रत्येक सदस्य राज्य अपने राज्य क्षेत्र में अवैध रूप से उगाए जाने वाले अफीम पोस्ता, कोका झाड़ी और भांग के पौधों जैसे स्वापक ओषधि या मनःप्रभावी पदार्थों वाले पौधों की अवैध खेती को निवारित करने और समाप्त करने के लिए समुचित उपाय करेंगे ।

2. सदस्य राज्य उन्मूलन प्रयासों को प्रभावी बनाने के लिए सहयोग करेंगे । इस प्रयोजन को पूरा करने के लिए, सदस्य राज्य वैज्ञानिक और तकनीकी जानकारी का आदान-प्रदान और उन्मूलन संबंधी अनुसंधान को भी सुकर बनाएंगे ।

3. सदस्य राज्य मानवीय पीड़ा को कम करने और अवैध व्यापार के लिए वित्तीय प्रोत्साहन को दूर करने की दृष्टि से स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थों की अवैध मांग को दूर करने या कम करने के लक्ष्य के लिए समुचित उपाय करेंगे ।

4. सदस्य राज्य 1988 संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन की सारणी-1 और सारणी-2 में सूचिबद्ध स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ जो अधिगृहीत या जब्त किए गए हैं, के शीघ्र विनाश या विधिसम्मत् निपटान के भी आवश्यक उपाय करेंगे ।

घ. बालक अधिकारों के कन्वेंशन का अनुच्छेद 33 इस प्रकार है :–

"राज्य पक्षकार सुसंगत अंतरराष्ट्रीय संधियों में यथा परिभाषित स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थों के अवैध उपयोग से बालकों को संरक्षित करने और ऐसे पदार्थों के अवैध उत्पादन और व्यापार में बालकों के उपयोग को निवारित करने के लिए विधायी, प्रशासनिक, सामाजिक और शैक्षिक उपायों सहित सभी समुचित उपाय करेंगे ।"

ङ स्वापक ओषधियों पर आयोग के 52वें सत्र के उच्चस्तरीय खंड का आयोजन :–

1. एक साथ विश्व ओषधि समस्या से निपटने ;

2. वर्ष 2009 से परे ओषधि नियंत्रण के लिए स्थापित किए जाने वाले अग्रिम कार्रवाई और लक्ष्य तथा उद्देश्य के अपेक्षा वाले क्षेत्रों और भावी पूर्विकताओं की पहचान करने ;

3. अंतरराष्ट्रीय सहयोग को बढ़ाने के लिए राजनैतिक घोषणा और अन्य उपाय करने के लिए

महासभा के 20वें विशेष सत्र में स्थापित लक्ष्यों और ध्ययों को पूरा करने के लिए 1998 से किए गए प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए 11 और 12 मार्च, 2009 को किया गया ।

सदस्य राज्यों ने विश्व ओषधि समस्या से निपटने के लिए समेकित और संतुलित रणनीति के प्रति अंतरराष्ट्रीय सहयोग पर राजनैतिक घोषणा और कार्रवाई योजना को स्वीकार करने के प्रति वचनबद्ध हुए । सदस्य राज्यों ने यह पुष्ट किया कि मांग और आपूर्ति कमी रणनीति और अनवरत विकास रणनीति दोनों का अंतिम लक्ष्य मानव जीवन के स्वास्थ्य और कल्याण को सुनिश्चित करने में अवैध ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थों की उपलब्धता और उपयोग को कम करना और आवश्यकता समाप्त करना है तथा मांग और आपूर्ति की कमी के सर्वोत्तम पद्धति के विनिमय को प्रोत्साहित करना है तथा इस बात पर बल देना है कि प्रत्येक रणनीति दूसरे के अभाव में अप्रभावी है । उन लोगों ने आगे यह सहमति व्यक्त की कि एम्फेटामाइन-प्रकार के उत्प्रेरक और मनःप्रभावी पदार्थ गंभीर खतरा पैदा कर रहे हैं तथा लगातार अंतरराष्ट्रीय ओषधि नियंत्रण प्रयासों के लिए चुनौती बने हुए हैं जो जनसंख्या विशेषकर नवयुवकों की सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण के लिए खतरा है और अंतरराष्ट्रीय तथा बहु सेक्टरीय व्यवस्था में वैज्ञानिक साक्ष्य और अनुभव के आधार पर केंद्रित और व्यापक राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और वैश्विक पहल की अपेक्षा है ।

6. स्थिति को इस तथ्य द्वारा संयोजित किया जाता है कि एक बार किसी बालक के व्यसनी होने पर, उसे ओषधि घूमकर बेचने वाला बनने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है ।

संसदीय हस्तक्षेप

7. बालकों की संवेदनशीलता पर विशेषकर पदार्थ दुरुपयोग के संदर्भ में वर्ष 2000 से विधायी प्रक्रिया आरंभ की गई है । किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 "देखरेख और संरक्षण के लिए जरूरतमंद बालक" पद को "ऐसा बालक जिसका लैंगिक दुर्व्यवहार या अवैध कार्यों के प्रयोजन हेतु घोर दुर्व्यवहार, प्रपीड़न या शोषण किया जा रहा है या किए जाने की संभावना है ..... सम्मिलित करते हुए परिभाषित करता है ।" [धारा 2(घ)(vi)]

धारा 25 निम्नलिखित शब्दों में शास्तियों का उपबंध करती है –

"**धारा 25.** किशोर या बालक को मादक लिकर या स्वापक ओषधि या मनःप्रभावी पदार्थ देने के लिए शास्ति :

जो कोई, सम्यक् रूप से अर्हित चिकित्सा व्यवसायी के आदेश या बीमारी से अन्यथा किसी किशोर या बालक को लोक-स्थान में कोई मादक लिकर या कोई स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ देगा या दिलवाएगा वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, और जुर्माने से भी, दंडनीय होगा ।"

8. संसद् ने किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015 अधिनियमित किया जिसे 31 दिसंबर, 2015 को राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त हुई । "देखरेख और संरक्षण के जरूरतमंद बालक" पद को धारा 2(14) के खंड (viii), (ix) और (x) में इस प्रकार परिभाषित किया गया है :–

"धारा 2(14) 'देखरेख और संरक्षण के जरूरतमंद बालक' पद से ऐसा बालक अभिप्रेत है –

* * * * *

(viii) जिसका लैंगिक दुर्व्यवहार या अवैध कार्यों के प्रयोजन के लिए दुर्व्यवहार, प्रपीड़न या शोषण किया गया है या किया जा रहा है या किए जाने की संभावना है ; या

(ix) जो असुरक्षित पाया गया है और उसे मादक द्रव्य दुरुपयोग या अवैध व्यापार में सम्मिलित किए जाने की संभावना है ; या

(x) जिसका लोकात्मा विरुद्ध अभिलाभों के लिए दुरुपयोग किया जा रहा है या किए जाने की संभावना है ।"

धारा 3 में अधिनियम के क्रियान्वयन में अपनाए जाने वाले सामान्य सिद्धांतों का उल्लेख है, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं :–

(i) निर्दोषिता की उपधारणा का सिद्धांत ;

(ii) गरिमा और योग्यता का सिद्धांत ;

(iii) भाग लेने का सिद्धांत ;

(iv) सर्वोत्तम हित का सिद्धांत ;

(v) कौटुम्बिक जिम्मेदारी का सिद्धांत ;

(vi) सुरक्षा का सिद्धांत ;

(vii) सकारात्मक उपाय ;

(viii) गैर-कलंकीय शब्दार्थों का सिद्धांत ;

(ix) अधिकारों का अधित्यजन न किए जाने का सिद्धांत ;

(x) समानता और विभेद न किए जाने का सिद्धांत ;

(xi) एकांतता और गोपनीयता के अधिकार का सिद्धांत ;

(xii) अंतिम अवलंब के उपाय के रूप में संस्थात्मकता का सिद्धांत ;

(xiii) संप्रत्यावर्तन और प्रत्यावर्तन का सिद्धांत ;

(xiv) नए सिरे से शुरूआत करने का सिद्धांत ;

(xv) अपयोजन का सिद्धांत ;

(xvi) नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत ।

धारा 77 और 78 निम्नलिखित शब्दों में शास्तियों का उपबंध करती है –

"77. जो कोई सम्यक् रूप से अर्हित चिकित्सा व्यवसायी के आदेश के सिवाय किसी बालक को कोई मादक लिकर या कोई स्वापक ओषधि या तम्बाकू उत्पाद या मनःप्रभावी पदार्थ देगा या दिलवाएगा, वह कठोर कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से भी, जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

78. जो कोई किसी बालक का किसी मादक लिकर, स्वापक ओषधि, मनःप्रभावी पदार्थ के विक्रय, फुटकर क्रय-विक्रय, साथ रखने, पूर्ति करने या तस्करी करने के लिए उपयोग करेगा, वह कठिन कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी और एक लाख रुपए तक के जुर्माने से भी, दंडनीय होगा ।"

2015 अधिनियम विधिक अवसंरचना का उपबंध करता है । कठोर दंडों का उपबंध किया गया है । समुचित प्रशासनिक क्रियान्वयन की अपेक्षा है ।

राष्ट्रीय डाटाबेस की आवश्यकता

9. केंद्रीय सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय की ओर से इन कार्यवाहियों में प्रति-शपथपत्र फाइल किया गया है । आश्चर्यजनक रूप से, शपथपत्र में यह उपदर्शित है कि भारत में पदार्थ दुरुपयोग के पीड़ितों की संख्या पर कोई प्रामाणिक डाटा नहीं है । केंद्रीय सरकार के अनुसार वर्ष 2013-14 के मंत्रालय के रिपोर्ट में उद्धृत आंकड़े केवल अनुमानित मात्र हैं । एक विश्वसनीय डाटाबेस बनाने के लिए, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संघ (एन. एस. एस. ओ.) के माध्यम से विस्तृत राष्ट्रीय सर्वेक्षण कराए जाने का विनिश्चय किया गया है । एन. एस. एस. ओ. ने सर्वेक्षण करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की है । यह बताया गया कि मंत्रालय ने ओषधि दुरुपयोग के विस्तार, प्रवृत्ति और पैर्टन पर राष्ट्रीय सर्वेक्षण कराने के लिए अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान से संपर्क किया है ।

10. विश्वसनीय आंकड़े का सृजन पदार्थ दुरुपयोग को रोकने के लक्ष्यित नीति की आवश्यक अपेक्षा है । राष्ट्रीय, राज्य और क्षेत्रीय स्तर पर सही आंकड़ों के अभाव में, नीति हस्तक्षेप केवल तदर्थ ही बना रहेगा । आंकड़े के अभाव में, (i) संवेदनशील राज्यों और क्षेत्रों ; (ii) अधिक जोखिम जनसंख्या ; (iii) संपूर्ण राज्यों में गैर व्यसन केंद्रों सहित अवसंरचना की अपेक्षा ; (iv) प्रशिक्षित मानव शक्ति की अपेक्षा ; और (v) पुनर्वास उपचार और सलाहकार सेवाओं की अपेक्षा, को ध्यान में रखते हुए अपेक्षित नीति हस्तक्षेपों की प्रकृति और विस्तार का कोई वास्तविक निर्धारण नहीं होगा ।

11. यह आधारभूत कमी है जिसे केंद्रीय सरकार को आरंभ में ही दूर करना चाहिए । हम निदेश देते हैं कि केंद्रीय सरकार आज से छह मास की अवधि के भीतर ओषधि दुरुपयोग पर यथाशीघ्र राष्ट्रीय सर्वेक्षण कराएगा ।

तत्काल चिंताएं

उपचारात्मक ध्यानाकर्षण की अपेक्षा वाली तत्काल चिंताओं को संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया गया है :–

(i) बालकों के लिए राष्ट्रीय कार्रवाई योजना की विरचना ;

(ii) ओषधि, अल्कोहल और तम्बाकू से बालकों को दूर रखने के लिए सभी आयु समूह के बालकों के लिए समुचित पाठ्यक्रम वाले मॉड्यूल तैयार करना ;

(iii) गैर व्यसन केंद्रों की स्थापना करना ;

(iv) किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015 के उपबंधों विशेषकर धारा 77 और 78 को प्रवृत्त करते हुए, मानक प्रचालन प्रक्रिया की स्थापना करना ; और

(v) स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ पर राष्ट्रीय नीति जिसे केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा अनुमोदित किया गया है, की कार्रवाई योजना को क्रियान्वित करना ।

एम. एस. जे. ई. द्वारा किए गए उपायों को प्रति-शपथपत्र में इस प्रकार उल्लेख किया गया है :–

"मंत्रालय अल्कोहल और पदार्थ (ओषधि) दुरुपयोग के निवारण के लिए सहायता की केंद्रीय सेक्टर स्कीम को लागू करता है जिसके अधीन व्यक्तिगत, कुटुम्ब, कार्यस्थल और आम समाज में अल्कोहल और पदार्थ (ओषधि) दुरुपयोग के बुरे प्रभावों के बारे में व्यसनी व्यक्तियों के लिए समेकित पुनर्वास केंद्र (आई. आर. सी. ए.) चलाने के लिए, गैर व्यसन केंद्र आयोजित करने और जागरूकता कार्यक्रम संचालित करने के लिए एन. जी. ओ./स्वैच्छिक संगठनों को वित्तीय सहायता दी जाती है । इस समय मंत्रालय लगभग 400 व्यसनी व्यक्तियों के लिए समेकित पुनर्वास केंद्रों को वित्तीय सहायता देता है जो पूरे देश में फैले हुए हैं । इन आई. आर. सी. ए. एस. का लक्ष्य व्यसनी व्यक्ति को पूर्ण सहायता उपलब्ध कराना और उनके जीवन की गुणता में सुधार लाना है । आई. आर. सी. ए. एस. व्यक्ति को ओषधि मुक्त, अपराध मुक्त और सलाभ नियोजन उपलब्ध कराने के लिए व्यसनी व्यक्ति की संपूर्ण स्वास्थ्य लाभ के लिए पुनर्वास के पश्चात् पहचान, प्रेरणा, सलाह, गैर व्यसन के लिए संपूर्ण प्रकृति की समुदाय आधारित सेवाएं उपलब्ध कराता है ।"

वास्तविक आवश्यकता ऐसी राष्ट्रीय योजना की विरचना सुनिश्चित करना जिससे कि सभी हस्तक्षेप उचित रूप से विरचित राष्ट्रीय नीति अवसंरचना के अनुसार हों ।

12. केंद्रीय सरकार ने यह उल्लेख किया है कि ओषधि मांग कमी की राष्ट्रीय नीति को अंतिम रूप दिया जा रहा है । हस्तक्षेप के पूर्विकता क्षेत्रों में सभी स्तरों और अंतर-क्षेत्रीय सहयोग स्तरों पर कौशल मानव शक्ति निर्माण, शिक्षा और जागरूकता निर्माण को ध्यान में रखते हुए सेवा प्रदाताओं की क्षमता निर्माण और प्रशिक्षण सम्मिलित होगा । नीति गैर

व्यसन केंद्रों की अभिवृद्धि की व्यवस्था को स्वीकार करने का भी प्रस्ताव करती है । हमारी दृष्टि से, नीति को प्रत्येक जिले में गैर व्यसन केंद्र की स्थापना करने की आवश्यकता और विशेषकर बालकों सहित अधिक जोखिम मानवों के संदर्भ में विनिर्दिष्ट संवेदनशीलता पर ध्यान देना चाहिए । हम यह निदेश देते हैं कि यह कार्य पूरा किया जाए और आज से छह मास की अवधि के भीतर एक राष्ट्रीय नीति विरचित की जाए ।

13. जागरूकता और संवेदनशीलता सृजित करने के समुचित पहलुओं को सम्मिलित करते हुए, पाठ्यक्रम की विरचना के संबंध में, मानव संसाधन विकास मंत्रालय के उच्च शिक्षा विभाग की ओर से एक शपथपत्र फाइल किया गया है । 4 जनवरी, 2015 को इस मामले में निदेश जारी किए गए थे जिसके अनुसरण में नई शिक्षा नीति में अल्कोहल और ओषधि दुरुपयोग के उन्मूलन से संबंधित मुद्दों को शामिल किया गया है । केंद्रीय सरकार द्वारा परामर्शी प्रक्रिया आरंभ की गई है । नई शिक्षा नीति के निर्माण के लिए 31 अक्तूबर, 2015 को एक समिति गठित की गई । 33 चिह्नित विषय-बिंदुओं में से विद्यालय शिक्षा के दो विषय-बिंदु का शीर्षक ; (i) व्यापक शिक्षा – नीतिशास्त्र, शारीरिक शिक्षा, कला और शिल्प कला ; और जीवन कौशल ; और (ii) बालक स्वास्थ्य पर फोकस, है । यह कहा गया है कि इसमें "एन. ई. पी. में अल्कोहल और ओषधि दुरुपयोग के उन्मूलन से संबंधित मुद्दों के शामिल करने का विवक्षित महत्व" सम्मिलित किया जाएगा । एम. एस. जे. ई. ने उपरोक्त दो विषय-वस्तुओं के भीतर ओषधि दुरुपयोग और तम्बाकू पर शिक्षा की सिफारिश की है । यह समिति के समक्ष रखा गया है । न्यायालय को यह सूचित किया गया है कि समिति ने 30 दिसंबर, 2015 को यह सूचित किया कि अल्कोहल और ओषधि दुरुपयोग के उन्मूलन विषयक विषयवस्तु को उसकी सिफारिशों में सम्मिलित किया जाएगा ।

14. विद्यालय पाठ्क्रम में अल्कोहल, तम्बाकू और ओषधि दुरुपयोग विषयक मुद्दों से निपटने के लिए संपूर्ण हल के स्वीकार करने के महत्व को पर्याप्त रूप से बल दिया जाना चाहिए । हमारा यह मत है कि चूंकि संपूर्ण मुद्दा सरकार के पास विचाराधीन है इसलिए अंतिम विरचना की प्रतीक्षा करना उचित होगा । तथापि, हम यह उपदर्शित करते हैं कि विस्तारित शीर्षक या विषय के भीतर ऐसे महत्वपूर्ण विषय के "विवक्षित समामेलन" पर विराम देने के बजाय, यह उचित होगा यदि सक्षम प्राधिकारी यह विचार करें कि ऐसे बालकों को पदार्थ दुरुपयोग के खतरे से संरक्षित किया जाए ।

यह ऐसे विषय हैं जिनको कालीन के अंदर छिपाया नहीं जाना चाहिए । प्राधिकारियों को विचार करना चाहिए कि कैसे बालकों को ओषधि उपयोग के खतरों, ओषधि उपयोग को रिपोर्ट करने की आवश्यकता और व्याप्त अभिजात और सामाजिक दबाव से प्रतिरोध विकसित करने की आवश्यकता से बालक की (आयु और स्तर पर ध्यान देते हुए) संवेदनशील बनाया जाए ।

15. समस्या की अधिकता एक कार्यवाही में सभी मुद्दों से निपटने के लिए न्यायिक प्रक्रिया को अव्यवहार्य बनाती है । हमने उपरोक्त तीन व्यवस्थित मुद्दों पर विचार किया । हमने केंद्र सरकार की विद्यमान नीतिगत अवसंरचना के आधार पर ऐसा करना पड़ा जैसा ऐसी सामग्री द्वारा प्रदर्शित है जिसका उल्लेख हमने इस निर्णय के प्रारंभिक भाग में किया है । हमने नीति न्यायिक पुनर्विलोकन के प्रयोग में अधिकथित नहीं की है । हमने विद्यमान विधायी और प्रशासनिक अवसंरचना के अधीन बाध्यताओं को प्रवृत्त करने का निदेश दिया है ।

16. हम यथापूर्व उपदर्शित केंद्रीय सरकार को संक्षेप में अपना निदेश देने की प्रक्रिया आरंभ करते हैं ; केंद्रीय सरकार,

(i) राष्ट्रीय सर्वेक्षण पूरा करेगी और छह मास की अवधि के भीतर राष्ट्रीय डाटाबेस बनाएगी ;

(ii) चार मास की अवधि के भीतर एक व्यापक राष्ट्रीय योजना विरचित करेगी और अंगीकार करेगी जो अन्य बातों के साथ-साथ पूर्व उद्धृत तत्काल चिंताओं के क्षेत्रों के बारे में होगी ; और

(iii) एन. ई. पी. के. तत्वावधान में विद्यालय पाठ्यक्रम में विशिष्ट अंतर्वस्तु को अंगीकार करेगी ।

17. हम पूर्वोक्त निदेशों के साथ रिट याचिका का निपटान करते हैं । तथापि, हम याची को पृथक् कार्यवाहियों में न्यायालय में जाने की स्वतंत्रता प्रदान करते हैं जब यह विभिन्न पहलुओं सहित ऐसा करना आवश्यक हो जाए जो इन कार्यवाहियों की भी विषयवस्तु रही है ।

रिट याचिका का निपटान किया गया ।

पा.

बालकृष्णन्

बनाम

भारत संघ और अन्य

11 जनवरी, 2017

न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी और न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल

आय-कर अधिनियम, 1961 (1961 का 43) – धारा 10(37) [सपठित भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 की धारा 4, 6 और 9 तथा भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता अधिकार अधिनियम, 2013] – कृषि भूमि का अनिवार्य अर्जन – बातचीत के आधार पर प्रतिकर की रकम तय किया जाना – आय-कर विभाग द्वारा आरंभ में प्रतिकर की रकम को पूंजी अभिलाभ शीर्ष के अधीन प्रभार्य आय न मानते हुए स्त्रोत पर की गई कर कटौती का प्रतिदाय किया जाना – बाद में भूमि के अर्जन को अनिवार्य अर्जन न मानकर स्वेच्छया विक्रय मानते हुए निर्धारण पुनः खोला जाना – अपीलार्थी ने मुकदमेबाजी से बचने के लिए बातचीत का रास्ता अपनाया था और अंतिम प्रतिकर की रकम सहमति के आधार पर तय होने मात्र से भूमि के अनिवार्य अर्जन के स्वरूप में परिवर्तन नहीं हो जाता है ।

केरल सरकार ने लोक प्रयोजन अर्थात् टेक्नो पार्क के तृतीय चरण के विकास के लिए अपीलार्थी की संपत्ति का अर्जन करने की ईप्सा की । इस प्रयोजन के लिए भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 की धारा 4(1) के अधीन अधिसूचना जारी की गई । अपीलार्थी को भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 5क के अधीन अपने आक्षेप, यदि कोई हों, फाइल करने का अवसर दिया गया । उसके पश्चात् स्वीकृत रूप से तारीख 2 सितंबर, 2006 को भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 6 के अधीन एक घोषणा जारी की गई जिसमें सरकार ने यह घोषणा की कि उपर्युक्त प्रयोजन के लिए भूमि का अर्जन करने का विनिश्चय किया गया है । इस अर्जन के पश्चात् भूमि अर्जन कलक्टर (विशेष तहसीलदार) ने सम्यक् प्रक्रिया का अनुसरण करने के पश्चात् अधिनिर्णय भी पारित किया । इस अधिनिर्णय के अनुसार 14,36,616/- रुपए का प्रतिकर नियत किया गया । भूमि अर्जन कलक्टर द्वारा नियत किया गया प्रतिकर अपीलार्थी को स्वीकार्य नहीं था । इस प्रक्रम पर पक्षकारों के बीच प्रतिकर की रकम पर कुछ बातचीत आरंभ हुई

और अंततोगत्वा टेक्नो पार्क, जिसके लिए प्रश्नगत संपत्ति का अर्जन किया गया था, 38,42,489/- रुपए की राशि का संदाय करने के लिए सहमत हुआ । पक्षकारों के बीच इस रकम पर सहमति बनने के पश्चात् अपीलार्थी टेक्नो पार्क के पक्ष में प्रश्नगत संपत्ति का विक्रय-विलेख निष्पादित करने के लिए सहमत हुआ । यह विक्रय-विलेख निष्पादित और रजिस्ट्रीकृत किया गया । विक्रय प्रतिफल की रकम का संवितरण करते समय टेक्नो पार्क ने 10 प्रतिशत टी. डी. एस. की रकम की कटौती कर ली और बाद में आय-कर विभाग द्वारा अपीलार्थी को इस रकम का यह दृष्टिकोण अपनाते हुए प्रतिदाय कर दिया गया कि अपीलार्थी द्वारा प्राप्त पूर्वोक्त रकम पर कोई पूंजी अभिलाभ संदेय नहीं है क्योंकि यह रकम आय-कर अधिनियम, 1961 की धारा 10(37) के अधीन छूट प्राप्त है । तथापि, उसके पश्चात् अधिनियम की धारा 148 के अधीन अपीलार्थी को एक सूचना जारी की गई, जिसके द्वारा आय-कर विभाग में निर्धारण को इस आधार पर पुन: खोलने का विनिश्चय किया कि वर्ष 2009-10 के दौरान आय जो आय-कर के लिए निर्धारणीय थी, वह निर्धारण से बच गई थी । राजस्व विभाग द्वारा इस सूचना में जो आधार लिया गया था, यह था कि अपीलार्थी द्वारा उपर्युक्त भूमि के बदले प्राप्त की गई प्रतिकर/प्रतिफल की रकम अनिवार्य अर्जन का परिणाम नहीं थी, इसके विपरीत यह अपीलार्थी द्वारा टेक्नो पार्क को किया गया स्वेच्छया विक्रय था और इसलिए अधिनियम की धारा 10(37) के उपबंध लागू थे । अपीलार्थी ने तारीख 30 नवंबर, 2012 का अपना उत्तर फाइल करके उक्त निर्धारण को पुनः खोले जाने का विरोध किया । तथापि, संयुक्त आयुक्त, आय-कर रेंज-I कावादियार, तिरुवंनतपुरम ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि मामला अनिवार्य अर्जन के अधीन नहीं आता है और तद्नुसार निर्धारण अधिकारी को आय की गणना करने का निदेश दिया । इस निदेश को अपीलार्थी द्वारा केरल उच्च न्यायालय में एक सिविल रिट याचिका फाइल करके चुनौती दी गई । तथापि, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने इंफो पार्क केरल बनाम सहायक आय-कर आयुक्त वाले मामले में उसी उच्च न्यायालय के पूर्ववर्ती निर्णय का अवलंब लेते हुए उक्त रिट याचिका खारिज कर दी । अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई रिट अपील का भी वही परिणाम हुआ क्योंकि इसे विद्वान् एकल न्यायाधीश के दृष्टिकोण की अभिपुष्टि करते हुए खारिज कर दिया गया । अपीलार्थी ने व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस न्यायालय के मत में, जहां तक भूमि के अर्जन का संबंध है, भूमि अनिवार्य रूप से अर्जित की गई थी क्योंकि भूमि अर्जन अधिनियम की संपूर्ण प्रक्रिया का अनुसरण किया गया था । जो समझौता हुआ था वह केवल उस प्रतिकर की रकम के संबंध में था जो अपीलार्थी को उस भूमि के लिए प्राप्त होना था जो अर्जित की गई थी । यह कहने की बात नहीं है कि यदि सरकार द्वारा भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 4 और 6 के अधीन कार्रवाई नहीं की गई होती और उसके पश्चात् धारा 9 के अधीन अधिनिर्णय नहीं दिया गया होता तो अपीलार्थी अपनी भूमि को टेक्नो पार्क को निर्निहित करने के लिए सहमत नहीं होता । वह अनिवार्य अर्जन के कारण ऐसा करने के लिए मजबूर हुआ था और मुकदमेबाजी से बचने के लिए बातचीत की थी और अंतिम प्रतिकर तय किया था । केवल इस कारण कि प्रतिकर की रकम पर सहमति हुई है, इस बात से अर्जन के इस स्वरूप में परिवर्तन नहीं हो जाता कि यह अनिवार्य अर्जन न होकर स्वेच्छया विक्रय था । यह उल्लेखनीय है कि अब यह प्रक्रिया भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता अधिकार अधिनियम, 2013 में भी अधिकथित की गई है, जिसके अनुसार कलक्टर पक्षकारों/भू-स्वामियों की सहमति से पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन का अधिनिर्णय पारित कर सकता है । फिर भी, अर्जन का स्वरूप अनिवार्य बना रहता है । इस न्यायालय को इंफो पार्क केरल बनाम सहायक आय-कर आयुक्त वाले मामले में के निर्णय की शुद्धता के बारे में संदेह है । न्यायालय ने उक्त मामले में यह दृष्टिकोण अपनाया था कि चूंकि भू-स्वामियों द्वारा संपत्ति में का हक उनके द्वारा निष्पादित विक्रय-विलेखों के आधार पर सक्रांत किया गया था, इसलिए यह एक अनिवार्य अर्जन नहीं था । यह न्यायालय उपरोक्त दृष्टिकोण से सहमत नहीं है । यह स्पष्ट है कि अपीलार्थी द्वारा भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 4 के अधीन अधिसूचना और धारा 9 के अधीन अधिनिर्णय के बिना उस प्रतिफल के प्रतिकर के लिए कोई बातचीत नहीं की गई होती, जो उसे उक्त भूमि के लिए प्राप्त होना था । जहां तक प्रश्नगत भूमि के अर्जन का संबंध है, उसके बारे में कोई सहमति नहीं थी । अपीलार्थी ऐसी हालत में था कि वह जानता था कि उसकी भूमि का अर्जन किया जा चुका है और वह इसे वापस नहीं ले सकता है । इसलिए अपीलार्थी भूमि के बाजार मूल्य के अनुरूप यथा संभव अधिक से अधिक प्रतिकर प्राप्त करके केवल इस प्रक्रिया में मुकदमेबाजी से बचना चाहता था ताकि वह समय पर प्रतिकर प्राप्त करने में समर्थ हो सके । यदि अपीलार्थी ने इस प्रयोजन के लिए

बातचीत का रास्ता अपनाया है तो ऐसी बातचीत केवल प्रतिकर की मात्रा तक सीमित रहेगी और इससे अर्जन के स्वरूप में परिवर्तन या तब्दीली नहीं हो सकती है और स्वरूप अनिवार्य ही रहेगा । इसलिए यह न्यायालय इंफो पार्क केरल बनाम सहायक आय-कर आयुक्त वाले मामले में उच्च न्यायालय के निर्णय को उलटता है । (पैरा 8 और 9)

उलटा गया निर्णय

		पैरा
[2008]	(2008) के. एल. टी. 782 : **इंफो पार्क केरल** बनाम **सहायक आय-कर आयुक्त** ।	6,9

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2017 की सिविल अपील सं. 344.

2014 की रिट अपील सं. 240 में केरल उच्च न्यायालय, एर्नाकुलम के तारीख 19 फरवरी, 2014 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	श्री के. राधाकृष्णन्, ज्येष्ठ अधिवक्ता और सुश्री किरण भारद्वाज
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री एच. आर. राव, (सुश्री) निरंजना सिंह, अरिजीत प्रसाद, आर. एम. बजाज और (श्रीमती) अनिल कटियार

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी ने दिया ।

न्या. सीकरी – इजाजत दी गई ।

2. इस प्रक्रम पर पक्षकारों की सहमति से मामले की अंतिम रूप से सुनवाई की गई क्योंकि यह अंतिम रूप से निपटारे के लिए नियत था ।

3. इस अपील में जो विधि का प्रश्न उठाया गया है और जो सीधे तौर पर विचार करने के लिए उद्भूत होता है, निम्नलिखित है :–

> "क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी को आय-कर अधिनियम, 1961 की धारा 10(37) के अधीन छूट के लिए दावे से इनकार करके न्यायोचित किया है ?"

4. यह प्रश्न निम्नलिखित परिस्थितियों में उद्भूत हुआ :–

अपीलार्थी सर्वेक्षण सं. 18 में 27.70 एकड़ भूमि का स्वामी था ।

तिरुवंतपुरम जिले के अट्टिप्परा गांव के ब्लाक सं. 17 में 60 हेक्टेयर धान के खेत सर्वेक्षण सं. 293/8 में समाविष्ट हैं । यह कृषि भूमि थी । अपीलार्थी इस भूमि का धान उगाने के लिए उपयोग कर रहा था ।

5. केरल सरकार ने लोक प्रयोजन अर्थात् टेक्नो पार्क के तृतीय चरण के विकास के लिए अपीलार्थी की उपर्युक्त संपत्ति का अर्जन करने की ईप्सा की । इस प्रयोजन के लिए भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "भूमि अर्जन अधिनियम" कहा गया है) की धारा 4(1) के अधीन तारीख 1 जनवरी, 2005 को अधिसूचना जारी की गई । अपीलार्थी को भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 5क के अधीन अपने आक्षेप, यदि कोई हों, फाइल करने का अवसर दिया गया । अभिलेख से यह प्रकट नहीं होता है कि ऐसे आक्षेप फाइल किए गए थे या नहीं । तथापि, उसके पश्चात् स्वीकृत रूप से तारीख 2 सितंबर, 2006 को भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 6 के अधीन घोषणा जारी की गई थी जिसमें सरकार ने यह घोषणा की थी कि उपर्युक्त प्रयोजन के लिए भूमि का अर्जन करने का विनिश्चय किया गया है । इस अर्जन के पश्चात् भूमि अर्जन कलक्टर (विशेष तहसीलदार) ने सम्यक् प्रक्रिया का अनुसरण करने के पश्चात् तारीख 15 फरवरी, 2007 को अधिनिर्णय भी पारित किया । इस अधिनिर्णय के अनुसार 14,36,616/- रुपए का प्रतिकर नियत किया गया । यह प्रतीत होता है कि भूमि अर्जन कलक्टर द्वारा नियत किया गया प्रतिकर अपीलार्थी को स्वीकार्य नहीं था । इस प्रक्रम पर पक्षकारों के बीच प्रतिकर की रकम पर कुछ बातचीत आरंभ हुई और अंततोगत्वा टेक्नो पार्क, जिसके लिए प्रश्नगत संपत्ति का अर्जन किया गया था, 38,42,489/- रुपए की राशि का संदाय करने के लिए सहमत हुआ । पक्षकारों के बीच इस रकम पर सहमति बनने के पश्चात् अपीलार्थी टेक्नो पार्क के पक्ष में प्रश्नगत संपत्ति का विक्रय-विलेख निष्पादित करने के लिए सहमत हुआ । यह विक्रय-विलेख तारीख 8 मई, 2008 को निष्पादित किया गया और उप-रजिस्ट्रार, कज़ाक्कूटम के पास सम्यक् रूप से रजिस्ट्रीकृत किया गया । विक्रय प्रतिफल की रकम का संवितरण करते समय टेक्नो पार्क ने 10 प्रतिशत टी. डी. एस. की रकम की कटौती कर ली और बाद में आय-कर विभाग द्वारा अपीलार्थी को इस रकम का यह दृष्टिकोण अपनाते हुए प्रतिदाय कर दिया गया कि अपीलार्थी द्वारा प्राप्त पूर्वोक्त रकम पर कोई पूंजी अभिलाभ संदेय नहीं है क्योंकि यह रकम आय-कर अधिनियम, 1961 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 10(37)

के अधीन छूट प्राप्त है । हम अधिनियम की धारा 10(37) के उपबंधों को उद्धृत करना चाहेंगे, जो निम्न प्रकार से हैं :–

"धारा 10(37) – किसी निर्धारिती की दशा में, जो कोई व्यष्टि या कोई हिन्दू अविभक्त कुटुंब है, कृषि भूमि के अंतरण से उद्भूत 'पूंजी अभिलाभ' शीर्ष के अधीन प्रभार्य कोई आय, जहां –

(i) ऐसी भूमि धारा 2 के खंड (14) के उपखंड (iii) की मद (क) या मद (ख) में निर्दिष्ट किसी क्षेत्र में स्थित है ;

(ii) ऐसी भूमि, अंतरण की तारीख के ठीक पहले के दो वर्ष की अवधि के दौरान ऐसे हिन्दू अविभक्त कुटुंब या व्यष्टि या उसके माता-पिता में से किसी के द्वारा कृषि प्रयोजनों के लिए उपयोग की जा रही थी ;

(iii) ऐसा अंतरण किसी विधि के अधीन अनिवार्य अर्जन के रूप में है या ऐसा कोई अंतरण है जिसके लिए प्रतिफल का अवधारण या अनुमोदन केन्द्रीय सरकार या भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा किया गया है ;

(iv) ऐसी आय ऐसे अंतरण के लिए प्रतिकर या प्रतिफल से हुई है, जो ऐसे निर्धारिती द्वारा 1 अप्रैल, 2004 को या उसके पश्चात् प्राप्त किया गया है ।

स्पष्टीकरण – इस खंड के प्रयोजनों के लिए, 'प्रतिकर या प्रतिफल' पद के अंतर्गत किसी न्यायालय, अधिकरण या अन्य प्राधिकरण द्वारा बढ़ाया गया या और बढ़ाया गया प्रतिकर या प्रतिफल भी आता है ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

6. क्योंकि उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि किसी विधि के अधीन अनिवार्य अर्जन के रूप में कृषि भूमि के अंतरण पर कोई पूंजी अभिलाभ कर संदेय नहीं है । उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि अपीलार्थी को उपर्युक्त टी. डी. एस. रकम का प्रतिदाय करते समय आय-कर विभाग का प्रारंभ में यह दृष्टिकोण था कि प्रश्नगत भूमि का अर्जन भूमि अर्जन अधिनियम के अधीन अनिवार्य रूप से किया गया है । तथापि, उसके पश्चात् तारीख 30 मई, 2012 को अधिनियम की धारा 148 के अधीन अपीलार्थी को एक सूचना जारी की गई, जिसके द्वारा आय-कर विभाग में निर्धारण को इस

आधार पर पुन: खोलने का विनिश्चय किया कि वर्ष 2009-10 के दौरान आय जो आय-कर के लिए निर्धारणीय थी, वह निर्धारण से बच गई थी । राजस्व विभाग द्वारा इस सूचना में जो आधार लिया गया था, यह था कि अपीलार्थी द्वारा उपर्युक्त भूमि के बदले प्राप्त की गई प्रतिकर/प्रतिफल की रकम अनिवार्य अर्जन का परिणाम नहीं थी, इसके विपरीत यह अपीलार्थी द्वारा टेक्नो पार्क को किया गया स्वेच्छया विक्रय था और इसलिए अधिनियम की धारा 10(37) के उपबंध लागू थे । अपीलार्थी ने तारीख 30 नवंबर, 2012 का अपना उत्तर फाइल करके उक्त निर्धारण को पुनः खोले जाने का विरोध किया । तथापि, प्रत्यर्थी सं. 2 अर्थात् संयुक्त आयुक्त, आय-कर रेंज-I कावादियार, तिरुवंनतपुरम ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि मामला अनिवार्य अर्जन के अधीन नहीं आता है और तद्नुसार निर्धारण अधिकारी को आय की गणना करने का निदेश दिया । प्रत्यर्थी सं. 2 के तारीख 11 मार्च, 2003 के इस निदेश को अपीलार्थी द्वारा केरल उच्च न्यायालय में एक सिविल रिट याचिका फाइल करके चुनौती दी गई । तथापि, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने **इंफो पार्क केरल** बनाम **सहायक आय-कर आयुक्त**[1] वाले मामले में उसी उच्च न्यायालय के पूर्ववर्ती निर्णय का अवलंब लेते हुए तारीख 11 जुलाई, 2013 के निर्णय द्वारा उक्त रिट याचिका खारिज कर दी । अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई रिट अपील का भी वही परिणाम हुआ क्योंकि इसे विद्वान् एकल न्यायाधीश के दृष्टिकोण की अभिपुष्टि करते हुए खारिज कर दिया गया ।

7. इसी उपर्युक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में इस न्यायालय को यह अवधारित करना है कि क्या यह माना जा सकता है कि अपीलार्थी की भूमि अनिवार्य रूप से अर्जित की गई थी या नहीं । ऊपर उल्लिखित तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य सरकार द्वारा अर्जन प्रक्रिया भूमि अर्जन अधिनियम के उपबंधों का अवलंब लेकर आरंभ की गई थी । इस प्रयोजन के लिए धारा 4 के अधीन न केवल अधिसूचना जारी की गई थी, अपितु इसके पश्चात् भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 6 के अधीन घोषणा और यहां तक कि धारा 9 के अधीन अधिनिर्णय भी दिया गया था । अधिनिर्णय के साथ भूमि अर्जन अधिनियम के अधीन अर्जन पूर्ण हो गया था । उसके पश्चात् शेष रह गई एकमात्र बात अधिनिर्णय के अधीन यथा नियत प्रतिकर का संदाय करना और अपीलार्थी से प्रश्नगत भूमि का कब्जा

---

[1] (2008) के. एल. टी. 782.

लेना था । निस्संदेह, यदि भूमि अर्जन कलक्टर द्वारा यथा नियत प्रतिकर अपीलार्थी को स्वीकार्य न हो, तो भूमि अर्जन अधिनियम में जिला न्यायाधीश को प्रतिकर का अवधारण करने के लिए अधिनियम की धारा 18 के अधीन निर्देश करने और यह विनिश्चय करने का उपबंध किया गया है कि क्या भूमि अर्जन कलक्टर द्वारा नियत किया गया प्रतिकर उचित है या नहीं । तथापि, इसके पश्चात् एकमात्र विषय प्रतिकर की मात्रा का होता है, जिसका अर्जन से कुछ लेना-देना नहीं होता है । उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि जहां तक अर्जन का संबंध है, अपीलार्थी ने इस संबंध में सरकार द्वारा की गई कार्रवाई को मान लिया था । उसका एकमात्र आक्षेप भूमि के उस बाजार मूल्य को लेकर था जो उपरोक्त अनुसार नियत किया गया था । अपीलार्थी अपनी शिकायत को दोहराते हुए, बाजार मूल्य का अवधारण करने की बात न्यायालय पर छोड़ते हुए भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 18 के अधीन निर्देश की ईप्सा करते हुए उपर्युक्त न्यायनिर्णयनकारी रास्ता भी अपना सकता था । इसके बजाय, अपीलार्थी ने टेक्नो पार्क के साथ बातचीत की और 38,42,489/- रुपए की राशि का प्रतिकर प्राप्त करने की बात पर सहमत होकर एक सौहार्दपूर्ण समझौते पर पहुंचे । इस प्रयोजन के लिए ठहराव होने के पश्चात् अपीलार्थी विक्रय-विलेख निष्पादित करने के लिए भी सहमत हुआ जो एक आवश्यक परिणाम और एक कदम था जो अपीलार्थी को उठाना था ।

8. हमारे मत में, जहां तक भूमि के अर्जन का संबंध है, भूमि अनिवार्य रूप से अर्जित की गई थी क्योंकि भूमि अर्जन अधिनियम की संपूर्ण प्रक्रिया का अनुसरण किया गया था । जो समझौता हुआ था वह केवल उस प्रतिकर की रकम के संबंध में था जो अपीलार्थी को उस भूमि के लिए प्राप्त होना था जो अर्जित की गई थी । यह कहने की बात नहीं है कि यदि सरकार द्वारा भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 4 और 6 के अधीन कार्रवाई नहीं की गई होती और उसके पश्चात् धारा 9 के अधीन अधिनिर्णय नहीं दिया गया होता तो अपीलार्थी अपनी भूमि को टेक्नो पार्क को निर्निहित करने के लिए सहमत नहीं होता । वह अनिवार्य अर्जन के कारण ऐसा करने के लिए मजबूर हुआ था और मुकदमेबाजी से बचने के लिए बातचीत की थी और अंतिम प्रतिकर तय किया था । केवल इस कारण कि प्रतिकर की रकम पर सहमति हुई है, इस बात से अर्जन के इस स्वरूप में परिवर्तन नहीं हो जाता कि यह अनिवार्य अर्जन न होकर स्वेच्छया विक्रय था । यह उल्लेखनीय है कि अब यह प्रक्रिया भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता अधिकार अधिनियम,

2013 में भी अधिकथित की गई है, जिसके अनुसार कलक्टर पक्षकारों/भू-स्वामियों की सहमति से पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन का अधिनिर्णय पारित कर सकता है । फिर भी, अर्जन का स्वरूप अनिवार्य बना रहता है ।

9. इस न्यायालय को **इंफो पार्क केरल** बनाम **सहायक आय-कर आयुक्त** (उपरोक्त) वाले मामले में के निर्णय की शुद्धता के बारे में संदेह है । न्यायालय ने उक्त मामले में यह दृष्टिकोण अपनाया था कि चूंकि भू-स्वामियों द्वारा संपत्ति में का हक उनके द्वारा निष्पादित विक्रय-विलेखों के आधार पर संक्रांत किया गया था, इसलिए यह एक अनिवार्य अर्जन नहीं था । हम उपरोक्त दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं । यह स्पष्ट है कि अपीलार्थी द्वारा भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 4 के अधीन अधिसूचना और धारा 9 के अधीन अधिनिर्णय के बिना उस प्रतिफल के प्रतिकर के लिए कोई बातचीत नहीं की गई होती, जो उसे उक्त भूमि के लिए प्राप्त होना था । जहां तक प्रश्नगत भूमि के अर्जन का संबंध है, उसके बारे में कोई सहमति नहीं थी । अपीलार्थी ऐसी हालत में था कि वह जानता था कि उसकी भूमि का अर्जन किया जा चुका है और वह इसे वापस नहीं ले सकता है । इसलिए अपीलार्थी भूमि के बाजार मूल्य के अनुरूप यथा-संभव अधिक से अधिक प्रतिकर प्राप्त करके केवल इस प्रक्रिया में मुकदमेबाजी से बचना चाहता था ताकि वह समय पर प्रतिकर प्राप्त करने में समर्थ हो सके । यदि अपीलार्थी ने इस प्रयोजन के लिए बातचीत का रास्ता अपनाया है तो ऐसी बातचीत केवल प्रतिकर की मात्रा तक सीमित रहेगी और इससे अर्जन के स्वरूप में परिवर्तन या तब्दीली नहीं हो सकती है और स्वरूप अनिवार्य ही रहेगा । इसलिए हम **इंफो पार्क केरल** बनाम **सहायक आय-कर आयुक्त** (उपरोक्त) वाले मामले में उच्च न्यायालय के निर्णय को उलटते हैं ।

10. परिणामस्वरूप, अपीलार्थी की अपील मंजूर की जाती है और अधिनियम की धारा 148 के अधीन कार्यवाहियां अभिखंडित की जाती हैं ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

[2017] 4 उम. नि. प. 32

हिमांशु मोहन राय

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य

7 मार्च, 2017

न्यायमूर्ति एस. ए. बोबडे और न्यायमूर्ति नागेश्वर राव

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 – हत्या – सेशन न्यायालय द्वारा अभियुक्त को दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति – अभियुक्त द्वारा मृतक पर बंदूक की गोली चलाने की बाबत प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का परिसाक्ष्य सत्य और विश्वसनीय पाए जाने तथा साक्षी द्वारा अभियुक्त को मिथ्या रूप से फंसाए जाने के हेतु के बारे में तनिक भी साक्ष्य न होने पर छुट-पुट संदेहों और तकनीकियों के आधार पर उच्च न्यायालय द्वारा की गई अभियुक्त की दोषमुक्ति को स्वीकार नहीं किया जा सकता है तथा सेशन न्यायालय के निर्णय को कायम रखना उचित होगा ।

इत्तिलाकर्ता (अपीलार्थी) ने पुलिस थाने में यह इत्तिला दी कि लगभग 12.30 बजे अपराह्न में उसके होटल का एक वेटर, अर्थात् मनोज कुमार सिंह **उर्फ** बहादुर दूध लाने के लिए वरुणा ब्रिज गया था । दूध लेकर लौटते समय उसकी अभियुक्त (प्रत्यर्थी सं. 2) से टक्कर हो गई जो अपने सह-अपराधियों के साथ मत्तता की हालत में था । उन्होंने अपने नशे की हालत में वेटर पर हमला किया और वेटर दौड़कर शरण लेने के लिए होटल शालीमार में आया । प्रत्यर्थी सं. 2 और उसके सह-अपराधियों ने वेटर का पीछा किया । वे जबरदस्ती होटल में घुसे और वेटर को पीटने लगे । प्रथम इत्तिलाकर्ता, मृतक और राजनाथ सिंह (होटल भवन का मालिक) ने हमलावरों को शांत करने की कोशिश की और उन्हें होटल से बाहर ले गए । होटल के बाहर प्रत्यर्थी सं. 2 ने अपनी पिस्तौल निकाली और इत्तिलाकर्ता के बड़े भाई ललित मोहन राय पर कई गोलियां दाग दीं । ललित मोहन राय क्षतिग्रस्त होकर नीचे गिर गया । चन्द्र शेखर राय, कृष्ण कुमार सिंह और बहुत सारे अन्य व्यक्ति गोली चलने की आवाज सुनकर वहां एकत्रित हो गए । भीड़ को देखकर अभियुक्त और उसके सह-अपराधी अपने यानों को वहीं छोड़कर भाग गए । ललित मोहन राय को उपचार के

लिए चौराहा अस्पताल ले जाया गया, जहां उसकी मृत्यु हो गई । अभियुक्तों को तारीख 5 जनवरी, 2005 को गिरफ्तार किया गया । सेशन न्यायालय ने तीनों अभियुक्तों इमरान अफरीन, गुफरान अफरीन और अब्दुल वासी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया । गुफरान अफरीन और अब्दुल वासी को किशोर पाया गया और इसलिए उन्हें किशोर न्याय अधिनियम के अधीन अभियोजित किया गया । मृतक के भाई (अपीलार्थी) ने उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की तथा राज्य द्वारा भी दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रत्यर्थी की ओर से यह दलील दी गई कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट समय-पूर्व की थी । इस आलोचना को स्वीकार करना संभव नहीं है कि बहादुर द्वारा अभि. सा. 1 को झगड़े के बारे में नहीं बताया गया था किन्तु प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में इसका उल्लेख है । अभि. सा. 1 की प्रतिपरीक्षा पर गहराई से विचार करने पर यह दर्शित होता है कि वेटर ने उसे झगड़े का हेतुक नहीं बताया था । ऐसी कोई भी अपेक्षा नहीं है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अवश्य ही इत्तिलाकर्ता के हस्तलेख में होनी चाहिए । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पर किसी प्रकार से संदेह करना आवश्यक नहीं है क्योंकि गिरजेश राय की परीक्षा नहीं की गई थी । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अन्यथा पुलिस अधिकारी (अभि. सा. 7) के साक्ष्य से साबित हुई है, जिसने यह कथन किया कि हिमांशु राय और गिरजेश राय एक लिखित रिपोर्ट लेकर आए थे और उसने चिक रिपोर्ट लिखी तथा इसे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पर जीडी 1/005 के रूप में अभिलिखित किया । इसका समर्थन अभि. सा. 1 के अभिसाक्ष्य द्वारा होता है, जिसने गिरजेश राय के हस्तलेख और उसके हस्ताक्षरों को निर्दिष्ट किया तथा तहरीर पर उनकी शनाख्त की । उपरोक्त किसी भी परिस्थिति से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट समय-पूर्व की थी । पुलिस ने अभियुक्त इमरान अफरीन से जब वह एक रेलगाड़ी में सवार हो रहा था, एक लाइसेंसशुदा बंदूक बरामद की थी और प्राक्षेपिकी की रिपोर्ट से यह दर्शित होता है कि हत्या करने के लिए इस लाइसेंसशुदा बंदूक का प्रयोग नहीं किया गया था । इसका यह अर्थ है कि पुलिस ने वह वास्तविक आयुध बरामद नहीं किया था जो हत्या करने के लिए प्रयुक्त किया गया था और अभियुक्त के पास उस आयुध को ठिकाने लगाने के लिए पर्याप्त समय था । तथापि, उस प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के विश्वसनीय प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य को नामंजूर करना संभव नहीं है,

जिसने गोली चलाते हुए देखी और उसका साक्ष्य सत्य पाया गया हो । इस न्यायालय छुट-पुट संदेहों और तकनीकियों के आधार पर उच्च न्यायालय की इस तर्कणा को स्वीकार करना संभव नहीं है कि ललित मोहन राय की हत्या के लिए अभियुक्त को दोषसिद्ध और दंडादिष्ट करने वाला निर्णय निराधार है । सेशन न्यायालय, जिसके पास साक्षियों के भाव-भंगी देखने की सहूलियत थी, के निर्णय को हलकेपन से अपास्त नहीं किया जाना चाहिए था । ऐसे मामलों में जहां प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का साक्ष्य सत्य पाया गया है और जैसा कि इस मामले में ऐसे साक्ष्य की संपुष्टि इस तथ्य से होती है कि मृतक के शरीर से गोलियां बरामद की गईं थीं, यह स्पष्ट है कि वहां दोषमुक्ति नहीं की जा सकती है । (पैरा 10, 11, 12, 14, 18 और 19)

अवलंबित निर्णय

पैरा

[2014] (2014) 1 ए. सी. आर. 147 :
गंगा भवानी बनाम **रायापति वेंकट रेड्डी और अन्य** ; 16

[2003] (2003) 11 एस. सी. सी. 219 = (2004) एस. सी. सी. (क्रि.) 90 :
बृजपाल सिंह बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ; 15

[1990] (1990) 3 एस. सी. सी. 266 :
अनवरूद्दीन बनाम **शकूर** ; 15

[1988] (1988) (सप्ली.) एस. एस. सी. 686 :
उत्तर प्रदेश राज्य बनाम **अनिल सिंह** ; 20

[1973] [1973] 3 उम. नि. प. 1011 = (1973) 2 एस. सी. सी. 793 :
शिवाजी साहबराव बोबडे बनाम **महाराष्ट्र राज्य** । 20

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2011 की दांडिक अपील सं. 827 (इसके साथ 2011 की दांडिक अपील सं. 829).

2008 की दांडिक अपील सं. 8239 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 22 अप्रैल, 2010 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

उपस्थित पक्षकारों की ओर से सर्वश्री अमरेन्द्र शरण, ज्येष्ठ अधिवक्ता, (डा.) दिव्येश प्रताप सिंह, कुंवर आदित्य सिंह, सूरज प्रकाश सिंह, (डा.) कैलाश चंद, विवेक विश्नोई, एम. आर. शमशाद, आदित्य समद्दर, फारुख रशीद, आलमगीर, ज़हिद हुसैन, असीम चन्द्र, (सुश्री) अपराजिता मुखर्जी, सिद्धार्थ दवे और (सुश्री) जामलीबेन

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एस. ए. बोबडे ने दिया ।

न्या. बोबडे – 2011 की दांडिक अपील सं. 827 अभि. सा. 1 (हिमांशु मोहन राय) द्वारा फाइल की गई है और यह प्रत्यर्थी सं. 2 इमरान खान की दोषमुक्ति के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है । सेशन न्यायालय ने प्रत्यर्थी-अभियुक्त को मृतक ललित मोहन राय की हत्या के लिए भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे इसमें आगे "भारतीय दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया था । सेशन न्यायालय द्वारा उसे आजीवन कारावास के साथ-साथ 50,000/- रुपए के जुर्माने से दंडादिष्ट किया गया था । उच्च न्यायालय ने सेशन न्यायालय के निर्णय को अपास्त कर दिया और प्रत्यर्थी-अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया । उत्तर प्रदेश राज्य ने भी दोषमुक्ति के विरुद्ध 2011 की दांडिक अपील सं. 829 फाइल की है ।

प्रथम इत्तिला रिपोर्ट

2. घटना तारीख 1 जनवरी, 2005 को 8.30-9.00 बजे अपराह्न में होटल शालीमार के सामने घटी थी, जो मृतक और उसके भाई का था । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट उसी दिन 11.05 बजे अपराह्न में मृतक के भाई हिमांशु मोहन राय (अभि. सा. 1) द्वारा रजिस्ट्रीकृत कराई गई थी । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अनुसार, अपराध इमरान अफरीन और उसके दो सह-अपराधियों, जिनके नाम और पते अपराध की इत्तिला करते समय अज्ञात थे, द्वारा कारित किया गया था । इत्तिलाकर्ता ने यह इत्तिला दी कि लगभग 12.30 बजे अपराह्न में उसके होटल का एक वेटर, अर्थात् मनोज कुमार सिंह **उर्फ** बहादुर दूध लाने के लिए वरुणा ब्रिज गया था । दूध लेकर लौटते समय उसकी अभियुक्त (प्रत्यर्थी सं. 2) से टक्कर हो गई जो अपने

सह-अपराधियों के साथ मत्तता की हालत में था । उन्होंने अपने नशे की हालत में वेटर पर हमला किया और वेटर दौड़कर शरण लेने के लिए होटल शालीमार में आया । प्रत्यर्थी सं. 2 ने इंडिगो कार सं. यू. पी.-65-एक्स-0002 में और उसके सह-अपराधियों ने यामाहा मोटर साइकिल सं. यू. पी. जैड-5214 पर वेटर का पीछा किया । वे जबरदस्ती होटल में घुसे और वेटर को पीटने लगे ।

प्रथम इत्तिलाकर्ता, मृतक और राजनाथ सिंह (होटल भवन का मालिक) ने हमलावरों को शांत करने की कोशिश की और उन्हें होटल से बाहर ले गए । होटल के बाहर प्रत्यर्थी सं. 2 ने अपनी पिस्तौल निकाली और इत्तिलाकर्ता के बड़े भाई ललित मोहन राय पर कई गोलियां दाग दीं । ललित मोहन राय क्षतिग्रस्त होकर नीचे गिर गया । चन्द्र शेखर राय, कृष्ण कुमार सिंह और बहुत सारे अन्य व्यक्ति गोली चलने की आवाज सुनकर वहां एकत्रित हो गए । भीड़ को देखकर अभियुक्त और उसके सह-अपराधी अपने यानों को वहीं छोड़कर भाग गए ।

ललित मोहन राय को उपचार के लिए चौराहा अस्पताल ले जाया गया, जहां उसकी मृत्यु हो गई ।

अन्वेषण

3. प्रारम्भ में अन्वेषण थाना मुख्य अधिकारी, डी. पी. शुक्ला (अभि. सा. 6) द्वारा किया गया । अपीलार्थियों ने यह अभिकथन किया कि डी. पी. शुक्ला की अभियुक्तों के साथ सांठगांठ थी । भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन रजिस्ट्रीकृत अपराध को पुलिस निरीक्षक द्वारा परिवर्तित कर दिया गया और उसकी बजाय धारा 304 के अधीन रजिस्ट्रीकृत किया गया । परिणामतः, अन्वेषण का कार्य श्रीनिवास पांडे (अभि. सा. 5) नामक एक उप-निरीक्षक को अंतरित कर दिया गया । अपीलार्थी ने यह शिकायत की कि श्रीनिवास पांडे अभियुक्तों का पक्ष ले रहा है और उसके पश्चात् अन्वेषण का कार्य वापस आर. के. सिंह (अभि. सा. 7) नामक निरीक्षक को अंतरित किया गया ।

4. अभियुक्तों को तारीख 5 जनवरी, 2005 को गिरफ्तार किया गया ।

सेशन न्यायालय

5. सेशन न्यायालय ने तीनों अभियुक्तों इमरान अफरीन, गुफरान

अफरीन और अब्दुल वासी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया । गुफरान अफरीन और अब्दुल वासी को किशोर पाया गया और इसलिए उन्हें किशोर न्याय अधिनियम के अधीन अभियोजित किया गया ।

सेशन न्यायालय ने यह पाया कि अभियोजन का वृत्तांत साबित होता है । इमरान अफरीन ने शालीमार होटल के वेटर, बहादुर के साथ झगड़ा किया था । बहादुर दौड़कर शालीमार होटल में आ गया, जो मृतक और उसके भाई (अभि. सा. 1) द्वारा चलाया जाता था । इमरान अफरीन ने इंडिको कार से और अन्य सह-अभियुक्तों ने यामाहा मोटर साइकिल से बहादुर का पीछा किया और होटल में घुस आए । ललित मोहन राय, हिमांशु मोहन राय और राजनाथ सिंह के साथ हमलावरों को उन्हें शांत करने के लिए होटल से बाहर ले गया । होटल के बाहर गर्मागर्म बहस हुई और इसके उपरान्त एक सह-अपराधी ने इमरान अफरीन को यह कहते हुए उकसाया कि "देख क्या रहे हो" ? गोली चलाओ और उसे ललित मोहन को गोली मारने और उसे मार देने के लिए कहा । इमरान अफरीन ने इसके पश्चात् पांच राउंड गोलियां चलाईं । ललित मोहन राय नीचे गिर गया और अभि. सा. 1 द्वारा अस्पताल ले जाया गया । उसे अस्पताल में मृत घोषित कर दिया गया ।

उच्च न्यायालय

6. उच्च न्यायालय ने अभियोजन के वृत्तांत को अविश्वसनीय पाया और सेशन न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित की गई दोषसिद्धि को अपास्त कर दिया :–

(i) मुख्य रूप से इस आधार पर अपास्त कर दिया कि अभि. सा. 1 निम्नलिखित बातों को दृष्टिगत करते हुए विश्वसनीय साक्षी नहीं है –

(क) बहादुर और अभियुक्त के बीच सड़क पर हुए झगड़े को स्वीकृत रूप से अभि. सा. 1 द्वारा नहीं देखा गया था । वह वेटर से तारीख 1 जनवरी, 2005, 2 जनवरी, 2005 और 3 जनवरी, 2005 को मिला था । इस साक्षी ने यह स्वीकार किया कि वह अपने भाई के दाह-संस्कार के समय तक बहादुर से नहीं मिला था ।

(ख) अभि. सा. 1 को अभियुक्तों के नाम तारीख 5

जनवरी, 2005 को तब पता चले थे जब वह कांग्रेस नेता अब्दुल कलाम के घर श्रद्धांजलि देने गया था । उसने संयोग से अभियुक्तों के नाम सुने थे और वह उन्हें पहले से जानता था, किन्तु पुलिस को उनके नाम केवल 9 जनवरी, 2005 को प्रकट किए थे ।

(ग) अभि. सा. 1 गाजीपुर गया था और तारीख 5 जनवरी, 2005 को सायंकाल में ही वापस आया था । मृत्यु-समीक्षा दोपहर में उसकी मौजूदगी में की गई थी और उसके पश्चात् शव मरणोत्तर परीक्षा के लिए भेजा गया था, यह तथ्य उसकी मौजूदगी को नकारता है ।

(घ) अभि. सा. 1 ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट स्वयं नहीं लिखी थी, हालांकि वह शिक्षित था और माध्यमिक स्तर तक शिक्षा प्राप्त की थी । उसने घटना के बारे में अपने चाचा गिरजेश राय को बताया था । गिरजेश राय ने घटना लिखी और अभि. सा. 1 ने यह पढ़ने के पश्चात् कि क्या लिखा है, उस पर हस्ताक्षर किए । तत्पश्चात्, गिरजेश राय कैंट पुलिस थाने गया और इत्तिला दी ।

उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि वह घटना के समय उस स्थान के आस-पास कहीं नहीं था ।

(ii) अभियोजन पक्ष ने वेटर, बहादुर की परीक्षा नहीं कराई, जो कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षी था, हालांकि अन्वेषक अधिकारी घटनास्थल पर बरामदगी के समय उससे मिला था और उसके बताने पर स्थल-नक्शा बनाया था ।

(iii) अभियोजन पक्ष ने दो व्यक्तियों राजनाथ सिंह और के. के. सिंह को विधारित कर लिया, जिनकी किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष परीक्षा की गई थी किन्तु उन्हें पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया था । उनके नाम साक्षियों की सूची में थे, किन्तु उनकी परीक्षा नहीं कराई गई ।

(iv) यह प्रकथन कि मृतक का शव एक टेम्पो में लाया गया था, न तो सिद्ध किया गया है और न ही इसे अन्वेषक अधिकारी को दिखाया गया था । वहां कोई रक्त नहीं पाया गया था और साक्षियों

के रक्त-रंजित वस्त्रों को भी पुलिस के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया था ।

(v) प्रथम इत्तिला रिपोर्ट समय-पूर्व की थी और 11.05 बजे अपराह्न में रजिस्ट्रीकृत की गई दिखाई गई, यद्यपि यह बाद में रजिस्ट्रीकृत की गई थी ।

साक्षी

7. हिमांशु मोहन राय (अभि. सा. 1) मृतक का भाई है और प्रथम इत्तिलाकर्ता है । वह मृतक के साथ होटल शालीमार का प्रबंध कर रहा था । यह बात अभियुक्त द्वारा विवादग्रस्त नहीं की गई है ।

7(क). अभि. सा. 1 ने यह कथन किया कि उसने घटना को स्पष्ट रूप से देखा था क्योंकि नव-वर्ष के अवसर पर होटल को रोशनी से सजाया गया था और इसलिए अभियुक्तों की उस रोशनी में शनाख्त की थी । उसने यह कथन किया कि उसने वह रक्तरंजित स्वेटर उतारा था जो शायद ललित मोहन राय ने पहना हुआ था और इसे गिरजेश राय के स्कूटर की डिक्की में रखा था ।

उसने यह कथन किया कि जब इमरान अफरीन ने ललित मोहन राय पर गोली चलाई थी तब बहादुर मौजूद था । उसने समुचित धारा लगाने के लिए ज्येष्ठ पुलिस अधीक्षक को तारीख 8 जनवरी, 2005 को दिए गए आवेदन में अभियुक्तों के नाम नहीं दिए थे क्योंकि उसने यह नहीं सोचा था कि ऐसा करना आवश्यक है । इस साक्षी ने इस सुझाव से इनकार किया कि उसके भाई की हत्या होटल से दूर कुछ पेशेवर हत्यारों ने की थी ।

इस साक्षी का परिसाक्ष्य किसी तात्विक बिन्दु पर, विशिष्ट रूप से प्रतिपरीक्षा में, डगमगाया नहीं है । हम इस साक्षी के परिसाक्ष्य के बारे में कुछ भी अविश्वसनीय नहीं पाते हैं और इसे त्यक्त करने का कोई कारण नहीं है ।

7(ख). प्रत्यर्थी-अभियुक्त की ओर से काउंसेल श्री अमरेन्द्र शरण ने यह दलील दी कि अभि. सा. 1 की मौजूदगी संदेहास्पद है क्योंकि इस साक्षी ने न्यायालय के समक्ष अपने रक्त-रंजित वस्त्रों को प्रस्तुत नहीं किया और न ही उसने पुलिस को रक्त-रंजित स्वेटर दिखाया । जब मृतक को अस्पताल ले जाया गया था, तब उसके शरीर पर कोई स्वेटर न होने के बारे में अभि. सा. 1 द्वारा कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया ।

हम अभि. सा. 1 के वृत्तांत को इसके समग्र रूप में अविश्वसनीय ठहराने के लिए इस कारण को पर्याप्त नहीं समझते । यह संभव है कि इस साक्षी को याद न हो कि उस आपात स्थिति में स्वेटर कहा गया जो उसके भाई को गोली मारने के पश्चात् पैदा हुई थी । इस आलोचना में भी कोई सार नहीं है कि वेटर के साथ पहले हुए झगड़े का प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में उल्लेख किया गया था, फिर भी इस साक्षी ने बाद में यह कथन किया कि बहादुर ने उसे घटना के बारे में नहीं बताया था । यह संभव है कि बहादुर ने घटना का उल्लेख तो किया हो किन्तु यह नहीं बताया हो कि झगड़ा कैसे पैदा हुआ था । प्रतिपरीक्षा के दौरान के अन्य लोप, जैसे कि अभि. सा. 1 का यह उल्लेख करने में असफल रहना कि उसने अन्य अभियुक्तों के नाम संयोग से अंत्येष्टि के समय सुने थे, निर्णायक नहीं हैं । हम इस साक्षी के इस कथन में भी कुछ अविश्वसनीय नहीं पाते हैं कि उसे अन्य अभियुक्तों के नामों का स्थानीय विधायक अब्दुल कलाम की अंत्येष्टि के समय पता लगा था ।

8. चन्द्र शेखर राय (अभि. सा. 2) से घटना के लगभग 25 से 30 दिन पश्चात् परिप्रश्न किए गए थे और 8 दिन पश्चात् पूछताछ की गई थी । उसकी आलोचना एक गढ़े गए साक्षी के रूप में की गई है । इस बाबत यह उल्लेखनीय है कि अन्वेषण पहले थाना भारसाधक अधिकारी, डी. पी. शुक्ला (अभि. सा. 6) द्वारा किया गया था, जो घटना के समय से लेकर 12.10 बजे अपराह्न तक अन्वेषक अधिकारी था । असाधारण रूप से, इस अन्वेषक अधिकारी ने भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन हत्या के अपराध को धारा 304 में परिवर्तित कर दिया था । चूंकि धारा 304 के अधीन अपराध एक कमतर अपराध बन गया, इसलिए, अन्वेषण श्रीनिवास पांडे नामक एक उप-निरीक्षक को अन्तरित कर दिया गया, जो तारीख 2 जनवरी, 2005 को 12.10 बजे अपराह्न से तारीख 9 जनवरी, 2005 को 6.00 बजे अपराह्न तक अन्वेषक अधिकारी था । अभियुक्त को यह शिकायत प्राप्त होने पर कि अन्वेषण उचित रूप से नहीं किया जा रहा है, पुलिस ने अन्वेषण का कार्य वापस आर. के. सिंह (अभि. सा. 7) नामक एक पुलिस निरीक्षक को अंतरित कर दिया, जिसने तारीख 9 जनवरी, 2005 को कार्यभार संभाला और तारीख 19 जनवरी, 2005 को आरोप पत्र फाइल होने तक मामले का अन्वेषण किया । संभवतः, इसी वजह से अभि. सा. 2 से लम्बे समय तक परिप्रश्न नहीं किए जा सके थे । यह प्रतीत होता है कि नए अन्वेषक अधिकारी ने अन्वेषण को आगे चलाने, अभि. सा. 2 से परिप्रश्न करने और उसका कथन अभिलिखित करने में समय लिया ।

9. इन परिस्थितियों में, हम नहीं मानते कि इस विलम्ब से ऐसा संदेह कारित होता है जिससे अभि. सा. 2 के परिसाक्ष्य को पूरी तरह से नामंजूर करना आवश्यक हो । अभि. सा. 2 के परिसाक्ष्य से घटना के सभी तात्विक ब्यौरों के बारे में अभि. सा. 1 के वृत्तांत की पूरी तरह से अभिपुष्टि होती है । हम इस परिसाक्ष्य को इस आधार पर नामंजूर करने के लिए तैयार नहीं हैं कि उसका कथन 30 दिन पश्चात् अभिलिखित किया गया था, विशिष्ट रूप से चूंकि अन्वेषक अधिकारियों को परिवर्तित किया गया था ।

अतः हमारा यह निष्कर्ष है कि अभि. सा. 2 के साक्ष्य से अभि. सा. 1 के साक्ष्य की अभिपुष्टि होती है । यह परिसाक्ष्य विश्वसनीय है और इससे यह साबित होता है कि अभियुक्त ने मृतक को अभियोजन पक्ष द्वारा अभिकथित अनुसार गोली मारी थी ।

समय-पूर्व की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट

10. प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तारीख 1 जनवरी, 2005 को 11.05 बजे अपराह्न में दर्ज की गई थी । अभि. सा. 1 ने बहादुर के साथ हुई भिड़ंत की घटना का वर्णन किया था, फिर भी उसने प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया कि बहादुर के साथ घटना के हेतुक पर चर्चा करने का उसके पास कोई अवसर नहीं था । प्रत्यर्थी की ओर से यह दलील दी गई कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट समय-पूर्व की थी । प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट इत्तिलाकर्ता के हस्तलेख में नहीं है और न ही उसके द्वारा बोलकर लिखवाई गई है । गिरजेश राय, जिसने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट लिखी थी, की न्यायालय द्वारा परीक्षा नहीं की गई थी ।

11. इस आलोचना को स्वीकार करना संभव नहीं है कि बहादुर द्वारा अभि. सा. 1 को झगड़े के बारे में नहीं बताया गया था किन्तु प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में इसका उल्लेख है । अभि. सा. 1 की प्रतिपरीक्षा पर गहराई से विचार करने पर यह दर्शित होता है कि वेटर ने उसे झगड़े का हेतुक नहीं बताया था । ऐसी कोई भी अपेक्षा नहीं है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अवश्य ही इत्तिलाकर्ता के हस्तलेख में होनी चाहिए । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पर किसी प्रकार से संदेह करना आवश्यक नहीं है क्योंकि गिरजेश राय की परीक्षा नहीं की गई थी । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अन्यथा पुलिस अधिकारी (अभि. सा. 7) के साक्ष्य से साबित हुई है, जिसने यह कथन किया कि हिमांशु राय और गिरजेश राय एक लिखित रिपोर्ट लेकर आए थे और उसने

चिक रिपोर्ट लिखी तथा इसे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पर जीडी 1/005 के रूप में अभिलिखित किया । इसका समर्थन अभि. सा. 1 के अभिसाक्ष्य द्वारा होता है, जिसने गिरजेश राय के हस्तलेख और उसके हस्ताक्षरों को निर्दिष्ट किया तथा तहरीर पर उनकी शनाख्त की ।

12. उपरोक्त किसी भी परिस्थिति से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट समय-पूर्व की थी । न ही प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने के समय पर अविश्वास करना संभव है क्योंकि पुलिस कांस्टेबल घटनास्थल पर गया था और 11.05 बजे अपराह्न में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के रजिस्ट्रीकरण से पूर्व अर्थात् 10.00 बजे अपराह्न में एक कमीज अभिगृहीत की थी । वास्तव में, पुलिस निरीक्षक (अभि. सा. 6) ने अपने साक्ष्य में यह कहा कि उसने कमीज "रात्रि में लगभग 10.00 बजे" अभिगृहीत की थी और उसे यथावत् समय याद नहीं है ।

प्राक्षेपिकी रिपोर्ट से यह पुष्टि नहीं होती कि गोलियां बरामद आयुध से चलाई गईं थीं

13. अभि. सा. 6 ने बहादुर और कृष्ण कुमार सिंह की मौजूदगी में 0.32 बोर के तीन कारतूस के खोल की बरामदगी की थी । स्पष्ट रूप से, प्राक्षेपिकी विज्ञानी की रिपोर्ट सकारात्मक नहीं है और रिपोर्ट से यह पुष्टि नहीं होती कि गोलियां उसी आयुध से चलाई गईं थीं, जो बरामद किया गया था ।

14. स्पष्टतः, पुलिस ने अभियुक्त इमरान अफरीन से जब वह एक रेलगाड़ी में सवार हो रहा था, एक लाइसेंसशुदा बंदूक बरामद की थी और प्राक्षेपिकी की रिपोर्ट से यह दर्शित होता है कि हत्या करने के लिए इस लाइसेंसशुदा बंदूक का प्रयोग नहीं किया गया था । इसका यह अर्थ है कि पुलिस ने वह वास्तविक आयुध बरामद नहीं किया था जो हत्या करने के लिए प्रयुक्त किया गया था और अभियुक्त के पास उस आयुध को ठिकाने लगाने के लिए पर्याप्त समय था । तथापि, उस प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के विश्वसनीय प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य को नामंजूर करना संभव नहीं है, जिसने गोली चलते हुए देखी और उसका साक्ष्य सत्य पाया गया हो ।

15. यह संभव है कि अभियोजन पक्ष कुछ मामलों में वास्तविक आयुध बरामद न कर सके । तथापि, इससे ऐसे भरोसेमंद प्रत्यक्षदर्शी परिसाक्ष्य को अविश्वसनीय नहीं ठहराया जा सकता है जैसा कि इस मामले में हमारे समक्ष है जहां अभियुक्त ने गोली चलाई और मृतक की हत्या कर

दी, विशिष्ट रूप से जब चली हुई गोलियां बरामद की गईं हैं और जो सामान्य तौर पर प्रयुक्त किए जाने वाले 7.65 मि. मी. अर्थात् 0.32 बोर के आयुध से संबंधित पाईं गईं हैं ।

अनवरूद्दीन बनाम **शकूर**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने प्राक्षेपिकी विज्ञानी के अस्पष्ट और दोलायमान साक्ष्य के प्रभाव पर विचार किया था । न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि :–

> "10. . . . . प्राक्षेपिकी विज्ञानी के इस अस्पष्ट साक्ष्य की स्थिति में हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय ने इस आधार पर तीन प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के प्रत्यक्ष साक्ष्य पर संदेह करके पूर्णतः गलती की है । जहां प्राक्षेपिकी विज्ञानी की रिपोर्ट अस्पष्ट और दोलायमान है, वहां ऐसे अनिश्चित साक्ष्य के आधार पर प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के प्रत्यक्ष परिसाक्ष्य को अविश्वसनीय मानना उचित नहीं है । ऐसी स्थिति में, जब तक प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों का साक्ष्य कुछ स्पष्ट कमियों द्वारा डगमगाता न हो, तब तक उनके कथनों की सत्यता पर संदेह करना उचित नहीं होगा . . . . . ।"

बृजपाल सिंह बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि विश्वसनीय प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य है कि अभियुक्त ने मृतक को गोली मारी थी । तथापि, प्राक्षेपिकी विज्ञानी ने, जैसा कि इस मामले में है, यह रिपोर्ट दी कि हालांकि यह पाया गया है कि दोनों बंदूकें हाल ही में चलाई गईं थीं, तो भी खाली कारतूस, जो घटनास्थल से अभिगृहीत किए गए थे, उस राइफल से मेल नहीं खाते हैं जो बरामद की गईं थी । इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि प्रसामान्यतः, यदि प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का साक्ष्य पूरी तरह से स्वीकार्य है, तब ऐसे साक्ष्य को स्वीकार किया जा सकता है, भले ही चिकित्सीय या प्राक्षेपिकी की रिपोर्ट में कुछ विरोधाभास हो । तथापि, इस मामले में मौखिक साक्ष्य स्वीकार्य नहीं पाया गया था । इसके विपरीत, प्रस्तुत मामले में हमने मौखिक साक्ष्य को, विशिष्ट रूप से अभि. सा. 1 के साक्ष्य को पूर्णतः स्वीकार्य और सत्य पाया है । अभिलेख पर ऐसा तनिक भी साक्ष्य नहीं है जिससे यह सुझाव मिलता हो कि इस साक्षी का अभियुक्त को मिथ्या रूप से फंसाने का कोई हेतु हो । हम यह कहना चाहेंगे कि ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि पुलिस ने

---

[1] (1990) 3 एस. सी. सी. 266.

[2] (2003) 11 एस. सी. सी. 219 = (2004) एस. सी. सी. (क्रि.) 90.

अभियुक्त को फंसाने के लिए, जैसा कि प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा तर्क दिया गया है, षड्यंत्र किया था जोकि एक कांग्रेस नेता था और उसने पुलिस की स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध विरोध किया था ।

16. **गंगा भवानी** बनाम **रायापति वेंकट रेड्डी और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने एक भिन्न संदर्भ में, यह मत व्यक्त किया था कि यदि चिकित्सीय साक्ष्य और प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के बीच विरोधाभास है, तो विधि यह है कि यद्यपि चिकित्सीय साक्ष्य के मुकाबले प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के प्रत्यक्षदर्शी परिसाक्ष्य का अधिक साक्षियक महत्व है, तो भी जहां चिकित्सीय साक्ष्य इतना सटीक हो कि यह प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के सत्य होने की सारी संभाव्यता को पूरी तरह से नकार दे, तो प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य को अविश्वसनीय माना जा सकता है । प्रस्तुत मामले में, विज्ञानी के इस साक्ष्य से, कि खाली कारतूस जो घटनास्थल पर पाए गए थे, वे उस आयुध से नहीं चलाए गए थे जो बरामद किया गया था, अभि. सा. 1 के इस प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य से वास्तव में कोई विरोधाभास उत्पन्न नहीं होता कि अभियुक्त ने मृतक पर बंदूक से गोली चलाई और उसकी हत्या कर दी । यह विरोधाभास इसलिए है कि जो बंदूक पुलिस द्वारा बरामद की गई थी, वह ऐसी बंदूक निकली थी जिसका प्रयोग नहीं किया गया था । इस बात से अभि. सा. 1 के साक्ष्य और प्राक्षेपिकी रिपोर्ट के बीच कोई विरोधाभास उत्पन्न नहीं होता है, हालांकि मोटे तौर पर यह बात अभियोजन पक्षकथन में विरोधाभास की कोटि में आ सकती है ।

17. इस मामले में, प्राक्षेपिकी रिपोर्ट को असत्य मानकर नामंजूर करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इसमें केवल यह उल्लेख है कि घटनास्थल पर पाए गए खाली कारतूस अभियुक्त से बरामद की गई बंदूक से नहीं चलाए गए थे । किन्तु इस बात का अभि. सा. 1 के इस अभिसाक्ष्य के साथ कोई सरोकार नहीं है कि अभियुक्त ने एक बंदूक से अभियुक्त को गोली मारी थी, विशिष्ट रूप से क्योंकि इस बात की अभिपुष्टि शरीर में पाई गई गोलियों से होती है । इस मामले में, हम हिमांशु मोहन राय के साक्ष्य को स्वीकार करना और स्पष्ट विरोधाभासों की अनदेखी करना सुरक्षित पाते हैं । हम यह कहना चाहेंगे कि इस तथ्य की अभिपुष्टि अभि. सा. 2 के परिसाक्ष्य द्वारा भी होती है कि अभियुक्त ने मृतक को बंदूक से गोली मारी थी ।

---

[1] (2014) 1 ए. सी. आर. 147.

18. हमारे लिए छुट-पुट संदेहों और तकनीकियों के आधार पर उच्च न्यायालय की इस तर्कणा को स्वीकार करना संभव नहीं है कि ललित मोहन राय की हत्या के लिए अभियुक्त को दोषसिद्ध और दंडादिष्ट करने वाला निर्णय निराधार है । सेशन न्यायालय, जिसके पास साक्षियों के भाव-भंगी देखने की सहूलियत थी, के निर्णय को हल्केपन से अपास्त नहीं किया जाना चाहिए था ।

19. ऐसे मामलों में जहां प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का साक्ष्य सत्य पाया गया है और जैसा कि इस मामले में ऐसे साक्ष्य की संपुष्टि इस तथ्य से होती है कि मृतक के शरीर से गोलियां बरामद की गई थीं, यह स्पष्ट है कि वहां दोषमुक्ति नहीं की जा सकती है ।

20. इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि कतिपय परिस्थितियों में निस्संदेह दोषमुक्ति में हस्तक्षेप किया जा सकता है । **शिवाजी साहबराव बोबडे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि :–

> "6. .....संदेह के फायदे के नियम के प्रति सामाजिक रक्षा की कीमत पर अत्यधिक निष्ठा के खतरों पर और इस प्रशमनकारी भावना पर कि विपदाग्रस्त और समुदाय के प्रति न्याय को विचार में लाए बिना सभी दोषमुक्तियां सदैव ही अच्छी होती हैं, बढ़ते अपराध और उससे बच निकलने के समकालीन संदर्भ में विशेष बल देने की आवश्यकता है । न्यायिक तंत्र की जनता प्रति जवाबदेही है । युक्तियुक्त संदेह के परे सबूत के पोषित सिद्धांतों या स्वर्णिम सूत्र, जो हमारी विधि के ताने-बाने में व्याप्त हैं, उन्हें प्रत्येक आभास, दुविधा और संदेह की मात्रा को अंगीकार करने के लिए घिनौने रूप में नहीं खींचना चाहिए । हजार दोषी व्यक्तियों को छोड़ना पड़े, किन्तु एक निर्दोष यातनाग्रस्त को कष्ट न उठाना पड़े, इस दृष्टिकोण में प्रतिबिम्बित अत्यधिक उत्कंठा एक मिथ्या दुविधा है । अभियुक्त से संबंध केवल युक्तियुक्त संदेहों से है । अन्यथा, फिर न्याय की कोई भी व्यावहारिक व्यवस्था ध्वस्त हो जाएगी और समुदाय का विश्वास खो देगी । जैसा कि एक विद्वान् लेखक ने ठीक ही मत व्यक्त किया है कि किसी दोषी व्यक्ति को हल्केपन से दोषमुक्त करने की बुराई

---

[1] [1973] 3 उम. नि. प. 1011 = (1973) 2 एस. सी. सी. 793.

इस सरल से तथ्य से ज्यादा बड़ी है कि एक दोषी व्यक्ति अदंडित निकल गया । यदि सारहीन दोषमुक्तियां आम बात बन जाती है, तो उनसे विधि के निदंक, अनादर की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलेगा और फिर से इसके कारण जनता अभ्यारोपित 'व्यक्तियों' के विरुद्ध अधिक कठोर विधिक उपधारणाओं और दोषी पाए जाने वालों को अधिक कठोर दंड देने की मांग करेंगी । अतः, दोषी व्यक्तियों की बहुधा होने वाली दोषमुक्तियों से क्रूर दांडिक विधि को बढ़ावा मिल सकता है, जिसके परिणामस्वरूप निर्दोष को मिलने वाले न्यायिक संरक्षण का ह्रास होगा ..... । संक्षेप में, अनुमानित निर्दोषिता के लिए हमारे विधिशास्त्रीय उत्साह को दांडिक न्याय व्यवस्था को समर्थ और यथार्थ बनाने की व्यावहारिक आवश्यकता को संतुलित किया जाना आवश्यक है । अपकारी को मुक्त करने की अच्छी संभाव्यताओं के अवसर तथा उपांतिक निर्दोषों को दंडित करने की अधिसंभाव्यता की प्रबलता के बीच संतुलन बनाया जाना चाहिए ..... ।"

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम **अनिल सिंह**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

"17. हमारा यह अनुभव रहा है कि साक्षी निरपवाद रूप से अभियोजन के वृत्तांत में शायद अविश्वसनीय ठहराए जाने के डर से नमक-मिर्च लगाते हैं । किन्तु यदि मुख्यांश सत्य है, तो वह मामले को नामंजूर करने का आधार नहीं है । यदि मुख्यांश में सत्यता प्रतीत होती है, तो मामले को नामंजूर नहीं करना चाहिए । न्यायालय का यह कर्तव्य है कि साक्ष्य से सत्यता को प्रकट करे, जब तक कि यह विश्वास करने का कारण न हो कि असंगतियां या असत्यता इतनी स्पष्ट हों कि साक्षियों से पूरी तरह से भरोसा उठ जाए । यह स्मरण रखना आवश्यक है कि न्यायाधीश किसी दांडिक विचारण की अध्यक्षता केवल यह देखने के लिए करता है कि कोई निर्दोष व्यक्ति दंडित न हो । न्यायाधीश यह देखने के लिए भी अध्यक्षता करता है कि दोषी व्यक्ति बच न जाए । पहली बात दूसरी जितनी ही महत्वपूर्ण है । दोनों लोक कर्तव्य हैं जिनका न्यायाधीश को निर्वहन करना चाहिए ।"

---

[1] (1988) (सप्ली.) एस. एस. सी. 686.

21. हमारा यह निष्कर्ष है कि इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अभियुक्त की दोषमुक्ति में हस्तक्षेप करना आवश्यक है । तद्नुसार, 2011 की दांडिक अपील सं. 827 और 2011 की दांडिक अपील सं. 829 मंजूर की जाती हैं । उच्च न्यायालय द्वारा 2008 की दांडिक अपील सं. 8239 में तारीख 22 अप्रैल, 2010 को पारित किया गया निर्णय अपास्त किया जाता है । प्रत्यर्थी अभियुक्त-इमरान अफरीन को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया जाता है और तद्द्वारा आजीवन कारावास भोगने का दंडादेश दिया जाता है । तद्नुसार, इमरान अफरीन को शेष दंडादेश भुगतने के लिए आज से दो सप्ताह की अवधि के भीतर सक्षम प्राधिकारी के समक्ष अभ्यर्पण करने का निदेश दिया जाता है ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

जस.

[2017] 4 उम. नि. प. 47

पवन उर्फ **राजिन्दर सिंह**

बनाम

हरियाणा राज्य

8 मार्च, 2017

न्यायमूर्ति एन. वी. रमण और न्यायमूर्ति प्रफुल्ल सी. पंत

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 और 34 [सपठित आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25] – यदि साक्ष्यों के मूल्यांकन करने पर यह पाया जाता है कि अभियोजन अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 और आयुध अधिनियम की धारा 25 के अधीन दंडनीय अपराध के आरोप को साबित करने में असफल रहा तो अपराध युक्तियुक्त संदेह से परे साबित न होने के कारण अभियुक्त दोषमुक्त किए जाने के हकदार हैं ।

संक्षेप में अभियोजन वृत्तांत इस प्रकार है कि मृतक दीपक शिकायतकर्ता अमित कुमार का बड़ा भाई था । अमित कुमार फूल बेचने का कारबार करता था और उसका बड़ा भाई वितरण का कार्य करता था । उनके पड़ोसी गोला ने अभियुक्त पवन से ब्याज पर 10,000/- रुपए का

ऋण लिया था और गोला ने 250/- रुपए छोड़कर शेष रकम वापस कर दी । तारीख 9 नवंबर, 2000 को लगभग 8.30 बजे अपराह्न में अभियुक्त पवन **उर्फ** राजिन्दर सिंह और उसका चचेरा भाई अभियुक्त अजीत **उर्फ** दारा सिंह ने गोला से शेष 250/- रुपए की मांग की जिस पर मृतक ने उनसे वह रकम छोड़ देने को कहा जिसके परिणामस्वरूप मृतक और दोनों अभियुक्तों के बीच कहा-सुनी हो गई । लगभग आधे घन्टे के पश्चात् दोनों अभियुक्त स्कूटर से वापस आए और मृतक दीपक भी उनके साथ किंतु अपने अलग स्कूटर से गया । दीपक देर रात्रि तक वापस नहीं आया । इस पर अमित कुमार और उसके पिता रामनाथ ने दीपक को तलाश किया । अगले दिन प्रातःकाल उन्हें यह पता चला कि वायुसेना ग्राउंड के निकट किसी व्यक्ति का शव पड़ा हुआ है । पिता और पुत्र दोनों ही वहां गए और उन्होंने वहां दीपक का शव देखा । यह संदेह करते हुए कि अपीलार्थी पवन **उर्फ** राजिन्दर और अजीत **उर्फ** दारा सिंह ने हत्या की है, तारीख 10 नवंबर, 2000 को प्रातःकाल ही अपीलार्थियों को नामित करते हुए रिपोर्ट दर्ज कराई गई । उक्त रिपोर्ट के आधार पर, तारीख 10 नवंबर, 2000 को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 803 पुलिस थाना एन आई टी, फरीदाबाद में रजिस्ट्रीकृत की गई । अन्वेषण अधिकारी ने अन्वेषण के दौरान दोनों अभियुक्तों को गिरफ्तार किया और उनके प्रकटीकरण कथन के आधार पर स्कूटर अभियुक्तों के घर से बरामद किया । अभियोजन पक्षकथन यह है कि एक देसी पिस्तौल भी अभियुक्त अजीत **उर्फ** दारा सिंह द्वारा दिए गए प्रकटीकरण कथन के आधार पर बरामद की गई । यह कथन किया गया है कि इस पिस्तौल की टूटी हुई बट घटनास्थल से बरामद की गई है । अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् अन्वेषण अधिकारी द्वारा आरोप पत्र दोनों अभियुक्तों के विरुद्ध फाइल किया गया । मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द किए जाने के पश्चात्, विचारण न्यायालय द्वारा आरोप विरचित किया गया और साक्ष्य अभिलिखित किया गया । अभियोजन पक्ष ने डा. डी. एस. राठी, हेड कांस्टेबल मालाखाना मोहर्रिर हरिचन्द, कांस्टेबल मनोज कुमार, पप्पू, सुरेन्द्र सिंह, अमित कुमार, रामनाथ, कांस्टेबल आस मोहम्मद, सहायक उप-निरीक्षक जय सिंह, सहायक उप-निरीक्षक अमी लाल, नईमुद्दीन और पुलिस निरीक्षक राजपाल सिंह की परीक्षा कराई । विचारण न्यायालय ने, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य अभियुक्तों के समक्ष रखने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि दोनों अभियुक्त दंड संहिता की धारा 302/34 के

अधीन दंडनीय अपराध के दोषी हैं । अभियुक्त अजीत **उर्फ** दारा सिंह को आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए भी दोषी पाया गया । अभियुक्तों को ऊपर उल्लिखित रूप में दंडादेश अधिनिर्णीत किए गए । दोषसिद्ध व्यक्तियों द्वारा अपील किए जाने पर, उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से सहमत होकर अपील खारिज कर दी । इस प्रकार, विशेष इजाजत द्वारा यह अपील हमारे समक्ष प्रस्तुत की गई है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय यह उल्लेख करना चाहेगा कि मूलतः यह पारिस्थितिक साक्ष्य का मामला है सिवाय दो संयोगी साक्षियों अर्थात् पप्पू और सुरेन्द्र सिंह के साक्ष्य के । पप्पू एक रिक्शाचालक है जो सन्तनगर झुग्गी, फरीदाबाद का निवासी है । सुरेन्द्र सिंह टी. एस. आर. चालक है जो रेलवे कालोनी, ओल्ड फरीदाबाद का निवासी है । यहां यह उल्लेखनीय है कि यह बताया गया है कि यह घटना वायुसेना ग्राउंड के निकट घटित हुई है । यह भी उल्लेखनीय है कि शिकायतकर्ता अमित कुमार, उसका भाई अर्थात् दीपक और दो अभियुक्त-अपीलार्थी एन आई टी, फरीदाबाद के निवासी हैं । अभिलेख से यह बात स्पष्ट नहीं है कि संयोगी साक्षी अर्थात् पप्पू और सुरेन्द्र सिंह किस प्रकार अभियुक्तों को जानते थे क्योंकि इन साक्षियों ने यह कथन किया है कि उन्होंने मृतक और अभियुक्तों के बीच अर्ध-रात्रि में कहासुनी की आवाज सुनी थी और इसके पश्चात् उन्होंने गोली चलाए जाने की आवाज भी सुनी थी । न्यायालय की राय में, इन साक्षियों के परिसाक्ष्य को विश्वसनीय और विश्वासप्रद नहीं कहा जा सकता है, विशेषकर ऐसी स्थिति में उनके कथनों की संपुष्टि अभिलेख पर उपलब्ध अन्य साक्ष्य से न होती हो । इसके अतिरिक्त, यद्यपि अपराध के हेतु का साबित किया जाना हर स्थिति में आवश्यक नहीं है किंतु वर्तमान जैसे मामले में जिसमें अपीलार्थियों को इत्तिलाकर्ता अमित कुमार द्वारा संदेह के आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में यह प्रतीत होता है कि इस घटना का हेतु एक सुसंगत तथ्य है । अमित कुमार ने केवल यह उल्लेख किया है कि मृतक ने इन दोनों अभियुक्तों से गोला द्वारा प्राप्त किए गए 10,000/- रुपए के ऋण में से 250/- रुपए की रकम को छोड़ देने के लिए कहा था किंतु यह तथ्य अपीलार्थियों द्वारा अपराध कारित किए जाने का तर्क-सम्मत हेतु प्रतीत नहीं होता है । अभियोजन पक्ष ने गोला की परीक्षा नहीं कराई है जबकि उसने 10,000/- रुपए का ऋण लिया था और उसमें से 250/- रुपए कम करके शेष रकम का संदाय किया था । ऊपर चर्चा किए गए कारणों

के आधार पर न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में त्रुटि की है कि दोनों अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप साबित हो गया है । उपरोक्त रूप में साक्ष्य का मूल्यांकन किए जाने के आधार पर, न्यायालय की यह राय है कि अभियोजन पक्ष दोनों अभियुक्तों के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दंडनीय अपराध का आरोप साबित करने में असफल रहा है । न्यायालय यह भी अभिनिर्धारित करता है कि आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25 के अधीन अभियुक्त अजीत **उर्फ** दारा सिंह के विरुद्ध अपराध का आरोप युक्तियुक्त संदेह के परे साबित नहीं हुआ है । तद्नुसार, अपील मंजूर किए जाने योग्य है । (पैरा 8, 10, 11, 12 और 13)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2014 की दांडिक अपील सं. 2194.

2002 की दांडिक अपील सं. डी-391 में तारीख 2 अप्रैल, 2014 को पंजाब-हरियाणा उच्च न्यायालय, द्वारा पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से — सर्वश्री बसन्त आर. (ज्येष्ठ अधिवक्ता), सनी चौधरी और अरुण बूमुल्ली

प्रत्यर्थी की ओर से — सर्वश्री अनिल ग्रोवर (अपर महाधिवक्ता), (सुश्री) नूपुर सिंघल और संजय कुमार विसेन

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति प्रफुल्ल सी. पंत ने दिया ।

न्या. पंत – यह अपील 2002 की दांडिक अपील सं. डी-391 में तारीख 2 अप्रैल, 2014 को पंजाब-हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है जिसके द्वारा उक्त न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलार्थियों अर्थात् पवन **उर्फ** राजिन्दर सिंह और अजीत **उर्फ** दारा सिंह के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 302/34 के अधीन अपर सेशन न्यायाधीश (फास्ट ट्रैक न्यायालय सं. 1, फरीदाबाद) द्वारा की गई दोषसिद्धि और दंडादेश की पुष्टि करने वाली अपील खारिज कर दी । उच्च न्यायालय ने आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25 के अधीन अभियुक्त-अपीलार्थी अजीत **उर्फ** दारा सिंह के विरुद्ध की गई दोषसिद्धि और दंडादेश की भी पुष्टि की है ।

2. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों की सुनवाई की गई है और मामले के अभिलेख का परिशीलन किया गया है ।

3. संक्षेप में अभियोजन वृत्तांत इस प्रकार है कि मृतक दीपक शिकायतकर्ता अमित कुमार (अभि. सा. 6) का बड़ा भाई था । अमित कुमार फूल बेचने का कारबार करता था और उसका बड़ा भाई वितरण का कार्य करता था । उनके पड़ोसी गोला (जिसकी परीक्षा नहीं कराई गई है) ने अभियुक्त पवन से ब्याज पर 10,000/- रुपए का ऋण लिया था और गोला ने 250/- रुपए छोड़कर शेष रकम वापस कर दी । तारीख 9 नवंबर, 2000 को लगभग 8.30 बजे अपराह्न में अभियुक्त पवन **उर्फ** राजिन्दर सिंह और उसका चचेरा भाई अभियुक्त अजीत **उर्फ** दारा सिंह ने गोला से शेष 250/- रुपए की मांग की जिस पर मृतक ने उनसे वह रकम छोड़ देने को कहा जिसके परिणामस्वरूप मृतक और दोनों अभियुक्तों के बीच कहा-सुनी हो गई । लगभग आधे घन्टे के पश्चात् दोनों अभियुक्त स्कूटर से वापस आए और मृतक दीपक भी उनके साथ किंतु अपने अलग स्कूटर (रजिस्ट्रेशन सं. एच आर 51ई 4749) से गया । दीपक देर रात्रि तक वापस नहीं आया । इस पर अमित कुमार (अभि. सा. 6) और उसके पिता रामनाथ ने दीपक को तलाश किया । अगले दिन प्रातःकाल उन्हें यह पता चला कि वायुसेना ग्राउंड के निकट किसी व्यक्ति का शव पड़ा हुआ है । पिता और पुत्र दोनों ही वहां गए और उन्होंने वहां दीपक का शव देखा । यह संदेह करते हुए कि अपीलार्थी पवन **उर्फ** राजिन्दर और अजीत **उर्फ** दारा सिंह ने हत्या की है, तारीख 10 नवंबर, 2000 को प्रातःकाल ही अपीलार्थियों को नामित करते हुए रिपोर्ट (प्रदर्श पीई-1) दर्ज कराई गई । उक्त रिपोर्ट के आधार पर, तारीख 10 नवंबर, 2000 को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 803 पुलिस थाना एन आई टी, फरीदाबाद में रजिस्ट्रीकृत की गई ।

4. सहायक पुलिस उप-निरीक्षक जय सिंह (अभि. सा. 9) द्वारा इस मामले का अन्वेषण आरंभ किया गया और इसके पश्चात् निरीक्षक राजपाल सिंह (अभि. सा. 12) ने अन्वेषण का कार्यभार संभाला । सहायक उप-निरीक्षक जय सिंह (अभि. सा. 9) ने अपने कब्जे में शव लेने के पश्चात् मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श पीएल-1) प्राप्त की और स्थल नक्शा (प्रदर्श पीएम) तैयार किया । पुलिस निरीक्षक राजपाल सिंह (अभि. सा. 12) अर्थात् अन्वेषण अधिकारी ने खाली कारतूस न्यायालयिक प्रयोगशाला को परीक्षण के लिए भेजे । अन्वेषण अधिकारी ने घटनास्थल से रक्तरंजित मिट्टी भी प्राप्त की । इस साक्षी ने साक्षियों से पूछताछ की । इसी दौरान,

डा. डी. एस. राठी (अभि. सा. 1) ने डा. सुनीता गुप्ता और डा. पी. एस. यादव के साथ तारीख 10 नवंबर, 2000 को 5 बजे अपराह्न में शव-परीक्षण किया । शवपरीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श पीएल) में मृत्यु-पूर्व की निम्न क्षतियां पाई गईं :–

> "दसवीं पसली के बाईं ओर वक्ष के मध्य से 2 सें. मी. की दूरी पर एक वृत्ताकार घाव है जिसकी माप 2.5 सें. मी. × 2.5 सें. मी. है । निचले पश्चीय भाग में घाव के चारों ओर कालापन और झुलसन मौजूद है और घाव के किनारे उलटे हुए हैं । परीक्षा करने पर धातु के कुछ छर्रे त्वचा और मृदु उतकों में गड़े हुए हैं । विच्छेदन करने पर फुप्फुस गुहा में रक्त मौजूद है । बाएं वक्ष में तथा फुप्फुस गुहा में धातु के कुछ छर्रे पाए गए जिन्हें हटा दिया गया है । आगे और विच्छेदन करने पर आमाशय में छिद्र पाया गया है । आगे और परीक्षण करने पर गोलाकार बाह्य वस्तु पाई गई है जिसकी माप 2 सें. मी. है और उसे हटा दिया गया है । छर्रे और बाह्य वस्तु को एक बोतल में रखकर मुहरबंद कर दिया गया है ।"

5. अन्वेषण अधिकारी ने अन्वेषण के दौरान दोनों अभियुक्तों को गिरफ्तार किया और उनके प्रकटीकरण कथन के आधार पर स्कूटर (रजिस्ट्रेशन सं. एच आर 51सी 1609) अभियुक्तों के घर से बरामद किया । अभियोजन पक्षकथन यह है कि एक देसी पिस्तौल भी अभियुक्त अजीत **उर्फ** दारा सिंह द्वारा दिए गए प्रकटीकरण कथन (प्रदर्श पीके) के आधार पर बरामद की गई । यह कथन किया गया है कि इस पिस्तौल की टूटी हुई बट घटनास्थल से बरामद की गई है । अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् अन्वेषण अधिकारी द्वारा आरोप पत्र दोनों अभियुक्तों के विरुद्ध फाइल किया गया ।

6. मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द किए जाने के पश्चात्, विचारण न्यायालय द्वारा आरोप विरचित किया गया और साक्ष्य अभिलिखित किया गया । अभियोजन पक्ष ने डा. डी. एस. राठी (अभि. सा. 1), हेड कांस्टेबल मालाखाना मोहर्रिर हरिचन्द (अभि. सा. 2), कांस्टेबल मनोज कुमार (अभि. सा. 3), पप्पू (अभि. सा. 4), सुरेन्द्र सिंह (अभि. सा. 5), अमित कुमार (अभि. सा. 6), रामनाथ (अभि. सा. 7), कांस्टेबल आस मोहम्मद (अभि. सा. 8), सहायक उप-निरीक्षक जय सिंह (अभि. सा. 9), सहायक उप-निरीक्षक अमी लाल (अभि. सा. 10), नईमुद्दीन (अभि. सा. 11) और पुलिस निरीक्षक राजपाल सिंह (अभि. सा. 12) की परीक्षा कराई । विचारण न्यायालय ने, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन दस्तावेजी और मौखिक

साक्ष्य अभियुक्तों के समक्ष रखने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि दोनों अभियुक्त दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दंडनीय अपराध के दोषी हैं । अभियुक्त अजीत **उर्फ** दारा सिंह को आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए भी दोषी पाया गया । अभियुक्तों को ऊपर उल्लिखित रूप में दंडादेश अधिनिर्णीत किए गए ।

7. दोषसिद्ध व्यक्तियों द्वारा अपील किए जाने पर, उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से सहमत होकर अपील खारिज कर दी । इस प्रकार, विशेष इजाजत द्वारा यह अपील हमारे समक्ष प्रस्तुत की गई है ।

8. आरंभ में, हम यह उल्लेख करना चाहेंगे कि मूलतः यह पारिस्थितिक साक्ष्य का मामला है सिवाय दो संयोगी साक्षियों अर्थात् पप्पू (अभि. सा. 4) और सुरेन्द्र सिंह (अभि. सा. 5) के साक्ष्य के । पप्पू (अभि. सा. 4) एक रिक्शाचालक है जो सन्तनगर झुग्गी, फरीदाबाद का निवासी है । सुरेन्द्र सिंह (अभि. सा. 5) टी. एस. आर. चालक है जो रेलवे कालोनी, ओल्ड फरीदाबाद का निवासी है । यहां यह उल्लेखनीय है कि यह बताया गया है कि यह घटना वायुसेना ग्राउंड के निकट घटित हुई है । यह भी उल्लेखनीय है कि शिकायतकर्ता अमित कुमार (अभि. सा. 6), उसका भाई अर्थात् दीपक (मृतक) और दो अभियुक्त-अपीलार्थी एन आई टी, फरीदाबाद के निवासी हैं । अभिलेख से यह बात स्पष्ट नहीं है कि संयोगी साक्षी अर्थात् पप्पू (अभि. सा. 4) और सुरेन्द्र सिंह (अभि. सा. 5) किस प्रकार अभियुक्तों को जानते थे क्योंकि इन साक्षियों ने यह कथन किया है कि उन्होंने मृतक और अभियुक्तों के बीच अर्ध-रात्रि में कहासुनी की आवाज सुनी थी और इसके पश्चात् उन्होंने गोली चलाए जाने की आवाज भी सुनी थी । हमारी राय में, इन साक्षियों के परिसाक्ष्य को विश्वसनीय और विश्वासप्रद नहीं कहा जा सकता है, विशेषकर ऐसी स्थिति में उनके कथनों की संपुष्टि अभिलेख पर उपलब्ध अन्य साक्ष्य से न होती हो ।

9. अब हम न्यायालयिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट पर विचार करेंगे । न्यायालयिक प्रयोगशाला हरियाणा, मधुबन, करनाल द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट (प्रदर्श पीएफ) में निकाले गए निष्कर्ष निम्न प्रकार हैं :–

परिणाम

1. देशी तमन्चा आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 54 में यथा परिभाषित एक अग्न्यायुध है जिसे डब्ल्यू/1 के रूप में चिह्नांकित

किया गया है (जिसमें 12 वोर के कारतूस लगते हैं) । यह तमन्चा चालू हालत में नहीं है ।

2. देशी तमन्चे से, जिसे डब्ल्यू/1 के रूप में चिह्नांकित किया गया है, गोली चलाई गई है । तथापि, वैज्ञानिक रूप से इससे अंतिम बार गाली चलाए जाने का समय नहीं बताया जा सकता है ।

3. कारतूस की टोपी को सी/1 के रूप में चिह्नांकित किया गया है जिस पर तमन्चे की कील का निशान दिखाई दे रहा है, जो गोली चलाए जाने पर तब बनता है जब कारतूस मिस हो जाता है । इसके अतिरिक्त तमन्चे के दागने की यांत्रिकी चालू हालत में नहीं थी । अतः, इस संबंध में कोई राय नहीं दी जा सकती है कि यह कारतूस इसी तमन्चे से दागा गया है ।

4. पार्सल सं. III में रखा हुआ लकड़ी का टुकड़ा और धातु की दो पत्तरें पार्सल सं. VIII में रखे तमन्चे का भाग हो सकती हैं ।

..... ।

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

न्यायालयिक प्रयोगशाला द्वारा निकाले गए निष्कर्ष जिनका उल्लेख उपरोक्त तीन बिंदुओं अर्थात् (1), (2) और (3) में किया गया है, को दृष्टिगत करते हुए हमारा यह मत है कि पप्पू (अभि. सा. 4) और सुरेन्द्र सिंह (अभि. सा. 5) द्वारा बताई गई अभियोजन की कहानी अत्यंत संदिग्ध है ।

10. इसके अतिरिक्त, यद्यपि अपराध के हेतु का साबित किया जाना हर स्थिति में आवश्यक नहीं है किंतु वर्तमान जैसे मामले में जिसमें अपीलार्थियों को इत्तिलाकर्ता अमित कुमार (अभि. सा. 6) द्वारा संदेह के आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में (जिसमें पप्पू अर्थात् अभि. सा. 4 और सुरेन्द्र सिंह अर्थात् अभि. सा. 5 जो घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं, को नामित नहीं किया गया है) यह प्रतीत होता है कि इस घटना का हेतु एक सुसंगत तथ्य है । अमित कुमार (अभि. सा. 6) ने केवल यह उल्लेख किया है कि मृतक ने इन दोनों अभियुक्तों से गोला द्वारा प्राप्त किए गए 10,000/- रुपए के ऋण में से 250/- रुपए की रकम को छोड़ देने के लिए कहा था किंतु यह तथ्य अपीलार्थियों द्वारा अपराध कारित किए जाने

का तर्क-सम्मत हेतु प्रतीत नहीं होता है । अभियोजन पक्ष ने गोला की परीक्षा नहीं कराई है जबकि उसने 10,000/- रुपए का ऋण लिया था और उसमें से 250/- रुपए कम करके शेष रकम का संदाय किया था ।

11. अन्यथा भी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में कहीं भी यह उल्लेख नहीं किया गया है कि वास्तव में मृतक दीपक अपने घर से दो अपीलार्थियों के साथ अलग स्कूटर पर क्यों गया था ।

12. ऊपर चर्चा किए गए कारणों के आधार पर हमारा यह निष्कर्ष है कि विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में त्रुटि की है कि दोनों अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप साबित हो गया है ।

13. उपरोक्त रूप में साक्ष्य का मूल्यांकन किए जाने के आधार पर, हमारी यह राय है कि अभियोजन पक्ष दोनों अभियुक्तों के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दंडनीय अपराध का आरोप साबित करने में असफल रहा है । हम यह भी अभिनिर्धारित करते हैं कि आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25 के अधीन अभियुक्त अजीत **उर्फ** दारा सिंह के विरुद्ध अपराध का आरोप युक्तियुक्त संदेह के परे साबित नहीं हुआ है । तद्नुसार, अपील मंजूर किए जाने योग्य है ।

14. अपील मंजूर की जाती है । दोनों अभियुक्त अर्थात् पवन **उर्फ** राजिन्दर सिंह और अजीत **उर्फ** दारा सिंह को आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है । अपीलार्थी, यदि अन्य किसी मामले में वांछित नहीं है, तत्काल छोड़े जाएं ।

अपील मंजूर की गई ।

अस.

बिहार राज्य

बनाम

अनिल कुमार

23 मार्च, 2017

मुख्य न्यायमूर्ति जगदीश सिंह खेहर, न्यायमूर्ति (डा.) डी. वाई. चंद्रचूड़ और न्यायमूर्ति संजय किशन कौल

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 465 [सपठित अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 9] – अन्वेषण की शक्ति का प्रदान किया जाना – राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति से संबंधित अपराधों के मामले में पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से नीचे के पुलिस अधिकारियों/कर्मचारियों द्वारा अन्वेषण किया जाना प्राधिकृत कर सकते हैं, बशर्ते अभियुक्त के प्रति कोई पक्षपात या न्याय की अवहेलना न हो ।

विचारार्थ प्रश्न पटना उच्च न्यायालय द्वारा पारित तारीख 18/20 जनवरी, 2011 के आक्षेपित आदेश से उद्भूत होता है । यह अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के उपबंधों के अधीन अन्वेषक प्रक्रिया की विधिमान्यता के संबंध में है । उच्चतम न्यायालय ने अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा फाइल अपील खारिज की । उच्चतम न्यायालय द्वारा बिहार राज्य द्वारा फाइल अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस बात पर बल देना अनिवार्य है कि एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 23 के अधीन केंद्रीय सरकार के पास निहित नियम बनाने की शक्ति का राष्ट्रीय लक्षण होने के बावजूद, एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 9 के अधीन अनुध्यात प्रत्यायोजित शक्ति राज्य विशिष्ट है । राज्य द्वारा प्रयोग की गई शक्ति संबद्ध राज्य में व्याप्त परिस्थितियों को ध्यान में रखती है । अतः, तत्काल प्रत्यायोजित शक्ति के प्रयोग की वैधता और विधिमान्यता का अवधारण व्यक्ति राज्य में व्याप्त विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के प्रतिनिर्देश से अवधारित किया जाना चाहिए । एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 9 के अधीन निहित शक्ति का उपयोग करते हुए, प्रत्येक व्यक्तिगत राज्य सरकार में गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन

की शक्तियां एस. सी. एस. टी. अधिनियम के उपबंधों के अधीन अनुध्यात अधिकारियों से भिन्न अधिकारियों को विस्तारित करने का प्राधिकार निहित है । गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्ति की व्याप्ति की युक्तियुक्त और विधिसम्मत समझ अनिवार्यतः एस. सी. एस. टी. अधिनियम और एस. सी. एस. टी. नियम के उपबंधों को संयुक्त रूप से पढ़ने की अपेक्षा करती है । निःसंदेह, एस. सी. एस. टी. नियम के प्रख्यापन के पश्चात् केंद्रीय सरकार अन्वेषण की शक्ति पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से अन्यून अधिकारी के हाथों किए जाने का उपबंध करती है । किंतु, प्रस्तुत मुद्दे का सही दृष्टिकोण इस प्रश्न से उभरता है कि क्या नियम के अधीन बनाए गए उपबंध, मूल विधान के माध्यम से विस्तारित अधिकार का खंडन कर सकता है ? सुस्पष्टतः, उत्तर नकारात्मक होना चाहिए । यह साधारण तर्क विमर्शित मुद्दे का उत्तर स्पष्ट करता है । हमारे विचारित मत के अनुसार, धारा 9(1)(ख) राज्य सरकार को गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्ति आगे प्रत्यायोजित करने की शक्ति प्रदान करती है । राज्य सरकार में निहित इस शक्ति को सर्वोपरि खंड के माध्यम से एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 23 के अधीन विरचित किसी नियम द्वारा प्रभावहीन नहीं किया जा सकता । सर्वोपरि खंड राज्य सरकार को एस. सी. एस. टी. अधिनियम के उपबंधों के बावजूद और गिरफ्तारी, निरसन और अभियोजन की शक्ति "....राज्य सरकार के किसी अधिकारी ....." को प्रत्यायोजित करने की एस. सी. एस. टी. नियम के उपबंधों के बावजूद भी उसे प्रदत्त करने की शक्ति का प्रयोग अनुज्ञात करेगी । हमारा यह मत है कि सर्वोपरि खंड राज्य सरकार को एस. सी. एस. टी. अधिनियम और एस. सी. एस. टी. नियम के अधीन अनुध्यात स्थिति से भिन्न अनदेखी करने और भिन्न-भिन्न उपबंध करने की शक्ति तक विस्तारित है । यह मुद्दा कि क्या राज्य सरकार यह अपेक्षा करते हुए कि पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से अन्यून अधिकारी द्वारा अन्वेषण न कराया जाए, उक्त नियम को शिथिल करने के लिए सक्षम था और तद्द्वारा अन्वेषण की शक्ति का विस्तार पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से नीचे के अधिकारियों को करने का उत्तर सकारात्मक होना चाहिए । यथा उपरोक्त उपसंहार करते हुए, हम न केवल एस. सी. एस. टी. नियम के नियम 7 बल्कि एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 9(1)(ख) के अधीन राज्य सरकार में निहित शक्तियों का उपयोग करते हुए उसके द्वारा जारी अधिसूचना तारीख 3 जून, 2002 को भी कायम रखने के प्रति संतुष्ट हैं । तद्नुसार, हम अपीलार्थी अभियुक्त के ओर से अधिसूचना तारीख 3 जून,

2002 के प्रति उठाई गई चुनौती में भी कोई सार नहीं पाते । हम इस आशय के उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष में भी सार पाते हैं कि अधिसूचना तारीख 3 जून, 2002 के क्रियान्वयन की प्रवर्तनशील तारीख उपरोक्त अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख (अर्थात् 9 अगस्त, 2008) होगी । पहला, क्योंकि उच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित उपरोक्त निष्कर्ष को कोई चुनौती नहीं दी गई है । दूसरा, शक्ति का तत्काल प्रयोग भूतलक्षी प्रभाव से नहीं हो सकता क्योंकि एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 23 भूतलक्षी प्रभाव से नियम बनाने के प्राधिकार से केंद्रीय सरकार में प्राधिकार का प्रयोग निहित नहीं करती । अपीलार्थी-बिहार राज्य की ओर से दी गई दलीलों पर गंभीर विचार करते हुए हमारा यह मत है कि इस न्यायालय द्वारा यथा घोषित विधिक स्थिति दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 465 की धारणा के पूर्णतः अनुरूप और संगत हैं । ऐसी स्थिति में हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि उस विस्तार तक कि 31 मार्च, 1995 के पश्चात् और अधिसूचना तारीख 3 जून, 2002 जारी किए जाने के पूर्व पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से नीचे के पुलिस अधिकारी द्वारा किया गया अन्वेषण दोषपूर्ण हो गया, उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए दूसरे अवधारण को अनिवार्यतः अपास्त किया जाना चाहिए । हमारे मतानुसार उपरोक्त निष्कर्ष को तभी वापस किया जाए यदि संबद्ध न्यायालय अपना समाधान व्यक्त करता है कि ऐसे अधीनस्थ पुलिस अधिकारी/कर्मचारी द्वारा जिसको मामले में अन्वेषण करने का कोई प्राधिकार नहीं था, किए गए अन्वेषण से अभियुक्त के प्रति पक्षपात कारित किया गया जिससे न्याय की घोर अवहेलना हुई । क्योंकि ऐसा कोई निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया गया है और इस न्यायालय के समक्ष भी यह साबित नहीं किया गया है कि अभियुक्त के प्रति ऐसा पक्षपात किया गया इसलिए उच्च न्यायालय के उपरोक्त निष्कर्ष को कायम रखना हमारे लिए संभव नहीं है । तद्नुसार, यह अपास्त किया जाता है । पूर्ववर्ती पैराग्राफ में अभिलिखित द्वितीय प्रतिपादना के प्रतिनिर्देश से अपना निष्कर्ष अभिलिखित करते हुए, राज्य सरकार की ओर से व्यक्त किए गए मुद्दों को ध्यान में रखना हमारे लिए आवश्यक है । अतः, जहां तक वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का संबंध है, अभियुक्त की ओर से ऐसा प्रदर्शन महत्वहीन होगा क्योंकि एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 9 के अधीन राज्य सरकार द्वारा जारी अधिसूचना को हमारे द्वारा विधिमान्य ठहराया गया और इस प्रकार पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से नीचे के पुलिस अधिकारी द्वारा भी "अब" विधिसम्मत अन्वेषण किया जा सकता है । और इस प्रकार,

ऐसे मामलों में ही जहां नए सिरे से अन्वेषण करने का आदेश दिया जाता है, ऐसी स्थिति में ऐसे अधिकारी/कर्मचारी जिन्होंने मूल अन्वेषण किए हैं, को अन्वेषण प्राधिकार का धारक समझा जाएगा । अब, एस. सी. एस. टी. अधिनियम के अधीन प्राधिकृत अन्वेषणकारी प्राधिकारी उनको भी शामिल करेंगे जिन्हें एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 9 के अधीन राज्य सरकार में निहित शक्ति के प्रयोग में उसके द्वारा अधिसूचित किया गया है । इस प्रकार, प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में पुनः अन्वेषण करने की ईप्सा करते हुए वर्तमान मुद्दा उठाने से किसी पक्षकार का कोई प्रयोजन पूरा नहीं होगा । (पैरा 18, 19, 20, 23 और 24)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2014]	(2014) 16 एस. सी. सी. 285 : **भारत संघ** बनाम **टी. नाथामुनी** ;	22
[1992]	(1992) सप्ली. (1) एस. सी. सी. 335 : **हरियाणा राज्य** बनाम **भजन लाल** ;	22
[1973]	(1973) 1 एस. सी. सी. 726 : **ए. सी. शर्मा** बनाम **दिल्ली प्रशासन** ;	22
[1971]	(1971) 2 एस. सी. सी. 48 : **मुनीलाल** बनाम **दिल्ली प्रशासन** ;	22
[1970]	(1970) 3 एस. सी. सी. 513 : **एम. सी. सुलकुंते** बनाम **मैसूर राज्य** ;	22
[1955]	[1955] 1 एस. सी. आर. 1150 : **एच. एन. हिसबद और इंदर सिंह** बनाम **दिल्ली राज्य** ।	22

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2017 की सिविल अपील सं. 4397-4400.

सिविल रिट अधिकारिता मामला सं. 15490/2008, 7489/2006, 16407/2007 और 18736/2008 में पटना उच्च न्यायालय द्वारा पारित तारीख 18 जनवरी, 2011 और 20 जनवरी, 2011 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

पक्षकारों की ओर से सर्वश्री नगेन्द्र राय, ज्येष्ठ

अधिवक्ता, चंदन कुमार (गोपाल सिंह की ओर से), संतोष मिश्र, आर. आर. दूबे, जसबीर बिधुरी (सुश्री मधु सिकरी की ओर से), आलोक कुमार

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति जगदीश सिंह खेहर ने दिया ।

मु. न्या. खेहर – विशेष इजाजत याचिकाओं में इजाजत दी गई ।

2. विचारार्थ प्रश्न पटना उच्च न्यायालय द्वारा पारित तारीख 18/20 जनवरी, 2011 के आक्षेपित आदेश से उद्भूत होता है । यह अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "एस. सी. एस. टी." अधिनियम कहा गया है) के उपबंधों के अधीन अन्वेषक प्रक्रिया की विधिमान्यता के संबंध में है ।

3. मुद्दे की गंभीरता को प्रकट करने के लिए 2017 की विशेष इजाजत याचिका (सी.) सं. 7317 (इस न्यायालय के समक्ष अभियुक्त द्वारा फाइल) से उद्भूत सिविल अपील में विद्वान् काउंसेल ने एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 3(2) की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया जिसे यहां नीचे उद्धृत किया गया :–

3. अत्याचार के अपराधों के लिए दंड

(1) .....

(2) कोई भी व्यक्ति, जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है –

(i) मिथ्या साक्ष्य देगा या गढ़ेगा जिससे उसका आशय अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को किसी ऐसे अपराध के लिए जो तत्समय प्रवृत्त विधि द्वारा मृत्यु दंड से दंडनीय है, दोषसिद्ध कराना है या यह जानता है कि इससे उसका दोषसिद्ध होना संभाव्य है, वह आजीवन कारावास से और जुर्माने से दंडनीय होगा ; और यदि अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी निर्दोष सदस्य को ऐसे मिथ्या या गढ़े हुए साक्ष्य के फलस्वरूप दोषसिद्ध किया जाता है और फांसी दी जाती है तो वह व्यक्ति, जो ऐसा मिथ्या साक्ष्य देता है या गढ़ता है, मृत्यु दंड से दंडनीय होगा ;

(ii) मिथ्या साक्ष्य देगा या गढ़ेगा जिससे उसका आशय अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को ऐसे अपराध के लिए जो मृत्यु दंड से दंडनीय नहीं है किंतु सात वर्ष या उससे अधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय है, दोषसिद्ध कराना है या वह यह जानता है कि उससे उसका दोषसिद्ध होना संभाव्य है, वह कारावास से, जिसकी अवधि छह मास से कम की नहीं होगी किंतु जो सात वर्ष या उससे अधिक की हो सकेगी और जुर्माने से, दंडनीय होगा ;

(iii) अग्नि या किसी विस्फोटक पदार्थ द्वारा रिष्टि करेगा जिससे उसका आशय अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य की किसी सम्पत्ति को नुकसान पहुंचाना है या वह यह जानता है कि उससे ऐसा होना संभाव्य है वह कारावास से, जिसकी अवधि छह मास से कम की नहीं होगी किंतु जो सात वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से, दंडनीय होगा ;

(iv) अग्नि या किसी विस्फोटक पदार्थ द्वारा रिष्टि करेगा जिससे उसका आशय किसी ऐसे भवन को जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य द्वारा साधारणतः पूजा के स्थान के रूप में या मानव आवास ले, स्थान के रूप में या संपत्ति की अभिरक्षा के लिए किसी स्थान के रूप में उपयोग किया जाता है, नष्ट करता है या वह यह जानता है कि उससे ऐसा होना संभाव्य है, वह आजीवन कारावास से, और जुर्माने से, दंडनीय होगा ;

(v) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अधीन दस वर्ष या उससे अधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय कोई अपराध किसी व्यक्ति या संपत्ति के विरुद्ध इस आधार पर करेगा कि ऐसा व्यक्ति अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य है या ऐसी संपत्ति ऐसे सदस्य की है, वह आजीवन कारावास से, और जुर्माने से दंडनीय होगा ;

(vक) यह जानते हुए किसी व्यक्ति या संपत्ति के विरुद्ध अनुसूची में विनिर्दिष्ट कोई अपराध करता है कि ऐसा व्यक्ति अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य है या ऐसी संपत्ति ऐसे सदस्य की है, ऐसे अपराधों के लिए भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अधीन यथाविनिर्दिष्ट ऐसे दंड से

दंडनीय होगा और जुर्माने का भी दायी होगा ।

(vi) यह जानते हुए या यह विश्वास करने का कारण रखते हुए कि इस अध्याय के अधीन कोई अपराध किया गया है, वह अपराध किए जाने के किसी साक्ष्य को, अपराधी को विधिक दंड से बचाने के आशय से गायब करेगा या उस आशय से अपराध के बारे में कोई ऐसी जानकारी देगा जो वह जानता है या विश्वास करता है कि वह मिथ्या है, वह उस अपराध के लिए उपबंधित दंड से दंडनीय होगा ; या

(vii) लोक सेवक होते हुए इस धारा के अधीन कोई अपराध करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष से कम की नहीं होगी किंतु जो उस अपराध के लिए उपबंधित दंड तक हो सकेगी, दंडनीय होगा ।

(रेखांकन पर बल दिया गया है ।)

तुलना की दृष्टि से हमारा ध्यान भारतीय दंड संहिता की धारा 201 की ओर भी आकृष्ट किया गया जिसे नीचे दोहराया जाता है :–

"201. **अपराध के साक्ष्य का विलोपन, या अपराधी को प्रतिच्छादित करने के लिए मिथ्या इत्तिला देना** – जो कोई यह जानते हुए या यह विश्वास करने का कारण रखते हुए कि कोई अपराध किया गया है, उस अपराध के किए जाने के किसी साक्ष्य का विलोप, इस आशय से कारित करेगा कि अपराधी को वैध दंड से प्रतिच्छादित करे या उस आशय से उस अपराध से संबंधित कोई ऐसी इत्तिला देगा, जिसके मिथ्या होने का उसे ज्ञान या विश्वास है ;

यदि अपराध मृत्यु से दंडनीय हो – यदि वह अपराध जिसके किए जाने का उसे ज्ञान या विश्वास है, मृत्यु से दंडनीय हो, तो वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ;

यदि आजीवन कारावास से दंडनीय हो – और यदि वह अपराध आजीवन कारावास से, या ऐसे कारावास से, जो दस वर्ष तक का हो सकेगा, दंडनीय हो, तो वह दोनों में से किसी भांति के, कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ;

यदि दस वर्ष से कम के कारावास से दंडनीय हो – और यदि वह अपराध ऐसे कारावास से उतनी अवधि के लिए दंडनीय हो, जो दस वर्ष तक की न हो, तो वह उस अपराध के लिए उपबंधित भांति के कारावास से उतनी अवधि के लिए, जो उस अपराध के लिए उपबंधित करावास की दीर्घतम अवधि की एक चौथाई तक हो सकेगी या जुर्माने से, या दोनों से दंडित किया जाएगा ।"

(रेखांकन पर बल दिया गया है ।)

यह निवेदन किया गया कि "एस. सी. एस. टी. अधिनियम" के अधीन परिणाम भारतीय दंड संहिता के अधीन अनुध्यात परिणामों से काफी गंभीर और उग्र हैं अतः अपीलार्थी-अभियुक्त के विद्वान् काउंसेल की यह जोरदार दलील थी कि जहां तक अन्वेषण प्रक्रिया का संबंध है, "एस. सी. एस. टी. अधिनियम" के उपबंधों का निर्वचन कड़ाई से किया जाना चाहिए (न कि उदारतापूर्वक) । यह निवेदन किया गया कि उपरोक्त प्रयोजन के लिए, अन्वेषण प्रक्रिया को केंद्रीय सरकार द्वारा विरचित नियमों के अनुकूल यथा संभव सर्वोच्च प्राधिकारी के द्वारा किए जाने की आवश्यकता है । यह इंगित किया गया कि जिसके प्रतिकूल कोई निर्धारण विधायी आशय और एस. सी. एस. टी. अधिनियम के उपबंधों के किसी अतिक्रमण के प्रतिकूल होगा और उसके गंभीर और उग्र परिणाम होंगे ।

4. संविवाद पर विचार करने के पूर्व आक्षेपित आदेश में उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को यहां उद्धृत करना उचित होगा । उच्च न्यायालय के अंतिम अवधारण को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया गया :–

"पूर्वोक्त कारणों से, हम घोषित करते हैं कि तारीख 3 जून, 2002 की आक्षेपित अधिसूचना 1989 के अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए नियमों के अधिकारातीत नहीं है । आगे यह घोषित किया जाता है कि 3 जून, 2002 की आक्षेपित अधिसूचना बिहार राज्य के राजपत्र में इसके प्रकाशन की तारीख अर्थात् 9 अगस्त, 2008 से प्रभावी होगी । 9 अगस्त को या इसके पश्चात् पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से नीचे की पंक्ति के आक्षेपित सूचना के अधीन सशक्त पुलिस अधिकारी द्वारा दर्ज किया गया अन्वेषण और परिणामी अभियोजन विधिमान्य होगा यद्यपि, प्रश्नगत अपराध 9 अगस्त, 2008 से पूर्व किया गया है । आगे यह उपदर्शित किया जाता है कि नियमों की तारीख अर्थात् 31 मार्च के पश्चात् और 9 अगस्त, 2008 के पूर्व पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से नीचे के पुलिस अधिकारी द्वारा

किया गया अन्वेषण और परिणामी अभियोजन 9 अगस्त, 2008 द्वारा प्रकाशित 3 जून, 2002 की आर्थिक अधिसूचना द्वारा विधिमान्य नहीं ठहराया जाएगा ।"

5. आक्षेपित आदेश (उक्त उद्धृत) के निदेशों के आशय को प्रदर्शित करने के लिए यह उल्लेख करना सुसंगत होगा कि केंद्रीय सरकार में एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 23 के अधीन नियम बनाने का प्राधिकार निहित है । उक्त उपबंध को यहां दोहराया जा रहा है :–

"**23. नियम बनाने की शक्ति** – (1) केंद्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम बना सकेगी ।

(2) इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब यह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किंतु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।"

(रेखांकन पर बल दिया गया है ।)

6. केंद्रीय सरकार ने वस्तुतः धारा 23 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) नियम, 1995 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "एस. सी. एस. टी. नियम" कहा गया है) विरचित किया । पूर्वोक्त नियम का नियम 7 स्पष्टतः एस. सी. एस. टी. अधिनियम के अधीन अपराधों के लिए पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से अन्यून अधिकारी के पास अन्वेषण प्राधिकार निहित किया । एस. सी. एस. टी. नियम के नियम 7 को नीचे दोहराया गया है :–

"7. **अन्वेषण अधिकारी** – (1) अधिनियम के अधीन किए गए किसी अपराध का अन्वेषण ऐसे पुलिस अधिकारी द्वारा किया जाएगा

जो पुलिस उप-अधीक्षक के रैंक से कम का न हो । अन्वेषक अधिकारी की नियुक्ति राज्य सरकार/पुलिस अधीक्षक द्वारा उसके पूर्व अनुभव, मामले की विवक्षाओं को समझने और मामले का अन्वेषण सही दिशा में कम से कम समय के भीतर करने की योग्यता और न्याय की भावना को ध्यान में रखकर की जाएगी ।

(हमारे द्वारा रेखांकन करके बल दिया गया है ।)

(2) उप-नियम (1) के अधीन इस प्रकार नियुक्त अन्वेषक अधिकारी उच्च प्राथमिकता पर अन्वेषण पूरा करेगा और पुलिस अधीक्षक को रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा जो उसके पश्चात् तत्काल उसे राज्य सरकार के पुलिस महानिदेशक या पुलिस आयुक्त को तत्काल भेज देगा और संबद्ध पुलिस थाने का प्रभारी साठ दिनों की अवधि के भीतर (अवधि अन्वेषण और आरोप पत्र के फाइल किए जाने को मिलाकर है) विशेष न्यायालय या अनन्य विशेष न्यायालय को आरोप पत्र फाइल करेगा ।

(2क) उप-नियम (2) के अनुसार अन्वेषण या आरोप पत्र फाइल करने में विलंब यदि कोई है, को अन्वेषक अधिकारी द्वारा लिखित में स्पष्ट किया जाएगा ।

(3) राज्य सरकार या संघ राज्यक्षेत्र के सचिव, गृह विभाग और सचिव, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति विकास विभाग (विभाग का नाम हर राज्य में अलग-अलग हो सकता है), अभियोजन निदेशक, अभियोजन के भारसाधक अधिकारी और संबद्ध राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के पुलिस महानिदेशक या पुलिस आयुक्त प्रत्येक तिमाही के अंत में अन्वेषक अधिकारी द्वारा किए गए सभी अन्वेषणों का पुनर्विलोकन करेंगे ।"

नियम 7 के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि एस. सी. एस. टी. अधिनियम के अधीन अपराधों के लिए अन्वेषक प्राधिकार पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से अन्यून पुलिस अधिकारी में व्यक्ततः निहित है ।

7. मामलों के वर्तमान शर्तें संविवाद बिहार राज्य द्वारा जारी अधिसूचना से उद्भूत हुआ । वर्तमान अधिसूचना एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 9 के अधीन राज्य सरकार में निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उसके द्वारा जारी की गई थीं । पूर्वोक्त धारा 9 को नीचे दोहराया जा रहा है :–

"9. **शक्तियों का प्रदान किया जाना** – (1) संहिता में या इस

अधिनियम के किसी अन्य उपबंध में किसी बात के होते हुए भी, यदि राज्य सरकार ऐसा करना आवश्यक या समीचीन समझती है, तो वह –

(क) इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध के निवारण के लिए और उससे निपटने के लिए, या

(ख) इस अधिनियम के अधीन किसी मामले या मामलों के वर्ग या समूह के लिए, किसी जिले या उसके किसी भाग में, राज्य सरकार के किसी अधिकारी को राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, ऐसे जिले या उसके भाग में संहिता के अधीन पुलिस अधिकारी द्वारा प्रयोक्तव्य शक्तियां या, यथास्थिति, ऐसे मामले या मामलों के वर्ग या समूह के लिए, और विशिष्टतया किसी विशेष न्यायालय के समक्ष व्यक्तियों की गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्तियां प्रदान कर सकेगी ।

(2) पुलिस के सभी अधिकारी और सरकार के अन्य सभी अधिकारी इस अधिनियम के या उनके अधीन बनाए गए किसी नियम, स्कीम या आदेश के उपबंधों के निष्पादन में उपधारा (1) में निर्दिष्ट अधिकारी को सहायता करेंगे ।

(3) संहिता के उपबंध, जहां तक हो सके, उपधारा (1) के अधीन किसी अधिकारी द्वारा शक्तियों के प्रयोग के संबंध में लागू होंगे ।"

(हमारे द्वारा रेखांकन करके बल दिया गया है ।)

8. पूर्वोक्त अधिसूचना 3 जून, 2002 को जारी की गई थी । अधिसूचना उपाबंध पी-1 के रूप में राज्य सरकार द्वारा की गई अपीलों के अभिलेख पर उपलब्ध है । अधिसूचना (तारीख 3 जून, 2002) 9 अगस्त, 2008 को प्रकाशित की गई थी । यह इस प्रकार है :–

"सं.-3/वाई.ए.-80-26/2002-एच(पी.)-6104 – अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (1989 का 33) की धारा 9(1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए और इस अधिनियम के अधीन फाइल मामलों की संख्या को ध्यान में रखते हुए, राज्य सरकार इस अधिनियम के अधीन अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) नियम, 1995 के प्रवृत्त होने की तारीख 31 मार्च, 1995 से बिहार राज्य के भीतर इस अधिनियम के अधीन फाइल किए गए मामलों का अन्वेषण करने के

लिए पुलिस निरीक्षक, पुलिस उप-निरीक्षक और पुलिस सहायक उप-निरीक्षक की पंक्ति के सभी अधिकारियों को प्राधिकृत करती है ।"

(हमारे द्वारा रेखांकन करके बल दिया गया है ।)

उपरोक्त उद्धृत अधिसूचना के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि एस. सी. एस. टी. नियम (केंद्रीय सरकार द्वारा विरचित) का नियम 7 जो एस. सी. एस. टी. अधिनियम के अधीन उद्भूत मामलों के सभी अन्वेषण को पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से अन्यून अधिकारी द्वारा किए जाने की अपेक्षा करती है, को वस्तुतः हटा दिया गया । प्रतिकूलतः अधिसूचना प्रकट असंगतता के विषय के रूप में (एस. सी. एस. टी. अधिनियम के अधीन) अन्वेषण प्रक्रिया पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से नीचे से तीन पंक्ति नीचे अधिकारियों, अर्थात् पुलिस निरीक्षक, उप-निरीक्षक और सहायक उप-निरीक्षक की पंक्ति धारित करने वाले अधिकारियों/कर्मचारियों के माध्यम से किए जाने की अनुज्ञा दी गई थी ।

9. अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा फाइल की गई अपील में, आक्षेपित आदेश में उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष के पहले भाग को चुनौती दी गई है । विद्वान् काउंसेल की यह दलील थी कि अधिसूचना तारीख 3 जून, 2002 एस. सी. एस. टी. अधिनियम के उपबंधों के अधिकारातीत है और उसके अधीन विरचित नियम 7 के भी प्रतिकूल है और इस प्रकार एस. सी. एस. टी. नियम के भी अतिक्रमण में है ।

10. यह अभिलिखित करना सुसंगत होगा कि उच्च न्यायालय द्वारा अधिसूचना तारीख 3 जून, 2002 को भूतलक्षी प्रभाव – 31 मार्च, 1995 से, अभिखंडित करने को व्यक्ततः किसी भी पक्षकार द्वारा चुनौती नहीं दी गई ।

11. आक्षेपित आदेश में उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष के दूसरे भाग की चुनौती बिहार राज्य द्वारा संबद्ध अपीलों में दी गई है । यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि उच्च न्यायालय ने अपने निष्कर्षों में यह भी अभिलिखित किया कि एस. सी. एस. टी. नियम के प्रकाशन (31 मार्च, 1995) के पश्चात् और अधिसूचना तारीख 3 जून, 2002 के प्रकाशन की (अर्थात् तारीख 9 अगस्त, 2008 के पूर्व) तारीख के पूर्व ऐसे अन्वेषण जो पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से नीचे के पुलिस अधिकारी द्वारा किए जा रहे थे, को विधिमान्य नहीं समझा जाएगा और ऐसी अन्वेषण प्रक्रिया (पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से नीचे के पुलिस अधिकारी द्वारा संचालित) के अग्रसरण में संचालित पारिणामिक अभियोजन अकृत हो जाएंगे ।

12. हमारे समक्ष विचारार्थ पहला प्रश्न एस. सी. एस. टी. नियम के नियम 7 की विधिमान्यता के प्रतिनिर्देश के बारे में है जो केंद्रीय सरकार द्वारा एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 23 के अधीन उसमें निहित शक्ति के प्रयोग में जारी किया गया था । नियम बनाने वाले प्राधिकारी और एस. सी. एस. टी. अधिनियम के उपबंधों के अधीन अनुध्यात अपराधों से जुड़े गंभीरता और उसमें व्यक्त विधायी आशय के माध्यम से निहित नीति और एस. सी. एस. टी. अधिनियम के उपबंधों के किसी अतिक्रमण से उद्भूत गंभीर और कठोर परिणामों पर भी गहनता से विचार करते हुए हमारा यह समाधान हो गया है कि अपने नियम बनाने के प्राधिकार का प्रयोग करते हुए, केंद्रीय सरकार यह अपेक्षा करने में पूर्णतः सक्षम और न्यायसंगत थी कि अन्वेषण प्रक्रिया का संचालन पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से अन्यून अधिकारी द्वारा किया जाएगा । केंद्रीय सरकार के पास नियम विरचित करने की अधिकारिता थी और केंद्रीय सरकार ने उसमें निहित प्राधिकार की अवसंरचना के भीतर अपनी अधिकारिता का प्रयोग किया था । अतः हम एस. सी. एस. टी. नियम 7 की विधिमान्यता की पुष्टि करते हैं ।

13. विचारणार्थ अगला मुद्दा यह है कि क्या एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 9 के अधीन राज्य सरकार में निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए तारीख 3 जून, 2002 को बिहार राज्य द्वारा जारी अधिसूचना को राज्य सरकार को प्रत्यायोजित शक्ति के भंग में या आधिक्य में प्रयोग किया गया माना जा सकता है । अपीलार्थी-अभियुक्त के विद्वान् काउंसेल की यह दलील थी कि धारा 9 दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन पहले से ही उपबंधित के अलावा उन व्यक्तियों की गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन (उन व्यक्तियों की, जिनके बारे में एस. सी. एस. टी. अधिनियम के उपबंधों का अतिक्रमण किया जाना अभिकथित है) की शक्तियों के विस्तार की संभावना अनुध्यात करती है । इस प्रकार, आगे यह निवेदन किया गया (एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 9 के अधीन) राज्य सरकार में निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए, वह एस. सी. एस. टी. नियम के अधीन अभिधारित और उपबंधित पुलिस अधिकारी की पंक्ति के नीचे के पुलिस अधिकारियों को गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की ऐसी शक्तियों को निहित करने के लिए स्वतंत्र नहीं था । यह निवेदन किया गया कि उपरोक्त नियम के नियम 7 के अधीन गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्तियां पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से अन्यून पुलिस

अधिकारी द्वारा प्रयोग किए जाने का अधिदेश है । अतः यह निवेदन किया गया कि व्यक्ततः अभिधारित पंक्ति से नीचे के पुलिस अधिकारी/कर्मचारी को अन्वेषण की शक्ति का विस्तार अनुज्ञेय नहीं है । अपीलार्थी-अभियुक्त के विद्वान् काउंसेल ने उपरोक्त प्राख्यान के समर्थन के लिए एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (2) की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया और उसके आधार पर यह दलील दी कि धारा 9 की उपधारा (2) में विधायिका द्वारा अपनाई गई भाषा के साफ और साधारण निर्वचन से यह प्रकट होता है कि (गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन के संबंध में) प्राधिकार का अतिरिक्त प्रदान पुलिस अधिकारी से भिन्न अधिकारी को ही किया जा सकता है ।

14. अपीलार्थी-अभियुक्त के विद्वान् काउंसेल की दलील का मूल्यांकन करने के लिए, हमें ऐसी स्कीम को ध्यान में रखना अनिवार्य है जिसका उपबंध विधायिका द्वारा एस. सी. एस. टी. अधिनियम के अधीन अपराधों के बारे में किया गया । हमारे विचारित मत के अनुसार एस. सी. एस. टी. अधिनियम के उपबंधों के लागू किए जाने और प्रारंभ के समय, एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 9 में गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्ति का विस्तार सभी अधिकारियों को किया जो दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन पूर्वोक्त दायित्वों को निभाने के हकदार होंगे और इस प्रकार, यह मूल्यांकन करने की आवश्यकता है कि जब एस. सी. एस. टी. अधिनियम के उपबंधों को आरंभ में कार्यान्वित किया गया तो निरीक्षक, उप-निरीक्षक और सहायक उप-निरीक्षक के पंक्ति को अवधारित करने वाले व्यक्तियों सहित केवल पुलिस कार्मिक उपरोक्त शक्तियों को प्रयोग कर सकते थे । इन सभी पुलिस कार्मिकों को अन्वेषण प्रक्रिया के भाग के रूप में एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 9 द्वारा प्राधिकृत किया गया था । इसके अलावा, पूर्वोक्त धारा 9 के अधीन राज्य सरकार को एस. सी. एस. टी. अधिनियम के अधीन अपराधों की बाबत (गिरफ्तारी और अभियोजन की शक्ति के अलावा) अन्वेषण की शक्ति प्रत्यायोजित करने के लिए "एस. सी. एस. टी. अधिनियम के अधीन किसी अपराध के निवारण और सामना करने के लिए.... " "....राज्य सरकार के किसी अधिकारी को....." प्राधिकृत किया जैसा राज्य सरकार आवश्यक समझे । अतः, एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 9 के अधीन राज्य सरकार में निहित शक्ति स्पष्टतः व्यापक थी और दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन ऐसा करने के लिए उन प्राधिकृत के अलावा अधिकारियों और कर्मचारियों को गिरफ्तार करने, अन्वेषण करने और अभियोजन चलाने की परिधि को बढ़ाने के आशय से

किया गया था । धारा 9(1)(ख) के अधीन राज्य को प्रदत्त शक्ति ने राज्य सरकार को "..... राज्य सरकार के किसी अन्य अधिकारी को....." शक्ति प्रदत्त करने की अनुज्ञा दी थी । प्रत्यायोजन की शक्ति न केवल पुलिस कार्मिक तक सीमित थी बल्कि राज्य सरकार के किसी अधिकारी तक विस्तारित थी जो पुलिस विभाग के कार्मिक हो सकते हैं या नहीं हो सकते हैं । अतः, एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (2) पर आधारित अपीलार्थी-अभियुक्त के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलील को स्वीकार करना हमारे लिए संभव नहीं है ।

15. धारा 9 में व्यक्त विधायी आशय पर ध्यान देना भी आवश्यक है क्योंकि यह उपरोक्त वैवेकिक प्राधिकार का विस्तार राज्य सरकार तक किया था । राज्य सरकार को सर्वोपरि खंड के माध्यम से उपबंधित जोन को बढ़ाकर गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्ति ".... राज्य सरकार के किसी अधिकारी..." में निहित करने का विवेकाधिकार दिया गया था । अतः राज्य सरकार में निहित गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की ऐसी शक्तियों के प्रत्यायोजन का अधिकार दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के बावजूद था । केवल यही नहीं उपरोक्त शक्ति का प्रयोग स्वयं मूल एस. सी. एस. टी. अधिनियम के उपबंधों के बावजूद किया जा सकता था । अतः, यह प्रकट है कि धारा 9 का लक्ष्य और प्रबंध उपस्थित उपबंधों के अलावा गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन के प्रभावी तंत्र के लिए था । यदि राज्य सरकार इसे एस. सी. एस. टी. अधिनियम के उपबंधों के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए आवश्यक और समीचीन समझती है तो उसे अतिरिक्त कार्मिकों को गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्ति निहित करने का अधिकार और दायित्व था । दूसरे शब्दों में, यदि राज्य सरकार का यह समाधान था कि ऐसी शक्तियों वाले अधिकारी एस. सी. एस. टी. अधिनियम के उपबंधों के अनुरूप एस. सी. एस. टी अधिनियम के प्रयोजनों के क्रियान्वयन के लिए अपर्याप्त थे तो राज्य सरकार उन लोगों को शक्ति का विस्तार कर सकती थी जिनका व्यक्ततः इस प्रकार उपबंध नहीं था । तद्नुसार, एस. सी. एस. टी. अधिनियम के उपबंधों को लागू करने की अपर्याप्तता की दशा में राज्य सरकार एस. सी. एस. टी. अधिनियम के प्रयोजनों को पूरा करने के लिए "....राज्य सरकार के किसी अधिकारी ...." को गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्ति आगे प्रचालित करने के लिए स्वतंत्र थी ।

16. अब हम एस. सी. एस. टी. नियम के नियम 7 की विरचना के

समय केंद्रीय सरकार के आशय का अर्थ निकालने और समझने का प्रयास करेंगे । यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि एस. सी. एस. टी. नियम के अधीन एस. सी. एस. टी. अधिनियम के उपबंधों के अधीन अनुध्यात अपराधों के कठोर परिणामों के कारण, केंद्रीय सरकार ने एस. सी. एस. टी. अधिनियम के अधीन अपराधों के लिए पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से अन्यून अधिकारियों को अन्वेषण शक्ति निहित करना समीचीन समझा । केंद्रीय सरकार के हाथों इस अवधारण का प्रभाव अखिल भारतीय प्रथा न कि किसी विनिर्दिष्ट राज्य पर । अतः, जब एस. सी. एस. टी. नियम के उपबंध तैयार किए गए तो यह अनुमान आवश्यक है कि यह केंद्रीय सरकार द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर उनके क्रियान्वयन के लिए विरचित किए गए थे । केंद्रीय सरकार ने एस. सी. एस. टी. अधिनियम के उपबंधों को किसी अतिक्रमण के कठोर प्रभाव को ध्यान में रखते हुए पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से अन्यून किस अधिकारी द्वारा अन्वेषण कराए जाने की अपेक्षा को समीचीन समझा । केंद्रीय सरकार द्वारा प्राधिकार के इस प्रयोग को सक्षमता या विधि सम्मतता (जैसाकि पहले ही ऊपर निष्कर्ष निकाला गया है) के आधारों पर चुनौती नहीं दी जा सकती । अतः हम पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से अन्यून किसी अधिकारी द्वारा एस. सी. एस. टी. अधिनियम के अधीन किए गए अपराधों के प्रतिनिर्देश से अन्वेषण शक्ति निहित करने की केंद्रीय सरकार के अवधारण में कोई खामी नहीं पाते । अतः हम एस. सी. एस. टी. नियम के नियम 7 की विधिमान्यता को अपनी पुष्टि दोहराते हैं ।

17. तथापि, प्रश्न यह है कि क्या राज्य सरकार अपने विवेकाधिकार के प्रयोग में एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 9 के अधीन उसे निहित शक्ति के अग्रसरण में एस. सी. एस. टी. नियम के नियम 7 द्वारा किए गए उपबंध को शिथिल कर सकती है ।

18. इस बात पर बल देना अनिवार्य है कि एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 23 के अधीन केंद्रीय सरकार के पास निहित नियम बनाने की शक्ति का राष्ट्रीय लक्षण होने के बावजूद, एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 9 के अधीन अनुध्यात प्रत्यायोजित शक्ति राज्य विशिष्ट है । राज्य द्वारा प्रयोग की गई शक्ति संबद्ध राज्य में व्याप्त परिस्थितियों को ध्यान में रखती है । अतः, (राज्य सरकार में निहित) तत्काल प्रत्यायोजित शक्ति के प्रयोग की वैधता और विधिमान्यता का अवधारण व्यक्ति राज्य में व्याप्त विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के प्रतिनिर्देश से अवधारित किया

जाना चाहिए । एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 9 के अधीन निहित शक्ति का उपयोग करते हुए, प्रत्येक व्यक्तिगत राज्य सरकार में गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्तियां एस. सी. एस. टी. अधिनियम के उपबंधों के अधीन अनुध्यात अधिकारियों से भिन्न अधिकारियों को विस्तारित करने का प्राधिकार निहित है । गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्ति की व्याप्ति की युक्तियुक्त और विधिसम्मत समझ अनिवार्यतः एस. सी. एस. टी. अधिनियम और एस. सी. एस. टी. नियम के उपबंधों को संयुक्त रूप से पढ़ने की अपेक्षा करती है । निःसंदेह, एस. सी. एस. टी. नियम के प्रख्यापन के पश्चात् केंद्रीय सरकार अन्वेषण की शक्ति पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से अन्यून अधिकारी के हाथों किए जाने का उपबंध करती है । किंतु, प्रस्तुत मुद्दे का सही दृष्टिकोण इस प्रश्न से उभरता है कि क्या नियम के अधीन बनाए गए उपबंध, मूल विधान के माध्यम से विस्तारित अधिकार का खंडन कर सकता है ? सुस्पष्टतः, उत्तर नकारात्मक होना चाहिए । यह साधारण तर्क विमर्शित मुद्दे का उत्तर स्पष्ट करता है । हमारे विचारित मत के अनुसार, धारा 9(1)(ख) राज्य सरकार को गिरफ्तारी, अन्वेषण और अभियोजन की शक्ति आगे प्रत्यायोजित करने की शक्ति प्रदान करती है । राज्य सरकार में निहित इस शक्ति को सर्वोपरि खंड के माध्यम से एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 23 के अधीन विरचित किसी नियम द्वारा प्रभावहीन नहीं किया जा सकता । सर्वोपरि खंड राज्य सरकार को एस. सी. एस. टी. अधिनियम के उपबंधों के बावजूद और गिरफ्तारी, निरसन और अभियोजन की शक्ति "....राज्य सरकार के किसी अधिकारी ..... " को प्रत्यायोजित करने की एस. सी. एस. टी. नियम के उपबंधों के बावजूद भी उसे प्रदत्त करने की शक्ति का प्रयोग अनुज्ञात करेगी । हमारा यह मत है कि सर्वोपरि खंड राज्य सरकार को एस. सी. एस. टी. अधिनियम और एस. सी. एस. टी. नियम के अधीन अनुध्यात स्थिति से भिन्न अनदेखी करने और भिन्न-भिन्न उपबंध करने की शक्ति तक विस्तारित है । यह मुद्दा कि क्या राज्य सरकार यह अपेक्षा करते हुए कि पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से अन्यून अधिकारी द्वारा अन्वेषण न कराया जाए, उक्त नियम को शिथिल करने के लिए सक्षम था और तद्-द्वारा अन्वेषण की शक्ति का विस्तार पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से नीचे के अधिकारियों को करने का उत्तर सकारात्मक होना चाहिए ।

19. यथा उपरोक्त उपसंहार करते हुए, हम न केवल एस. सी. एस. टी. नियम के नियम 7 बल्कि एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 9(1)(ख)

के अधीन राज्य सरकार में निहित शक्तियों का उपयोग करते हुए उसके द्वारा जारी अधिसूचना तारीख 3 जून, 2002 को भी कायम रखने के प्रति संतुष्ट हैं । तद्नुसार, हम अपीलार्थी-अभियुक्त की ओर से अधिसूचना तारीख 3 जून, 2002 के प्रति उठाई गई चुनौती में भी कोई सार नहीं पाते ।

20. हम इस आशय के उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष में भी सार पाते हैं कि अधिसूचना तारीख 3 जून, 2002 के क्रियान्वयन की प्रवर्तनशील तारीख उपरोक्त अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख (अर्थात् 9 अगस्त, 2008) होगी । पहला, क्योंकि उच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित उपरोक्त निष्कर्ष को कोई चुनौती नहीं दी गई है । दूसरा, शक्ति का तत्काल प्रयोग भूतलक्षी प्रभाव से नहीं हो सकता क्योंकि एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 23 भूतलक्षी प्रभाव से नियम बनाने के प्राधिकार से केंद्रीय सरकार में प्राधिकार का प्रयोग निहित नहीं करती ।

21. पूर्वगामी पैराग्राफों में अभिलिखित निष्कर्षों में हमने अपीलार्थी-अभियुक्त की ओर से विद्वान् काउंसेल की ओर से दिए गए निवेदनों पर विचार किया ।

22. अब हम बिहार राज्य का प्रतिनिधित्व कर रहे विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा दी गई चुनौती पर विचार करेंगे । यहां पहले उच्च न्यायालय द्वारा निकाला गया दूसरा यह निष्कर्ष कि 31 मार्च, 1995 के पश्चात् और 9 अगस्त, 2008 के पूर्व पुलिस उप-अधीक्षक के पंक्ति से नीचे के पुलिस अधिकारी द्वारा किया गया अन्वेषण दोषपूर्ण हो जाएगा । पूर्वोक्त निष्कर्ष की चुनौती देने के लिए विद्वान् काउंसेल ने हमारा ध्यान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 465 की ओर आकृष्ट किया । इसे यहां नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "**465. निष्कर्ष या दंडादेश कब गलती, लोप या अनियमितता के कारण उलटने योग्य होगा** – (1) इसमें इसके पूर्व अन्तर्विष्ट उपबंधों के अधीन यह है कि सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय द्वारा पारित कोई निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश विचारण के पूर्व या दौरान परिवाद, समन, वारण्ट, उद्घोषणा, आदेश, निर्णय या अन्य कार्यवाही में हुई या इस संहिता के अधीन किसी जांच या अन्य कार्यवाही में हुई किसी गलती, लोप या अनियमितता या अभियोजन के लिए मंजूरी में हुई किसी गलती या अनियमितता के कारण अपील, पुष्टीकरण का पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा तब तक न तो उलटा जाएगा

और न परिवर्तित किया जाएगा जब तक न्यायालय की यह राय नहीं है कि उसके कारण वस्तुतः न्याय नहीं हो पाया है ।

(2) यह अवधारित करने में कि क्या इस संहिता के अधीन किसी कार्यवाही में किसी गलती, लोप या अनियमितता या अभियोजन के लिए मंजूरी में हुई किसी गलती या अनियमितता के कारण न्याय नहीं हो पाया है न्यायालय इस बात को ध्यान में रखेगा कि क्या वह आपत्ति कार्यवाही के किसी पूर्वतर प्रक्रम में उठाई जा सकती थी और उठाई जानी चाहिए थी ।"

(हमारे द्वारा रेखांकन करके बल दिया गया है ।)

उपरोक्त उपबंध के आधार पर यह निवेदन किया गया कि अन्वेषण के प्रतिनिर्देश से लोप या अनियमितता का प्रभाव स्वयं अभियोजन को प्रभावहीन कर देना नहीं होगा जब तक आगे यह साबित न किया जाए कि इससे न्याय की असफलता हुई है । अपनी पूर्वोक्त दलील का समर्थन करते हुए विद्वान् काउंसेल ने **एच. एन. हिसबद और इंदर सिंह** बनाम **दिल्ली राज्य**[1] वाले मामले का अवलंब लिया । उपरोक्त निर्णय में विचारणार्थ जो प्रश्न उद्भूत हुए थे, उन्हें निम्नलिखित रीति से व्यक्त किया गया :–

"हमारे समक्ष दी गई दलीलों के आधार पर दो मुद्दे विचारणार्थ उद्भूत हुए हैं, क्या भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 का उपबंध, जिसमें यह अधिनियमित किया गया है कि इसमें विनिर्दिष्ट अपराधों का अन्वेषण पुलिस उप-अधीक्षक से भिन्न अवर पंक्ति के किसी पुलिस अधिकारी द्वारा मजिस्ट्रेट के विनिर्दिष्ट आदेश के बिना नहीं किया जाएगा, निदेशात्मक है या आज्ञापक ।

(2) क्या इस उपबंध के उल्लंघन में किए गए अन्वेषण के आधार पर किया गया विचारण अवैध है ?"

उपरोक्त निर्णय (तीन न्यायाधीशों की खंड न्यायपीठ द्वारा दिया गया) में निकाले गए निष्कर्षों के प्रति न्यायालय का ध्यान आकर्षित करने के लिए, उपरोक्त निर्णय में अभिलिखित निम्नलिखित स्थिति की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया :–

तब इस प्रश्न पर विचार करने की अपेक्षा है कि क्या और किस

---

[1] [1955] 1 एस. सी. आर. 1150.

सीमा तक ऐसा विचारण जो ऐसे अन्वेषण का पालन करता है, दोषपूर्ण है । अब विचारण संज्ञान का पालन करता है और संज्ञान के पूर्व अन्वेषण किया जाता है । निःसंदेह, संज्ञेय मामलों की बाबत संहिता की यह आधारभूत स्कीम है । किंतु वस्तुतः इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि कोई अविधिमान्य अन्वेषण उस पर आधारित संज्ञान या विचारण को अकृत करता है । यहां हम संज्ञान या विचारण के बारे में न्यायालय की सक्षमता या प्रक्रिया को विनियमित करने वाले आज्ञापक उपबंध के भंग के प्रभाव पर विचार नहीं कर रहे हैं । यह केवल ऐसे भंग के संबंध में है कि यह प्रश्न कि क्या यह कार्यवाहियों को दोषपूर्ण करते हुए अवैधता गठित करता है या मात्र अनियमितता पैदा होती है । तथापि, यह चाहे जितना गंभीर हो अन्वेषण की त्रुटि या अवैधता का संज्ञान या विचारण से संबंधित सक्षमता या प्रक्रिया पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ता । निःसंदेह ऐसी पुलिस रिपोर्ट जो अन्वेषण के आधार पर बनती है, ऐसी सामग्री जिस पर संज्ञान लिया जाता है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 में उपबंधित है । किंतु यह नहीं कहा जा सकता है कि एक विधिमान्य और वैध पुलिस रिपोर्ट संज्ञान लेने का न्यायालय के अधिकारिता का आधार है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 "कार्यवाहियां आरंभ करने के लिए अपेक्षित शर्तें" शीर्षक के अधीन धाराओं के समूह की एक धारा है । इस धारा की भाषा उसी शीर्ष अर्थात् धारा 193 और 195 से 199 के अधीन समूह की अन्य धाराओं के प्रतिकूल चिह्नित है । ये बाद वाली धाराएं न्यायालय की सक्षमता को विनियमित करती हैं और उसके अनुपालन के सिवाय कतिपय मामलों में उसकी अधिकारिता का वर्जन करती हैं । जहां निःसंदेह, एक अर्थ में, धारा 190क के खंड (क), (ख) और (ग) संज्ञान लेने की अपेक्षित शर्तें हैं वहीं यह कहना संभव नहीं है कि अविधिमान्य पुलिस रिपोर्ट पर संज्ञान प्रतिषिद्ध है अतः अकृत है । ऐसी अविधिमान्य रिपोर्ट धारा 190(1) के खंड (क) या (ख) के अधीन आ सकता है (चाहे यह एक या अन्य हों हमें विचार करते समय रुकने की आवश्यकता नहीं है) और किसी भी दशा में इस प्रकार लिया गया संज्ञान विचारण के पूर्ववर्ती कार्यवाही में त्रुटि की प्रकृति का ही है । ऐसी स्थिति में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 537 जो निम्नलिखित शब्दों में है, लागू होती है ।

"इसमें उपरोक्त अंतर्विष्ट उपबंधों के अधीन रहते हुए, सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय द्वारा पारित किसी निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश को इस संहिता के अधीन परिवाद, समन, वारंट, आरोप, उद्घोषणा, आदेश, निर्णय या विचारण के दौरान या पूर्व या किसी जांच या अन्य कार्यवाहियों में किसी त्रुटि, लोप या अनियमितता के कारण अपील या पुनरीक्षण में उलटा या परिवर्तित नहीं किया जाएगा जब तक ऐसी त्रुटि, लोप या अनियमितता से वस्तुतः न्याय की असफलता न हो ।"

* * * * *

"तथापि, इसका यह परिणाम नहीं निकलता कि विचारण के दौरान न्यायालय द्वारा अन्वेषण की अविधिमान्यता की पूर्णतः उपेक्षा की जाए । जब पर्याप्ततः पूर्व प्रक्रम पर ऐसे आज्ञापक उपबंध के भंग की जानकारी न्यायालय के समक्ष लाई जाती है तो न्यायालय संज्ञान का इनकार न करते हुए अवैधता को दूर करने और खामियों को सुधारने के आवश्यक कदम उठाने होंगे क्योंकि व्यक्तिगत मामले की परिस्थितियों की ऐसी अपेक्षा हो सकती है । ऐसा अनुक्रम संहिता की स्कीम के पूर्णतः बाहर नहीं है जो धारा 202 से प्रतीत होता है जिसके अधीन किसी परिवाद पर संज्ञान लेने वाला मजिस्ट्रेट पुलिस द्वारा अन्वेषण का आदेश दे सकता है । न ही यह कहा जा सकता है कि ऐसे अनुक्रम का अंगीकरण विशेष न्यायाधीश की अंतर्निहित शक्तियों की व्याप्ति के बाहर है जो विचारण के दौरान प्रक्रिया के प्रयोजनों के लिए वस्तुतः वारंट मामले का विचारण करने वाले मजिस्ट्रेट की हैसियत में है ।"

(रेखांकन पर बल दिया गया है ।)

विद्वान् काउंसेल की यह भी सारगर्भित दलील थी कि उपरोक्त निर्णय में व्यक्त किए गए विचारों के अनुसार विधिक स्थिति अब भी अपरिवर्तित है । इस बाबत हमारा ध्यान **भारत संघ** बनाम **टी. नाथामुनी**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के हाल ही के निर्णय की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया गया जिसमें विचारणार्थ तथ्यात्मक मुद्दा यह था :–

"13. प्रत्यर्थी द्वारा उठाए गए प्रश्न का उत्तर ठीक से इस न्यायालय द्वारा भिन्न-भिन्न परिप्रेक्ष्य में दिए गए कई विनिश्चयों में

[1] (2014) 16 एस. सी. सी. 285.

दिया गया है । विधि द्वारा अप्राधिकृत अधिकारी द्वारा अन्वेषण के विषय को अनियमित ठहराया गया है । निर्विवादतः मजिस्ट्रेट के आदेश द्वारा ऐसे सी. बी. आई. उप निरीक्षक द्वारा अन्वेषण किया गया जिसमें अन्वेषण पूरा होने पर आरोप पत्र प्रस्तुत किया । विचारण के दौरान ही प्रत्यर्थी द्वारा यह आक्षेप किया गया कि सी. बी. आई. उप-निरीक्षक को अन्वेषण करने की अनुज्ञा देते हुए मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश अधिकारितविहीन है । परिणामतः अधिकारी द्वारा किया गया अन्वेषण विधि की दृष्टि से दोषपूर्ण है । यह दिलचस्प है कि प्रत्यर्थी ने यह मामला नहीं उठाया कि उप-निरीक्षक द्वारा किए गए अन्वेषण के कारण गंभीर पक्षपात और न्याय की हानि कारित हुई है । यह सुस्थिर है कि अन्वेषण की अविधिमान्यता परिणाम को दूषित नहीं करता जब तक तद्द्वारा न्याय की घोर उपेक्षा कारित न हुई हो ।

इस न्यायालय ने उपरोक्त निर्णय में **एम. सी. सुलकुंते** बनाम **मैसूर राज्य**[1] ; **मुनीलाल** बनाम **दिल्ली प्रशासन**[2] ; **हरियाणा राज्य** बनाम **भजन लाल**[3] और **ए. सी. शर्मा** बनाम **दिल्ली प्रशासन**[4] वाले मामलों का अवलंब लेते हुए इस प्रकार निष्कर्ष निकाला :–

"19. पूर्व चर्चा के अनुसार, उच्च न्यायालय ने उप-निरीक्षक को अन्वेषण करने की अनुज्ञा देते हुए विशेष न्यायाधीश के आदेश के तात्पर्य की अनदेखी करने की भूल की । इसके अतिरिक्त, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि पुलिस उप-निरीक्षक द्वारा अन्वेषण के कारण न्याय के पक्षपात या दुरुपयोग का कोई मामला नहीं बनता, उच्च न्यायालय के आदेश को विधि की दृष्टि से कायम नहीं रखा जा सकता । उपरोक्त कारणों से, ये अपीलें मंजूर की जाती हैं और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को अपास्त किया जाता है । संबद्ध न्यायालय अब अतिशीघ्रता से कार्य करेगा ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

23. अपीलार्थी-बिहार राज्य की ओर से दी गई दलीलों पर गंभीर विचार करते हुए हमारा यह मत है कि इस न्यायालय द्वारा यथा घोषित

---

[1] (1970) 3 एस. सी. सी. 513.
[2] (1971) 2 एस. सी. सी. 48.
[3] (1992) (सप्ली.) 1 एस. सी. सी. 335.
[4] (1973) 1 एस. सी. सी. 726.

विधिक स्थिति दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 465 की धारणा के पूर्णतः अनुरूप और संगत हैं । ऐसी स्थिति में हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि उस विस्तार तक कि 31 मार्च, 1995 के पश्चात् और अधिसूचना तारीख 3 जून, 2002 (9 अगस्त, 2008 को) जारी किए जाने के पूर्व पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से नीचे के पुलिस अधिकारी द्वारा किया गया अन्वेषण दोषपूर्ण हो गया, उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए दूसरे अवधारण को अनिवार्यतः अपास्त किया जाना चाहिए । हमारे मतानुसार उपरोक्त निष्कर्ष को तभी वापस किया जाए यदि संबद्ध न्यायालय अपना समाधान व्यक्त करता है कि ऐसे अधीनस्थ पुलिस अधिकारी/कर्मचारी द्वारा जिसको मामले में अन्वेषण करने का कोई प्राधिकार नहीं था, किए गए अन्वेषण से अभियुक्त के प्रति पक्षपात कारित किया गया जिससे न्याय की घोर अवहेलना हुई । क्योंकि ऐसा कोई निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया गया है और इस न्यायालय के समक्ष भी यह साबित नहीं किया गया है कि अभियुक्त के प्रति ऐसा पक्षपात किया गया इसलिए उच्च न्यायालय के उपरोक्त निष्कर्ष को कायम रखना हमारे लिए संभव नहीं है । तद्नुसार, यह अपास्त किया जाता है ।

24. पूर्ववर्ती पैराग्राफ में अभिलिखित द्वितीय प्रतिपादना के प्रतिनिर्देश से अपना निष्कर्ष अभिलिखित करते हुए, राज्य सरकार की ओर से व्यक्त किए गए मुद्दों को ध्यान में रखना हमारे लिए आवश्यक है । अतः, जहां तक वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का संबंध है, अभियुक्त की ओर से ऐसा प्रदर्शन महत्वहीन होगा क्योंकि एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 9 के अधीन राज्य सरकार द्वारा जारी अधिसूचना को हमारे द्वारा विधिमान्य ठहराया गया और इस प्रकार पुलिस उप-अधीक्षक की पंक्ति से नीचे के पुलिस अधिकारी द्वारा भी "अब" विधिसम्मत अन्वेषण किया जा सकता है । और इस प्रकार, ऐसे मामलों में ही जहां नए सिरे से अन्वेषण करने का आदेश दिया जाता है, ऐसी स्थिति में ऐसे अधिकारी/कर्मचारी (पुलिस निरीक्षक, उप-निरीक्षक, सहायक उप-निरीक्षक) जिन्होंने मूल अन्वेषण किए हैं, को अन्वेषण प्राधिकार का धारक समझा जाएगा । अब, एस. सी. एस. टी. अधिनियम के अधीन प्राधिकृत अन्वेषणकारी प्राधिकारी उनको भी शामिल करेंगे जिन्हें एस. सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 9 के अधीन राज्य सरकार में निहित शक्ति के प्रयोग में उसके द्वारा अधिसूचित किया गया है । इस प्रकार, प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में पुनः अन्वेषण करने की ईप्सा करते हुए वर्तमान मुद्दा उठाने से किसी पक्षकार का कोई प्रयोजन पूरा नहीं होगा ।

25. तद्नुसार, अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा फाइल की गई अपील फाइल की जाती है और बिहार राज्य द्वारा फाइल की गई अपीलें इसमें उपरोक्त उपदर्शित विस्तार तक मंजूर की जाती हैं ।

अपील मंजूर की गई ।

पा.

[2017] 4 उम. नि. प. 79

हरि शंकर शुक्ला

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

5 अप्रैल, 2017

न्यायमूर्ति रोहिन्टन फली नरीमन और न्यायमूर्ति प्रफुल्ल सी. पन्त

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 299 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – आपराधिक मानव वध – अपीलार्थी द्वारा मृतक पर हाथापाई के दौरान गोली चलाया जाना – अभियोजन साक्षियों के कथन में संगतता – मृतक पर अपीलार्थी द्वारा उसके तमंचे से हाथापाई के दौरान गोली चलाई गई है, ऐसी स्थिति में छोटे-मोटे विरोधाभासों के बावजूद अपीलार्थी को दोषमुक्त नहीं किया जा सकता किंतु चूंकि अपीलार्थी को भी क्षतियां कारित हुई हैं इसलिए उसके दंड में कमी की जा सकती है ।

इस मामले में अपीलार्थी का विचारण आपराधिक मानव वध के अपराध के लिए अन्य अभियुक्तों के साथ किया गया था जिसमें सभी को विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया किंतु इसके पश्चात् राज्य की ओर से विचारण न्यायालय के दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की गई । उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के आदेश को अमान्य ठहराते हुए अपील मंजूर की और अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 323 तथा धारा 304 के अधीन दोषी पाया । उच्च न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थी ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत द्वारा अपील

फाइल की । उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के आदेश को मान्य ठहराते हुए अपीलार्थी की दोषसिद्धि कायम रखी किंतु दंडादेश की अवधि कम कर दी गई । अपील भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित — उच्च न्यायालय के निर्णय से इस न्यायालय का पूर्ण समाधान हो गया है जिसका मूल कारण यह है कि उच्च न्यायालय ने विशेष रूप से यह निष्कर्ष निकाला है कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए सभी प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि केवल अपीलार्थी ने ही अपने घर के मुख्य द्वार से गोली चलाई थी और इसी गोली से उमेश शुक्ला आहत हुआ था जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हुई । यहां उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत उचित प्रतीत होता है और यह तथ्य कि तीनों प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों ने, जिनमें दो साक्षी आहत हुए हैं, अपीलार्थी द्वारा किए गए घातक हमले के संबंध में एक जैसा साक्ष्य दिया है जिससे यह दर्शित होता है कि उच्च न्यायालय के निर्णय को अपील में उलटा नहीं जा सकता । यह न्यायालय यह भी मत व्यक्त करता है कि विचारण न्यायालय के निर्णय में इस बात का बिल्कुल उल्लेख नहीं है बल्कि उसमें अन्य कमियों को दर्शाया गया है जिनका संबंध हाथापाई से है जो दोनों पक्षकारों के बीच हुई थी जिसके परिणामस्वरूप अपीलार्थी द्वारा गोली चलाई गई और इस संबंध में जैसा कि ऊपर अभिनिर्धारित किया गया है, कोई भी विरोधाभास नहीं है । यह न्यायालय उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से सहमत है । तथापि, यह भी उल्लेखनीय है कि प्रतिरक्षा साक्षी 1 ने चिकित्सीय साक्ष्य में अपीलार्थी को कारित हुई क्षतियों की स्थिति को स्पष्ट किया है । 5 क्षतियों के बारे में कथन किया गया है जिनमें पहली दो क्षतियां गंभीर प्रकृति की हैं यद्यपि उन्हें साधारण प्रकृति की क्षतियां बताया गया है । इनमें पहली क्षति माथे के दाईं ओर करोपि पर गहरा विदीर्ण घाव है । दूसरी क्षति छिन्न घाव है जिसकी गहराई त्वचा तक है और यह घाव माथे के बाईं ओर है । अन्य तीनों क्षतियां बाएं कन्धे के जोड़ के पीछे की ओर स्थित हैं, बाएं हाथ के मध्य में सामने की ओर गुमटा है और दाईं टांग के मध्य में सामने की ओर खरोंच पाई गई है । इन सभी क्षतियों से यह दर्शित होता है कि वास्तव में दोनों पक्षों के बीच हाथापाई हुई थी । वस्तुतः, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अभियुक्त द्वारा दिए गए कथन में इस अन्तिम प्रश्न के उत्तर में, कि आपको कुछ कहना है, अभियुक्त ने यह कहा कि मुझे क्षतियां पहुंची थीं । अतः, न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि यह एक ऐसा मामला है जिसमें

दोषसिद्धि कायम रखी जानी चाहिए किंतु दंड को घटाकर छह वर्ष के कारावास जितना किया जाना चाहिए और जुर्माने को 7,000/- रुपए किया जाना चाहिए । (पैरा 10, 11 और 12)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2007 की दांडिक अपील सं. 1159 (इसके साथ 2017 की दांडिक अपील सं. 655 की भी सुनवाई की गई).

1996 की सरकारी अपील सं 360 इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 1 मार्च, 2007 को दिए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री अमरेन्द्र शरण (ज्येष्ठ अधिवक्ता), राकेश मिश्रा (शेखर कुमार की ओर से), अमित यादव, नीलकंठ नायक और शिशिर देशपाण्डे

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री एम. आर. शमशाद, विवेक विश्नोई, आदित्य समद्दर और जकी अहमद खान

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति रोहिन्टन फली नरीमन ने दिया ।

न्या. नरीमन – 2008 की दांडिक प्रकीर्ण आवेदन सं. 932 में विशेष इजाजत याचिका फाइल करने की अनुमति दी जाती है ।

2. विलंब माफ किया जाता है ।

3. इजाजत प्रदान की जाती है ।

4. वर्तमान मामला मृत्यु की घटना से उद्भूत है जो तारीख 11 जुलाई, 1992 को हुई थी । मृतक के माता-पिता दोनों ही आहत प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं और अभियुक्त ग्राम मामखोर के निवासी हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि पक्षकारों के बीच भूमि को लेकर विवाद था । यह अभिकथन किया गया है कि (इस मामले में) तीन अभियुक्त हैं, जिन्होंने आहत प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के सहन (अहाता) के एक भाग पर अधिक्रमण कर लिया था और उन्होंने वहां पर मवेशियों के चारे की नांदें रख दीं । यह अभिकथन किया गया है कि लगभग 6 बजे पूर्वाह्न में अभियुक्त मवेशियों की नांदों के दक्षिण दिशा में मिट्टी का ढेर लगा रहे थे । कुमारी बिन्दु (अभि. सा. 4) की पुत्री ने अपने पिता को अहाते में अभियुक्तों द्वारा किए जा रहे अधिक्रमण के बारे में सूचित किया । इस पर दोनों साक्षी अर्थात्

अभि. सा. 3 और अभि. सा. 4 घर के बाहर आए और उन्होंने इस पर आपत्ति की कि अभियुक्त उनकी भूमि पर मिट्टी क्यों डाल रहे हैं । इस पर दोनों पक्षों के बीच कहा-सुनी हो गई । अभियुक्तों में से एक अभियुक्त अर्थात् गुलाब शुक्ला ने अपने साथियों को अभि. सा. 4 पर हमला करने के लिए उकसाया । इसके पश्चात् कहानी में मोड़ आ गया । एक वृत्तान्त के अनुसार हरि शंकर शुक्ला ने, जो अभियुक्त-3 है और विशेष इजाजत याचिका में जो हमारे समक्ष फाइल की गई है, याची भी है, फावड़े से वार किया जबकि दूसरे वृत्तान्त के अनुसार गुलाब शुक्ला ने यह वार मृतक पर किया था । स्थिति कुछ भी हो, ऐसा प्रतीत होता है कि पक्षकारों के बीच हाथापाई हुई थी, जिस पर अभियुक्त-3 अपने घर वापस आया और फिर देशी तमंचे के साथ बाहर आया । इसके पश्चात् अभि. सा. 1, अभि. सा. 3 और अभि. सा. 4 परिवार के सदस्य हैं जिन्होंने यह कथन किया है कि इस अभियुक्त ने देशी तमंचे से गोली चलाई थी जिसके कारण उमेश शुक्ला की मृत्यु हुई है । जैसा कि इसमें इसके ऊपर कथन किया गया है, अभि. सा. 1, अभि. सा. 3 और अभि. सा. 4 प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं जिनमें अभि. सा. 3 और अभि. सा. 4 इस घटना में आहत हुए हैं । साक्ष्य का विस्तार से परिशीलन करने और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, जो कि चौकीदार (अभि. सा. 2) द्वारा दर्ज कराई गई थी, पर विचार करने के पश्चात् विचारण न्यायालय ने तीनों प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य में अनेक विरोधाभास पाए और यह निष्कर्ष निकाला कि किसी भी स्थिति में अभि. सा. 1 के साक्ष्य का अवलंब नहीं लिया जा सकता । अभि. सा. 3 और अभि. सा. 4 प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं किंतु उनके वृत्तान्त असंगत होने के कारण अवलंब लिए जाने योग्य नहीं हैं । अंतिमतः, विचारण न्यायालय ने निम्न निष्कर्ष निकाला :–

> "इस प्रकार, तीनों साक्षियों ने अभिकथित मारपीट के आरंभ होने के संबंध में अलग-अलग साक्ष्य दिया है । महेन्द्र शुक्ला (अभि. सा. 1) के अनुसार गुलाब शुक्ला ने जगदीश को दबोच लिया था और हरि शंकर ने फावड़े से वार किए थे । इसके प्रतिकूल सावित्री (अभि. सा. 3) ने यह कथन किया है कि गुलाब शुक्ला ने जगदीश नारायण के सिर पर कुदाल से वार किया था । तथापि, दोनों साक्षियों के कथन परिस्थिति को देखते हुए विरोधाभासी हैं जिसमें फावड़े से वार करना बताया गया है । तीसरे साक्षी जगदीश नारायण (अभि. सा. 4) ने यह कथन किया है कि हरि शंकर और गुलाब शुक्ला ने फावड़े से वार किए थे । इतना ही नहीं, अभि. सा. 1 ने यह भी कथन किया है कि तीनों अभियुक्तों के पास फावड़े थे और तीनों ने जगदीश नारायण पर फावड़ों से वार किए थे । इस प्रकार, फावड़ों की संख्या, फावड़ों

या कुदाल से वार करने वाले व्यक्तियों के नाम भिन्न-भिन्न साक्षियों के साक्ष्य में भिन्न-भिन्न हैं । इस बात से भी अभियोजन वृत्तांत अत्यंत संदिग्ध हो जाता है ।"

5. विचारण न्यायालय ने निरन्तर रूप से यही मत व्यक्त किया है कि संपूर्ण साक्ष्य का परिशीलन करने के पश्चात् घटना स्वयं संदिग्ध दिखाई पड़ती है और विचारण न्यायालय ने इस तथ्य पर भी टिप्पणी की है कि मृतक के आमाशय में अधपचा भोजन पाया गया था । चिकित्सीय साक्ष्य से यह दर्शित होता है कि गोली लगने से 2 से 3 घंटे पहले मृतक ने भोजन किया था और इससे यह दर्शित होता है कि यह घटना किसी भी स्थिति में 6 बजे पूर्वाह्न में घटित हो ही नहीं सकती थी । इस आधार पर, विचारण न्यायालय ने उसके समक्ष प्रस्तुत हुए तीनों अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया ।

6. राज्य द्वारा फाइल की गई अपील में उच्चतम न्यायालय ने अभियुक्त-3 को, जिसने हमारे समक्ष इजाजत याचिका फाइल की है, भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 304, भाग-1 के अधीन उमेश शुक्ला की मृत्यु कारित करने, धारा 307 के अधीन सावित्री देवी (अभि. सा. 3) की हत्या का असफल प्रयास करने और धारा 323 के अधीन हमला करने के लिए दोषसिद्ध करते हुए क्रमशः 10 वर्ष के कठोर कारावास, 3 वर्ष के कठोर कारावास और जुर्माने के साथ छह मास के कठोर कारावास से दंडादिष्ट किया । अन्य दो अभियुक्त जिनके मामले पर हमें विचार नहीं करना है को दंड संहिता की धारा 323 के अधीन 6 मास के कारावास से दंडादिष्ट किया गया है ।

7. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री अमरेन्द्र शरण ने हमारे समक्ष यह दलील दी है कि दोषमुक्ति के लिए दिया गया विचारण न्यायालय का निर्णय पूर्णतया युक्तियुक्त है और ऐसा होने पर उच्च न्यायालय को इस निर्णय में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था क्योंकि उक्त निर्णय में कुछ भी अनुचित नहीं है । विद्वान् काउंसेल के अनुसार उच्च न्यायालय ने कई गंभीर गलतियां की हैं । उदाहरणार्थ, उच्च न्यायालय ने एक्स-रे रिपोर्ट का अवलंब लिया है जबकि इसे विचारण न्यायालय के समक्ष प्रदर्शित नहीं किया गया था और उच्च न्यायालय ने यह अर्थ लगाया है कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों को क्षतियां पहुंचीं थीं । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा इंगित की गई कई कमियों पर ध्यान नहीं दिया है और इसीलिए उच्च न्यायालय को पूर्णतया तर्कसम्मत निर्णय में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था ।

किसी भी स्थिति में, विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल के अनुसार यदि उच्च न्यायालय के निर्णय से हम सहमत हो जाएं, तब भी परिणाम यही सामने आता है कि यह घटना कई वर्षों पूर्व घटित हुई थी और अपीलार्थी ने उस पर अधिरोपित दंडादेश के केवल 9 मास की अवधि का कारावास भोगा है, ऐसी स्थिति में यदि उसे दोषसिद्ध किया जाता है, तब भी उस पर कारावास का दंड अधिरोपित नहीं किया जाना चाहिए अपितु उस पर अतिरिक्त जुर्माना अधिरोपित किया जा सकता है ।

8. राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने उच्च न्यायालय के निर्णय के समर्थन में दलील दी है । विद्वान् काउंसेल के अनुसार सबसे महत्वपूर्ण परिस्थिति मृतक उमेश शुक्ला को अपीलार्थी द्वारा गोली मारा जाना है । इस पर जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा ठीक ही मत व्यक्त किया गया है कि अभि. सा. 1, अभि. सा. 3 और अभि. सा. 4 के साक्ष्यों में कोई भी विरोधाभास नहीं है और ये साक्षी इस मामले में आहत भी हुए हैं । इन तीनों साक्षियों ने यह कथन किया है कि हमारे समक्ष प्रस्तुत अपीलार्थी हाथापाई के पश्चात् अपने घर पर वापस गया और पिस्तौल लेकर आया और उसने एक गोली चलाई और इसी गोली से मृतक उमेश शुक्ला की मृत्यु हुई । विद्वान् काउंसेल ने उच्च न्यायालय के निर्णय में उल्लिखित कुछ बातों का गहराई से परिशीलन किया है और यह दलील दी है कि विचारण न्यायालय द्वारा इंगित की गई कमियों पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया है और उच्च न्यायालय का निर्णय पूर्णतया सोच-समझकर दिया गया है तथा यह तथ्य कि अपीलार्थी को केवल दंड संहिता की धारा 304, भाग 1/307/323 के अधीन ही दोषसिद्ध किया गया है, इसलिए इस निर्णय में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए ।

9. हमने प्रत्यक्षदर्शी आहत साक्षी सावित्री देवी (अभि. सा. 3) जोकि आहत की माता है, की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल को भी सुना है । श्री शरण ने आरंभिक आक्षेप यह दलील देते हुए किया है कि सावित्री देवी ने तारीख 20 अक्तूबर, 1995 को पारित किए गए विचारण न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील नहीं की है और इसलिए इसकी सुनवाई नहीं की जानी चाहिए । हमारे अनुसार, यह एक तकनीकी आक्षेप है, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 372 में वर्ष 2009 में यह संशोधन किया गया था जिसमें अभि. सा. 3 जैसे व्यक्ति को भी अपील करने का अधिकार प्रदान किया गया है । स्पष्टतः यह उपबंध जोकि 1995 में प्रवृत्त नहीं था, इसलिए अभि. सा. 3 उस समय अपील नहीं कर सकती थी,

उसने अब अपील फाइल की है । हमने अभि. सा. 3 की ओर से विद्वान् काउंसेल को सुना है जिन्होंने राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों का समर्थन किया है ।

10. उच्च न्यायालय के निर्णय से हमारा पूर्ण समाधान हो गया है जिसका मूल कारण यह है कि उच्च न्यायालय ने विशेष रूप से यह निष्कर्ष निकाला है कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए सभी प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि केवल अपीलार्थी ने ही अपने घर के मुख्य द्वार से गोली चलाई थी और इसी गोली से उमेश शुक्ला आहत हुआ था जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हुई । यहां उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत उचित प्रतीत होता है और यह तथ्य कि तीनों प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों ने, जिनमें दो साक्षी आहत हुए हैं, अपीलार्थी द्वारा किए गए घातक हमले के संबंध में एक जैसा साक्ष्य दिया है जिससे यह दर्शित होता है कि उच्च न्यायालय के निर्णय को अपील में उलटा नहीं जा सकता । हम यह भी मत व्यक्त करते हैं कि विचारण न्यायालय के निर्णय में इस बात का बिल्कुल उल्लेख नहीं है बल्कि उसमें अन्य कमियों को दर्शाया गया है जिनका संबंध हाथापाई से है जो दोनों पक्षकारों के बीच हुई थी जिसके परिणामस्वरूप अपीलार्थी द्वारा गोली चलाई गई और इस संबंध में जैसा कि ऊपर अभिनिर्धारित किया गया है, कोई भी विरोधाभास नहीं है । परिणामतः, उच्च न्यायालय ने निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "दंड संहिता की धारा 299 के अधीन परिभाषित आपराधिक मानव वध इस प्रकार है – जो कोई मृत्यु कारित करने के आशय से, या ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से जिससे मृत्यु कारित हो जाना संभाव्य हो या यह ज्ञान रखते हुए कि यह संभाव्य है कि वह उस कार्य से मृत्यु कारित कर दे, कोई कार्य करके मृत्यु कारित कर देता है, वह आपराधिक मानव वध का अपराध करता है । आपराधिक मानव वध दंड संहिता की धारा 304 के अधीन दंडनीय है । प्रत्यर्थी हरि शंकर शुक्ला उमेश शुक्ला के आपराधिक मानव वध के लिए जिम्मेदार है जो हत्या की कोटि में नहीं आता है और ऐसा करने में अन्य सह-अभियुक्त अर्थात् गुलाब शुक्ला और बुधी शुक्ला का कोई भी सामान्य आशय नहीं था किंतु जब तीनों अभियुक्तों ने फावड़े और पथराव आदि द्वारा मारपीट की थी, तब क्षतियां कारित करने के लिए उनका सामान्य आशय था । ऐसी परिस्थितियों में, अभियुक्त हरि शंकर शुक्ला दंड संहिता की धारा 304 भाग 1 के अधीन उमेश शुक्ला की हत्या और श्रीमती सावित्री देवी की हत्या के प्रयास

द्वारा क्षति कारित करने के लिए धारा 307 के अधीन दोषी है । अन्य सह-अभियुक्त गुलाब शुक्ला और बुधी शुक्ला ने जगदीश नारायण शुक्ला (अभि. सा. 4) को सभी के सामान्य आशय को अग्रसर करने में साधारण क्षतियां कारित कीं, अतः हरि शंकर शुक्ला दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 323 के अधीन दंड अपराध के लिए भी दायी है किंतु सह अभियुक्त गुलाब शुक्ला और बुधी शुक्ला दंड संहिता की केवल धारा 323 के अधीन दंडनीय अपराध के दोषी हैं ।"

11. हम उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से सहमत हैं । तथापि, यह भी उल्लेखनीय है कि प्रतिरक्षा साक्षी 1 ने चिकित्सीय साक्ष्य में अपीलार्थी को कारित हुई क्षतियों की स्थिति को स्पष्ट किया है । 5 क्षतियों के बारे में कथन किया गया है जिनमें पहली दो क्षतियां गंभीर प्रकृति की हैं यद्यपि उन्हें साधारण प्रकृति की क्षतियां बताया गया है । इनमें पहली क्षति माथे के दाईं ओर करोपि पर गहरा विदीर्ण घाव है । दूसरी क्षति छिन्न घाव है जिसकी गहराई त्वचा तक है और यह घाव माथे के बाईं ओर है । अन्य तीनों क्षतियां बाएं कंधे के जोड़ के पीछे की ओर स्थित हैं, बाएं हाथ के मध्य में सामने की ओर गुमटा है और दाईं टांग के मध्य में सामने की ओर खरोंच पाई गई है । इन सभी क्षतियों से यह दर्शित होता है कि वास्तव में दोनों पक्षों के बीच हाथापाई हुई थी । वस्तुतः, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अभियुक्त द्वारा दिए गए कथन में इस अन्तिम प्रश्न के उत्तर में, कि आपको कुछ कहना है, अभियुक्त ने यह कहा कि मुझे क्षतियां पहुंचीं थीं ।

12. अतः, हमारा यह निष्कर्ष है कि यह एक ऐसा मामला है जिसमें दोषसिद्धि कायम रखी जानी चाहिए किंतु दंड को घटाकर छह वर्ष के कारावास जितना किया जाना चाहिए और जुर्माने को 7,000/- रुपए किया जाना चाहिए ।

13. हम, तद्नुसार आदेश करते हैं ।

14. अपीलें इसी सीमित सीमा तक ही मंजूर की जाती हैं ।

15. 2007 की दांडिक अपील सं. 1159 में अपीलार्थी जमानत पर है । उसके जमानत पत्र रद्द किए जाते हैं । अपीलार्थी को कारावास की शेष अवधि को भोगने के लिए तत्काल अभिरक्षा में लिया जाएगा ।

अपील भागतः मंजूर की गई ।

अस.

[2017] 4 उम. नि. प. 87

सोउ (डा.) जयाश्री उज्जवल इंगोले

बनाम

महाराष्ट्र राज्य और अन्य

6 अप्रैल, 2017

न्यायमूर्ति मदन बी. लोकुर और न्यायमूर्ति दीपक गुप्ता

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 304क – उपेक्षा द्वारा मृत्यु – उपेक्षा का साबित न होना – अपीलार्थी का काल पर बुलाए जाने वाले चिकित्सक के रूप में कार्य करना – काय चिकित्सक की आवश्यकता होना – काय चिकित्सक के आने के पूर्व ही अपीलार्थी का रोगी के पास से चले जाना – अपीलार्थी को बुलाए जाने पर वह रोगी का उपचार करने रोगी के पास आई और उसने उसके शरीर में कोई भी रक्तस्राव होता नहीं पाया और न ही कोई क्षति देखी, अतः अपीलार्थी ने काय चिकित्सक को बुलाए जाने की सलाह दी और वह काय चिकित्सक को आने के पूर्व ही रोगी की परीक्षा करके चली गई किंतु अपीलार्थी को किसी भी व्यक्ति द्वारा पुनः चिकित्सा के लिए नहीं बुलाया गया, ऐसी परिस्थितियों में अपीलार्थी को उपेक्षा के कारण रोगी की मृत्यु के लिए दायी ठहराना उचित नहीं होगा ।

इस मामले में अपीलार्थी काल पर बुलाए जाने वाले चिकित्सक के पद पर इरविन अस्पताल, अमरावती में कार्यरत थी । मृतक को एक सड़क दुर्घटना के परिणामस्वरूप उस अस्पताल में भर्ती कराया गया जिसके उपचार के लिए अन्य चिकित्सकों के अतिरिक्त अपीलार्थी द्वारा भी रोगी का उपचार किया गया जिसके लिए अपीलार्थी को काल पर बुलाया गया था । चिकित्सा परीक्षा करने के पश्चात् अपीलार्थी रोगी को छोड़कर चली गई और तत्पश्चात् रोगी की मृत्यु हो गई । अपीलार्थी के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 304क के अधीन उपेक्षा बरते जाने का मामला दर्ज कराया गया । विचारण के दौरान ही अपीलार्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट खारिज कराए जाने की लिए मुंबई उच्च न्यायालय की नागपुर न्यायपीठ के समक्ष आवेदन किया जो खारिज कर दिया गया । इसके पश्चात् अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के आदेश को चुनौती देते हुए उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें अपीलार्थी का विचारण किया जाए, विशेषकर ऐसी स्थिति में जब 20 वर्ष का समय पहले ही बीत चुका हो । अपीलार्थी के विरुद्ध मात्र यह अभिकथन किया गया है कि वह रोगी को छोड़कर चली गई थी । न्यायालय को यह याद है कि अपीलार्थी काल पर बुलाए जाने वाले चिकित्सक के रूप में ड्यूटी पर थी । वह अस्पताल में तब आई जब उसे बुलाया गया और उसने रोगी की चिकित्सा परीक्षा की । इस चिकित्सक के निर्णय के अनुसार रोगी के शरीर में कोई भी रक्तस्राव नहीं हो रहा था और न ही उसे कोई क्षति पहुंची हुई थी, अतः, चिकित्सक ने यह सुझाव दिया कि किसी काय चिकित्सक को बुलाया जाए । इसके पश्चात्, अपीलार्थी लगभग 11 बजे अपराह्न में अस्पताल से चली गई । सत्य यह है कि उसने काय चिकित्सक के आने की प्रतीक्षा नहीं की किंतु यह उपधारित किया जा सकता है कि अपीलार्थी को यह प्रत्याशा थी कि काय चिकित्सक शीघ्र ही आ जाएगा । यह अपीलार्थी के आकलन में त्रुटि हो सकती है किंतु इसे दंड संहिता की धारा 304क के अधीन अनुध्यात उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण कार्य निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । किसी भी पक्षकार ने यह नहीं कहा है कि ड्यूटी पर तैनात नर्सिंग स्टाफ द्वारा अपीलार्थी को पुनः बुलाया गया था । यदि रोगी की दशा 11 बजे अपराह्न से 5 बजे पूर्वाह्न के बीच और अधिक बिगड़ गई थी तब नर्सिंग स्टाफ अपीलार्थी को पुनः बुला सकता था किंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया । अगले दिन प्रातःकाल आपातकालीन ड्यूटी पर तैनात चिकित्सक अर्थात् डा. मोहोद ने रोगी की चिकित्सा परीक्षा की किंतु दुर्भाग्यवश उसकी मृत्यु हो गई । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलार्थी आपराधिक उपेक्षा की दोषी है । बहुत से बहुत इसे अपीलार्थी के आकलन की त्रुटि कहा जा सकता है । न्यायालय का यह मत है कि दंड संहिता की धारा 304क के अधीन अनुध्यात उतावलेपन और उपेक्षा का कृत्य कारित किए जाने का कोई भी मामला अपीलार्थी के विरुद्ध नहीं बनता है । (पैरा 9, 10 और 11)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2005]	(2005) 6 एस. सी. सी. 1 :	
	जैकब मैथ्यू बनाम **पंजाब राज्य और अन्य** ।	8,9

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2017 की दांडिक अपील सं. 636.

2012 की दांडिक अपील सं. 354 में तारीख 18 जून, 2014 को

मुंबई उच्च न्यायालय की नागपुर न्यायपीठ द्वारा पारित किए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से — सर्वश्री अनिल मर्दीकर (ज्येष्ठ अधिवक्ता) और शिरीश कुमार देशपाण्डे

प्रत्यर्थियों की ओर से — सर्वश्री गगन सांघी, रामेश्वर प्रसाद गोयल, अमोल निर्मल कुमार सूर्यवंशी और निशांत रमाकांतराव कटनेश्वरकर

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति दीपक गुप्ता ने दिया ।

न्या. गुप्ता – इजाजत प्रदान की जाती है ।

2. इस मामले में की अपीलार्थी एक चिकित्सक है और उसने 2012 की दांडिक अपील सं. 354 में मुंबई उच्च न्यायालय की नागपुर न्यायपीठ द्वारा पारित किए गए तारीख 18 जून, 2014 के उस निर्णय को चुनौती दी है जिसके अनुसार भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 304क के अधीन अपीलार्थी के विरुद्ध संस्थित की गई दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने के लिए, उसकी ओर से दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अधीन फाइल किया आवेदन खारिज कर दिया गया है ।

3. इस मामले के तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं कि श्रीकृष्ण गवाई (जिसे इसमें इसके पश्चात् "मृतक" कहा गया है) को सड़क दुर्घटना में आई क्षतियों के कारण इरविन अस्पताल, अमरावती में तारीख 29 अगस्त, 1997 को चिकित्सीय उपचार के लिए भर्ती कराया गया । पक्षकारों का यह स्वीकृत पक्षकथन है कि मृतक हीमोफीलिया के रोग से ग्रसित था जोकि एक ऐसी बीमारी है जिसमें रक्त का थक्का नहीं बन पाता । अतः, रोगी के उपचार के लिए विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता हुई । इसमें कोई विवाद नहीं है कि डा. मनोहर मोहोद आपातकालीन चिकित्सा अधिकारी के रूप में ड्यूटी पर थे । तारीख 29 अगस्त,1997 को इस रोगी का उपचार अपीलार्थी और डा. मोहोद अर्थात् दोनों चिकित्सकों द्वारा किया गया । तारीख 30 और 31 अगस्त, 1997 को मृतक की चिकित्सा परीक्षा डा. धीरेन्द्र वाघ द्वारा कराई गई । इसके पश्चात्, मृतक, अपीलार्थी और डा. मोहोद के उपचाराधीन अस्पताल में ही रहा ।

4. आपातकालीन चिकित्सा अधिकारी डा. मोहोद ने तारीख 5

सितंबर, 1997 को 9 बजे अपराह्न में मृतक का उपचार किया और यह निष्कर्ष निकाला कि रोगी उदरीय दर्द से पीड़ित है और इसके पश्चात् इस संबंध में अपीलार्थी को, जोकि फोन पर बुलाए जाने वाले शल्य चिकित्सक की ड्यूटी पर तैनात थी, बुलाया गया । इसमें कोई विवाद नहीं है कि अपीलार्थी बुलाए जाने पर ही अस्पताल गई । अपीलार्थी ने मृतक का उपचार किया और यह टिप्पणी की कि किसी काय चिकित्सक को बुलाया जाए । इसके पश्चात् वह अस्पताल से चली गई । तारीख 6 सितंबर, 1997 को प्रातःकाल मृतक की दशा और बिगड़ गई और इसके पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई ।

5. अपीलार्थी के विरुद्ध मुख्य अभिकथन यह किया गया है कि काय चिकित्सक को बुलाने के पश्चात् उसने अस्पताल में उसकी प्रतीक्षा नहीं की और रोगी का उपचार नहीं किया, विशेषकर ऐसी स्थिति में जब रोगी हीमोफीलिया से पीड़ित था । डा. अविनाश चौधरी (काय चिकित्सक) इस मामले में अभियुक्त-1 है, अस्पताल नहीं पहुंचा । तारीख 6 सितंबर, 1997 को अर्थात् अगले दिन प्रातःकाल भी जब डा. मोहोद ने मृतक की पुनः चिकित्सा परीक्षा की, तब भी डा. चौधरी वहां मौजूद नहीं थे और दुर्भाग्यवश रोगी की मृत्यु हो गई । इसके पश्चात्, पुलिस थाने में शिकायत दर्ज कराई गई जिसमें मृतक के भाई ने यह अभिकथन किया कि मृतक की मृत्यु तीन चिकित्सकों की लापरवाही के परिणामस्वरूप हुई है । इस शिकायत के आधार पर अपराध मामला सं. 317/1997 के तहत अन्वेषण किया गया और आरोप पत्र आरंभ में तो केवल डा. अविनाश चौधरी के विरुद्ध फाइल किया गया किंतु उसके पश्चात् अपीलार्थी डा. जयाश्री उज्जवल इंगोले और डा. मनोहर मोहोद को भी आलिप्त किया गया ।

6. इस संबंध में अलग से विभागीय जांच कराई गई जिसमें तीनों चिकित्सकों को अपनी ड्यूटी करने के दौरान लापरवाह अभिनिर्धारित किया गया । डा. मोहोद को दंड के रूप में वेतन में की जाने वाली वार्षिक अभिवृद्धि से भी वंचित किया गया; अपीलार्थी डा. जयाश्री इंगोले को स्थायी रूप से इरविन अस्पताल, अमरावती में प्रवेश करने से प्रतिषिद्ध कर दिया गया और डा. अविनाश चौधरी का स्थानांतरण कर दिया गया । यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण होगा कि डा. मोहोद को इस आधार पर दांडिक मामले से उन्मोचित कर दिया गया कि उनके विरुद्ध लापरवाही का कोई भी मामला नहीं बनता है ।

7. इस मामले में के अपीलार्थी ने अपने विरुद्ध लगाए गए आरोप को अभिखंडित करने के लिए आवेदन फाइल किया है किंतु यह आवेदन मुंबई उच्च न्यायालय की नागपुर न्यायपीठ के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा मुख्य रूप से इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि अपीलार्थी द्वारा लगभग 11 बजे अपराह्न में मृतक को छोड़कर चले जाने और काय चिकित्सक के अस्पताल में पहुंचने तक वहां प्रतीक्षा न करने का कृत्य उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण कार्य की कोटि में आएगा या नहीं, यह विचारण के दौरान तय किया जाएगा ।

8. हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना है । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने **जैकब मैथ्यू** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया है जिसमें इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि न्यायालय को किसी चिकित्सा व्यवसायी के विरुद्ध आपराधिक कार्यवाहियां संस्थित करने के पूर्व सोच-विचार कर लेना चाहिए । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि उपेक्षा (i) शिकायत किए गए पक्ष द्वारा सावधानी बरतने के विधिक कर्तव्य (ii) उक्त कर्तव्य का भंग; और (iii) पारिणामिक नुकसानी से मिलकर गठित होती है । यह अभिनिर्धारित किया गया है कि ऐसे मामलों में जिनमें चिकित्सक जैसे व्यवसायियों के विरुद्ध उपेक्षा का अभिकथन किया जाता है, उनमें न्यायालय को दांडिक कार्यवाहियां संस्थित करने के पूर्व सावधानी बरतनी चाहिए । किसी भी चिकित्सक के लिए यह संभव नहीं है कि वह यह सुनिश्चित करे या इस बात की गारंटी दे कि उसके द्वारा किए गए उपचार का परिणाम निश्चित रूप से सकारात्मक ही होगा । कोई व्यवसायी केवल यही आश्वासन दे सकता है कि वह व्यवसायी रूप से सक्षम है, आवश्यकतानुसार दक्ष है और उसने युक्तियुक्त सावधानी बरतते हुए अपने कार्य को संभाला है । **जैकब मैथ्यू** (उपरोक्त) वाले मामले में निम्न सुसंगत मताभिव्यक्तियों को कोट करना उचित होगा :–

> "26. कोई भी बुद्धिमान व्यवसायी साशय ऐसा कृत्य या लोप कारित नहीं करेगा जिसके परिणामस्वरूप रोगी को कोई हानि या क्षति पहुंचे क्योंकि उसकी ख्याति और प्रतिष्ठा दांव पर लगी होती है । एक बार असफल हो जाने से उसकी आजीविका प्रभावित हो सकती है । सिविल अधिकारिता में भी 'स्वयं प्रमाण' का सिद्धांत सार्वभौमिक

---

[1] (2005) 6 एस. सी. सी. 1.

रूप में लागू नहीं हो सकता और इसका प्रयोग अत्यंत सावधानी और सतर्कता से ऐसे मामलों में किया जाना चाहिए जिनका संबंध व्यवसायिक उपेक्षा से होता है और विशेषकर चिकित्सकों से होता है । अन्यथा इसका दुरुपयोग किया जा सकता है । मात्र इस कारण से कि रोगी को सकारात्मक रूप से काय चिकित्सक या शल्य चिकित्सक द्वारा किए गए उपचार से लाभ नहीं हुआ है, चिकित्सक को 'स्वयं प्रमाण' वाले सिद्धांत का प्रयोग करते हुए जिम्मेदार अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता ।

* * * * *

28. एक चिकित्सा व्यवसायी जो आपातकालीन स्थिति में उपचार कर रहा है, सामान्य रूप से वह रोगी को उसकी पीड़ा से मुक्ति दिलाने के लिए भरपूर प्रयास करता है । उसे उपेक्षापूर्ण कार्य करने या अपने किसी कार्य का लोप करने से कोई भी लाभ नहीं पहुंचता है । अतः, यह स्पष्ट है कि शिकायतकर्ता किसी ऐसे चिकित्सा व्यवसायी के विरुद्ध उपेक्षा का मामला ठीक प्रकार साबित करे जिसके विरुद्ध दांडिक कार्यवाही की जा रही है । जिस शल्य चिकित्सक के हाथ विधिक कार्यवाही के डर से कांपेंगे वह सफलतापूर्वक शल्य चिकित्सा नहीं कर सकता और इसी प्रकार घबराया हुआ काय चिकित्सक अपने रोगी के लिए ठीक ओषधि का चुनाव नहीं कर सकता ।

29. चिकित्सा उपचार असफल हो जाने की स्थिति में यदि दांडिक अभियोजन के भय से चिकित्सक के हाथ कांपेंगे – चाहे गलती स्वयं चिकित्सक की हो या नहीं, ऐसी स्थिति में कोई भी शल्य चिकित्सक चिकित्सा के लिए आवश्यक कार्य को सफलतापूर्वक पूरा नहीं कर सकता और न ही कोई काय चिकित्सक अपने रोगी के लिए जीवन बचाने की ओषधि का चुनाव सफलतापूर्वक कर पाएगा । जोखिम उठाना किसी को भी पसन्द नहीं है, चिकित्सा व्यवसायी को तो अपेक्षाकृत यह अच्छा लगेगा कि वह जीवन-मृत्यु के बीच जूझ रहे ऐसे रोगी को आपातकालीन परिस्थिति में उसी के हाल पर यूं ही छोड़ दे जिसके बचने की संभावना 10 प्रतिशत या उससे भी कम हो और वह व्यवसायी यह नहीं चाहेगा कि वह रोगी का जीवन बचाने के लिए अंतिम प्रक्रम पर कोई ऐसा जोखिम उठाए जिसके परिणामस्वरूप उसे, यदि वह अपने प्रयास में असफल हो जाता है,

दांडिक अभियोजन का सामना करना पड़े । चिकित्सक पर ऐसा भय बनाए रखना समाज के लिए हानिकर होगा ।

30. किसी व्यवसायी को, यदि वह उपेक्षावान पाया जाता है, उसके कृत्य या लोप के लिए जिम्मेदार ठहराने का उद्देश्य, लोगों के जीवन को सुरक्षित बनाना है और भविष्य में ऐसी उपेक्षा की संभावना की आवृत्ति को कम करना है । मानव-शरीर और चिकित्सा विज्ञान, दोनों को ही समझना सरल नहीं है । किसी चिकित्सा व्यवसायी के कार्य या लोप में की गई उपेक्षा को अभिनिर्धारित करने के लिए चिकित्सा व्यवसायी के कार्य, उसकी प्रकृति तथा अचानक कारित होने वाली त्रुटियों को गहराई से समझना आवश्यक है जिनमें अपराधिता का तत्व होना आवश्यक नहीं है ।"

इस विषय से संबंधित संपूर्ण विधि पर विचार करने के पश्चात् इस न्यायालय ने निम्न मत व्यक्त किया है :–

"48. हमारे निष्कर्ष निम्न प्रकार हैं –

(1) उपेक्षा, कर्तव्य का भंग है और यह भंग ऐसे कार्य का लोप करने से कारित होता है जिसे ऐसी बातों से मार्ग दर्शित कोई भी युक्तियुक्त व्यक्ति करेगा जिससे मानव आचरण निर्धारित होता है या कोई व्यक्ति ऐसा कार्य करे जिसे कोई प्रज्ञावान या युक्तियुक्त मनुष्य न करे । रतन लाल एण्ड धीरज लाल द्वारा लिखित (न्यायमूर्ति जी. पी. सिंह द्वारा संपादित) पुस्तक ला आफ टार्ट्स में उपेक्षा की जो परिभाषा इससे इसके ऊपर दी गई है वह उचित ही है । किसी कार्य के करने या किसी कार्य का लोप किए जाने के परिणामस्वरूप क्षति कारित होती है तब ऐसा करना उस व्यक्ति द्वारा की गई उपेक्षा की कोटि में आएगा जिसके विरुद्ध वाद किया गया है । उपेक्षा के आवश्यक संघटक तीन हैं जो इस प्रकार हैं –

'कर्तव्य', 'भंग' और 'परिणामस्वरूप नुकसान' ।

(2) चिकित्सीय व्यवसाय के संदर्भ में उपेक्षा साबित करने के लिए गहराई से विचार किया जाना आवश्यक है । एक व्यवसायी विशेषकर चिकित्सक द्वारा कारित किए गए उतावलेपन या उपेक्षा को समझने के लिए कुछ अतिरिक्त बातों

पर भी विचार किया जाना चाहिए । उपजीविका संबंधी उपेक्षा व्यवसायिक उपेक्षा से भिन्न होती है । निगरानी में आम चूक, निर्णय लेने में हुई त्रुटि या किसी दुर्घटना को चिकित्सा व्यवसायी द्वारा बरती गई उपेक्षा नहीं कहा जा सकता । जब तक कोई चिकित्सक चिकित्सा का वह तरीका अपनाता रहेगा जो उस समय चिकित्सा व्यवसाय के अनुसार स्वीकार्य है, तब तक उस चिकित्सक को मात्र इस कारण से उपेक्षा के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता कि उसने उस समय उपलब्ध और बेहतर विकल्प का प्रयोग नहीं किया था या मात्र इस आधार पर उस चिकित्सक को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है कि उसने चिकित्सा का वह तरीका अपनाया जो और अधिक निपुण चिकित्सक नहीं अपनाता । सावधानीपूर्वक कार्य करने में असफल होने पर इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि क्या वे सावधानियां बरती गई हैं जिनका प्रयोग किया जाना एक सामान्य व्यक्ति की दृष्टि से पर्याप्त हो । किसी विशेष या साधारण सावधानी का प्रयोग न किए जाने से यदि कोई विशेष दुर्घटना रुक सकती थी, तब ऐसी स्थिति को अभिकथित उपेक्षा का निर्धारण करने के लिए सावधानी बरतने का मानक नहीं कहा जा सकता । इसी प्रकार, अपनाए गए चिकित्सा उपचार का निर्धारण करने के संबंध में विचारण के दिन नहीं अपितु घटना के समय उपलब्ध ज्ञान के आलोक में तय किया जाना चाहिए । इसी प्रकार, जब उपेक्षा का आरोप किसी विशेष उपकरण का प्रयोग न किए जाने के लिए विरचित किया जाता है तब वह आरोप चलने योग्य नहीं होगा यदि वह उपकरण आमतौर पर किसी एक समय पर उपलब्ध न हो पाता हो (अर्थात् उस समय जब घटना घटित हुई है) और उस उपकरण का प्रयोग किए जाने के लिए सुझाव दिया गया हो ।

(3) किसी चिकित्सा व्यवसायी को दो में से एक निष्कर्ष के आधार पर जिम्मेदार ठहराया जा सकता है : या तो उसके पास ऐसी अनिवार्य कुशलता नहीं है जिसके होने का उसने दावा किया हुआ है, या उसने उपचार में उस युक्तियुक्त सक्षमता का प्रयोग नहीं किया है जो उसके पास है । आरोपित वह व्यक्ति उस समय उपेक्षावान था या नहीं, इसे निर्धारित

करने के लिए जिस मानक का प्रयोग किया जाता है वह ऐसा होना चाहिए जिसे सामान्य सक्षम व्यक्ति भी सामान्य कुशलता के साथ अपने व्यवसाय में अपनाता है । यह प्रत्येक व्यवसायी के लिए संभव नहीं है कि उसकी दक्षता उच्च कोटि की हो या चिकित्सा के जिस क्षेत्र में वह व्यवसाय करता है उसमें उसका कौशल उच्च कोटि का हो । एक अत्यंत कौशलवान व्यवसायी में अपेक्षाकृत बेहतर गुण हो सकते हैं किंतु उन्हें, उपेक्षा के अभ्यारोपण के आधार पर चल रही उस व्यवसायी की कार्यकुशलता को निर्धारित करने का मानदंड नहीं माना जा सकता ।

(4) बोलम **बनाम** फ्रायर्न हास्पिटल मैनेजमेन्ट कमेटी [(1957) 1 डब्ल्यू. एल. आर. 582, पृष्ठ 586] में अधिकथित चिकित्सा संबंधी उपेक्षा को निर्धारित करने के लिए जिस कसौटी का प्रयोग किया गया है, वह भारत में पूरी तरह लागू होती है ।

(5) उपेक्षा का न्यायशास्त्र संबंधी सिद्धांत सिविल और दांडिक विधि में अलग-अलग है । सिविल विधि में जिसे उपेक्षा कहा जाता है, आवश्यक नहीं है कि दांडिक विधि में उसे उपेक्षा माना जाए । उपेक्षा को अपराध की कोटि में लाने के लिए आपराधिक मनःस्थिति का होना आवश्यक है । आपराधिक उपेक्षा की श्रेणी में किसी अपराध को लाने के लिए उपेक्षा की कोटि और अधिक घोर होनी चाहिए अर्थात् अत्यंत गंभीर होनी चाहिए । ऐसी उपेक्षा जो न तो घोर है और न ही उच्चतर कोटि की है, सिविल विधि के अधीन कार्यवाही किए जाने का आधार तो बन सकती है किन्तु उसके आधार पर अभियोजन नहीं किया जा सकता ।

(6) भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 304क के अधीन 'घोर' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है, फिर भी यह सुस्थापित है कि दांडिक विधि में उपेक्षा या अनवधानता इतनी उच्च कोटि की होनी चाहिए कि उसे 'घोर' कहा जा सके । 'उतावलेपन या उपेक्षापूर्ण कार्य' अभिव्यक्ति, जैसा कि दंड संहिता की धारा 304क में उल्लेख किया गया है, को 'घोर' शब्द के साथ पढ़ा जाना चाहिए ।

(7) दांडिक विधि के अधीन किसी चिकित्सा व्यवसायी को उपेक्षा के लिए अभियोजित करने हेतु यह दर्शित किया जाना चाहिए कि उसने कुछ ऐसा कृत्य किया है या वह कुछ ऐसा करने में असफल रहा है जो वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में कोई भी चिकित्सा व्यवसायी अपनी सामान्य समझ-बूझ और प्रज्ञा से ऐसा न करता या करने में असफल न रहता । अभियुक्त चिकित्सक द्वारा जो जोखिम उठाया गया है वह ऐसी प्रकृति का होना चाहिए कि परिणामस्वरूप जो क्षति कारित हुई है वह उस तरीके से रोकी ही नहीं जा सकती थी ।

(8) 'स्वयं प्रमाण' साक्ष्य का ऐसा एकमात्र सिद्धांत है जिसका प्रयोग सिविल विधि में किया जाता है विशेषकर अपकृत्य के मामलों में और यह उपेक्षा से संबंधित मामलों में सबूत के भार को विनिश्चित करने में सहायक होता है । इसका प्रयोग दांडिक विधि के अन्तर्गत आने वाली उपेक्षा के दायित्व को स्वतः निर्धारित करने के लिए, नहीं किया जा सकता । आपराधिक उपेक्षा के लिए किए जा रहे विचारण के मामले में यदि 'स्वयं प्रमाण' का सिद्धांत लागू किया जाता है तो वह सीमित रूप से ही किया जाता है ।"

9. **जैकब मैथ्यू** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित विधि को लागू करते हुए हमारा यह मत है कि यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें अपीलार्थी का विचारण किया जाए, विशेषकर ऐसी स्थिति में जब 20 वर्ष का समय पहले ही बीत चुका हो । अपीलार्थी के विरुद्ध मात्र यह अभिकथन किया गया है कि वह रोगी को छोड़कर चली गई थी । हमें यह याद है कि अपीलार्थी काल पर बुलाए जाने वाले चिकित्सक के रूप में ड्यूटी पर थी । वह अस्पताल में तब आई जब उसे बुलाया गया और उसने रोगी की चिकित्सा परीक्षा की । इस चिकित्सक के निर्णय के अनुसार रोगी के शरीर में कोई भी रक्तस्राव नहीं हो रहा था और न ही उसे कोई क्षति पहुंची हुई थी, अतः, चिकित्सक ने यह सुझाव दिया कि किसी काय चिकित्सक को बुलाया जाए । इसके पश्चात्, अपीलार्थी लगभग 11 बजे अपराह्न में अस्पताल से चली गई । सत्य यह है कि उसने काय चिकित्सक के आने की प्रतीक्षा नहीं की किंतु यह उपधारित किया जा सकता है कि अपीलार्थी को यह प्रत्याशा थी कि काय चिकित्सक शीघ्र ही आ जाएगा । यह अपीलार्थी के आकलन में त्रुटि हो सकती है किंतु इसे दंड संहिता की धारा

304क के अधीन अनुध्यात उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण कार्य निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । किसी भी पक्षकार ने यह नहीं कहा है कि ड्यूटी पर तैनात नर्सिंग स्टाफ द्वारा अपीलार्थी को पुनः बुलाया गया था । यदि रोगी की दशा 11 बजे अपराह्न से 5 बजे पूर्वाह्न के बीच और अधिक बिगड़ गई थी तब नर्सिंग स्टाफ अपीलार्थी को पुनः बुला सकता था किंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया । अगले दिन प्रातःकाल आपातकालीन ड्यूटी पर तैनात चिकित्सक अर्थात् डा. मोहोद ने रोगी की चिकित्सा परीक्षा की किंतु दुर्भाग्यवश उसकी मृत्यु हो गई ।

10. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलार्थी आपराधिक उपेक्षा की दोषी है । बहुत से बहुत इसे अपीलार्थी के आकलन की त्रुटि कहा जा सकता है ।

11. उपरोक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए हमारा यह मत है कि दंड संहिता की धारा 304क के अधीन अनुध्यात उतावलेपन और उपेक्षा का कृत्य कारित किए जाने का कोई भी मामला अपीलार्थी के विरुद्ध नहीं बनता है । उसका मामला डा. मोहोद के मामले जैसा है जिसे उन्मोचित किया गया है । तद्नुसार, हम इस अपील को मंजूर करते हैं, 2012 की दांडिक अपील सं. 354 में मुंबई उच्च न्यायालय की नागपुर न्यायपीठ के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा तारीख 18 जून, 2014 को पारित किए गए निर्णय को अपास्त करते हैं और 1997 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 317 के आधार पर संस्थित किए गए आपराधिक मामला सं. 310/1999 वाले मामले में न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी, न्यायालय सं. 6, अमरावती द्वारा तारीख 28 फरवरी, 2001 को पारित आदेश द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध संस्थित की गई दांडिक कार्यवाहियां अभिखंडित की जाती हैं । यदि कोई आवेदन लंबित है तो उसका भी निपटारा इसी के साथ किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

अस.

सुरैन सिंह

बनाम

पंजाब राज्य

10 अप्रैल, 2017

न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी और न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 300 – हत्या – अचानक हुई लड़ाई में मृत्यु कारित किया जाना – धारा 302 के अधीन दोषसिद्धि – मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से यह साबित होने पर कि पक्षकारों के बीच अचानक हुई लड़ाई में अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा एकदम अपनी कृपाण निकालकर मृतकों को पहुंचाई गई क्षतियों के परिणामस्वरूप उनकी मृत्यु हुई, इससे यह साबित होता है कि हमला पूर्वचिंतन और मृत्यु कारित करने के आशय के बिना आवेश की तीव्रता में किया गया था और अभियुक्त द्वारा कोई असम्यक् लाभ नहीं लेने और अप्रायिक या क्रूरतापूर्ण रीति में कार्य नहीं करने के कारण उसे धारा 300 के अपवाद-4 का फायदा लागू होता है और धारा 304 भाग-2 के अधीन दोषसिद्ध करना उचित होगा ।

शिकायतकर्ता और उसके नातेदारों तथा अभियुक्त व्यक्तियों के बीच उनके खेतों की सिंचाई की अपनी-अपनी बारी के संबंध में विवाद था । इस बात को लेकर पहले भी एक-दूसरे पर हमला करने की घटनाएं हो चुकी थीं । इन परिस्थितियों में, दोनों पक्षकार कार्यपालक मजिस्ट्रेट, फरीदकोट के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 107/151 के अधीन कार्यवाहियों का सामना कर रहे थे । दोनों पक्षकार अपने-अपने नातेदारों के साथ कार्यपालक मजिस्ट्रेट, फरीदकोट के न्यायालय में आए हुए थे । अभियुक्त-अपीलार्थी ने दूसरे पक्ष के एक नातेदार की वहां मौजूदगी को लेकर आक्षेप किया जो कि कार्यवाहियों में पक्षकार नहीं था । इस बात को लेकर दोनों पक्ष झगड़ने लगे और अपीलार्थी-अभियुक्त ने अपनी कृपाण निकाली और एक व्यक्ति पर प्रहार किया । जब शिकायतकर्ता पक्षकार ने अपीलार्थी-अभियुक्त को रोकने की कोशिश की तो उसने अन्य व्यक्ति पर कृपाण से एक प्रहार किया । उसने हरबंस सिंह नामक व्यक्ति (जिसकी मृत्यु हो गई है) पर भी कृपाण से हमला किया । दर्शन सिंह ने भी अपनी कृपाण निकाली और संता सिंह (जिसकी मृत्यु हो गई है) पर प्रहार करने

लगा । क्षतिग्रस्त व्यक्तियों को अस्पताल ले जाया गया, जहां संता सिंह और हरबंस सिंह की उन्हें पहुंची क्षतियों के कारण मृत्यु हो गई । शिकायतकर्ता द्वारा पुलिस थाना, फरीदकोट में भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 307, 324, 326, 148 और 149 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत कराई गई । आरोप पत्र फाइल होने पर मामले को सेशन न्यायालय के सुपुर्द किया गया । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने अपीलार्थी-अभियुक्त को हरबंस सिंह और संता सिंह की हत्या करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 307 और 324 के अधीन दोषसिद्ध किया और उसे जुर्माने सहित कठोर आजीवन कारावास भोगने का दंडादेश दिया । अभियुक्त-अपीलार्थी ने व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने अपीलार्थी-अभियुक्त की अपील भागत: मंजूर की और हरबंस सिंह की हत्या के संबंध में भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन, सुखचैन सिंह को क्षतियां पहुंचाने के संबंध में भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन और भजन सिंह तथा मंदर सिंह को क्षतियां कारित करने के संबंध में भारतीय दंड संहिता की धारा 324 के अधीन दोषसिद्धि और दंडादेश को कायम रखा और उसे संता सिंह की हत्या करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप से दोषमुक्त कर दिया । अपीलार्थी-अभियुक्त ने उच्च न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत के माध्यम से अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रस्तुत मामले में, अभिलेख की सामग्री से यह स्पष्ट है कि जिन गुटों के अभियुक्त और मृतक थे उन परस्पर विरोधी गुटों के बीच कटु दुश्मनी थी । इन गुटों के बीच दांडिक मुकदमेबाजी चल रही थी । अभिलेख की सामग्री से यह भी साबित होता है कि हमला पूर्व-चिंतन के बिना किया गया था और पूर्व-नियोजित नहीं था । दोनों पक्ष सुसंगत समय पर संहिता की धारा 107/151 के अधीन कार्यवाहियों के संबंध में कार्यपालक मजिस्ट्रेट, फरीदकोट के न्यायालय में मौजूद थे । जब अपीलार्थी-अभियुक्त ने विरोधी पक्ष के एक सदस्य की मौजूदगी पर आक्षेप किया तो पक्षकारों के बीच हाथापाई आरंभ हो गई और इसकी परिणति दो व्यक्तियों की मृत्यु से हुई । अपीलार्थी-अभियुक्त के इस आचरण से कि उसने एकदम अपनी कृपाण निकाली और विरोधी पक्ष पर प्रहार करने लगा, यह साबित होता है कि हमला पूर्वचिंतन के साथ नहीं किया गया था और यह हमला क्षणिक आवेश में मृत्यु कारित करने के आशय के बिना किया गया था । अचानक

लड़ाई का अवसर न केवल अचानक होना आवश्यक है अपितु जिस पक्ष पर हमला किया गया, वह कम से कम हमला प्रारंभ होने पर प्रतिरक्षा की दृष्टि से समान स्तर पर होना चाहिए । पक्षकारों के बीच हुई लड़ाई में प्रयुक्त किया गया आयुध "कृपाण" है जिसे "अमृतधारी सिखों" द्वारा आध्यात्मिक हथियार के रूप में प्रयुक्त किया जाता है । वर्तमान मामले में, अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा प्रयुक्त की गई कृपाण एक छोटी कृपाण थी । यह पता लगाने के लिए कि क्या हथियार या प्रतिकार की रीति क्रूरतापूर्ण और खतरनाक प्रकृति की थी, यह बात डाक्टर, जिसने मृतक के शव की शव-परीक्षा की थी, के इस अभिसाक्ष्य से स्पष्ट है कि कृपाण घोंपने के घाव छाती की दाईं तरफ तथा उदर के पीछे मौजूद थे जिससे यह विवक्षित है कि अपीलार्थी-अभियुक्त ने क्षणिक आवेश में कृपाण का प्रयोग करके क्षतियां कारित कीं, हालांकि मृतक के शरीर के महत्वपूर्ण अंगों पर कारित नहीं कीं अपितु उसने मृतक को जो कृपाण घोंपी थी वह घातक साबित हुई । अभियुक्त द्वारा आशयित क्षति और उसके द्वारा वास्तव में पहुंचाई गई क्षति मृत्यु कारित करने के लिए प्रकृति के मामूली अनुक्रम में पर्याप्त है या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर अवधारित किया जाना चाहिए । प्रस्तुत मामले में, जो क्षतियां कारित की गई थीं वे एक छोटी कृपाण से वार करने के परिणामस्वरूप कारित हुई थीं और यह उपधारणा नहीं की जा सकती है कि अभियुक्त का आशय पहुंचाई गई क्षतियां कारित करने का ही था । घटना के दौरान कारित किए गए घावों की संख्या निर्णायक बात नहीं है अपितु महत्वपूर्ण यह है कि घटना अचानक और पूर्वचिंतन के बिना होनी चाहिए और अपराधी ने गुस्से की तीव्रता में कार्य किया हो । निस्संदेह, अपराधी ने असम्यक् लाभ न लिया हो या क्रूरतापूर्ण रीति में कार्य न किया हो । अभिलेख की सामग्री से यह स्पष्ट है कि घटना अचानक हुई लड़ाई में घटित हुई थी और इस न्यायालय की यह राय है कि अपीलार्थी-अभियुक्त ने कोई असम्यक् लाभ नहीं लिया था या क्रूरतापूर्ण रीति में कार्य नहीं किया था । अभिलेख की सामग्री से यह स्पष्ट है कि घटना अचानक हुई लड़ाई में घटित हुई थी और इस न्यायालय की यह राय है कि अपीलार्थी-अभियुक्त ने कोई असम्यक् लाभ नहीं लिया था या क्रूरतापूर्ण रीति में कार्य नहीं किया था । कोई व्यक्ति जहां अचानक झगड़ा होने पर क्षणिक आवेश में ऐसा आयुध उठा लेता जो उसके समीपस्थ है और क्षतियां कारित कर देता है और जिनमें से एक क्षति घातक साबित होती है तो वह इस अपवाद के फायदे का हकदार होगा बशर्ते उसने क्रूरतापूर्वक कार्य न किया हो । अतः यदि

आशय और ज्ञान रहा है तो वह धारा 304 भाग-1 के अधीन का मामला होगा और यदि यह केवल ज्ञान का मामला है और आशय नहीं रहा है तो वह धारा 304 भाग-2 के अंतर्गत आएगा । इस न्यायालय का यह मत है कि वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता है कि जब अपीलार्थी-अभियुक्त ने प्रश्नगत कार्य कारित किया था तो उसका मृतक की मृत्यु कारित करने का कोई आशय था । घटना गंभीर और अचानक प्रकोपन के कारण घटी थी और इसलिए अभियुक्त भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद-4 के फायदे का हकदार है । अतः प्रस्तुत मामले की संपूर्ण तथ्यात्मक पृष्ठभूमि, अभिलेख पर के विधिक साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् और इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधिक सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि अपीलार्थी-अभियुक्त का कार्य एक क्रूरतापूर्ण कार्य नहीं था और अभियुक्त ने मृतक का असम्यक् लाभ नहीं लिया था । आवेश की तीव्रता में हाथापाई हुई थी और भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद-4 के अधीन की सभी अपेक्षाओं का समाधान किया गया है । इसलिए तथ्यात्मक स्थिति में भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद-4 का फायदा लागू होता है और अपीलार्थी-अभियुक्त इस फायदे का हकदार है । इस प्रकार, तथ्यात्मक पृष्ठभूमि और विधिक स्थिति पर विचार करते हुए अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि अपीलार्थी-अभियुक्त की समुचित दोषसिद्धि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के बजाय धारा 304 भाग-2 के अधीन होगी । इसलिए दस वर्ष के कारावास के दंडादेश से न्याय की पूर्ति हो जाएगी । (पैरा 14, 15, 16, 17 और 18)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2012]	(2012) 13 एस. सी. सी. 663 : **बुधी सिंह** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य** ;	9
[1993]	(1993) 4 एस. सी. सी. 238 : **कीकर सिंह** बनाम **राजस्थान राज्य** ;	10
[1977]	[1977] 3 उम. नि. प. 1104 = (1976) 4 एस. सी. सी. 382 : **आंध्र प्रदेश राज्य** बनाम **रायवरपू पुन्नय्या और एक अन्य** ।	8

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2009 की दांडिक अपील सं. 2284.

1998 की दांडिक अपील सं. 209 (खंड न्यायपीठ) में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ के तारीख 2 सितंबर, 2008 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

हाजिर होने वाले पक्षकारों की ओर से सर्वश्री अनुपम लाल दास, रक्तिम गोगोई, मनुज नागरथ, कार्तिकेय सिंह, अनिरुद्ध सिंह, साहिल मोंगा, यादव नरेन्द्र सिंह, एन. गुप्ता, तरुण गुप्ता (सुश्री) एस. जनानी, एस. थांबर, कुलदीप सिंह, बी. मधुकर, ओ. के. खुल्लर और ऋषि मल्होत्रा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल ने दिया ।

न्या. अग्रवाल — यह अपील 1998 की दांडिक अपील सं. 209 (खंड न्यायपीठ) में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ द्वारा तारीख 2 सितंबर, 2008 को पारित किए गए उस निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने 1995 के सेशन मामला सं. 33 में अपर सेशन न्यायाधीश, फरीदकोट के न्यायालय द्वारा तारीख 26 मार्च, 1998 को पारित किए गए उस आदेश की पुष्टि की, जिसमें इस अपील में अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे इसमें आगे संक्षेप में "भारतीय दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 302, 307 और 324 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और जुर्माने सहित आजीवन कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया था ।

2. **संक्षिप्त तथ्य**

(क) संक्षेप में अभियोजन का वृत्तांत यह है कि एक तरफ शिकायतकर्ता-अमरीक सिंह और उसके नातेदारों तथा दूसरी तरफ अभियुक्त व्यक्तियों के बीच उनके खेतों की सिंचाई की अपनी-अपनी बारी के संबंध में विवाद था । इस बात को लेकर पहले भी एक-दूसरे पर हमला करने की घटनाएं हो चुकी थीं । इन परिस्थितियों में, दोनों पक्षकार कार्यपालक मजिस्ट्रेट, फरीदकोट के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे इसमें आगे संक्षेप में "संहिता" कहा गया है) की धारा 107/151 के अधीन कार्यवाहियों का सामना कर रहे थे ।

(ख) तारीख 17 फरवरी, 1995 को जब दोनों पक्षकार कार्यपालक मजिस्ट्रेट, फरीदकोट के न्यायालय में आए थे तब शिकायतकर्ता (अभि. सा. 1) अपने परिवार के सदस्यों, अर्थात् राज सिंह (अभि. सा. 3), हरबंस सिंह (जिसकी मृत्यु हो गई है), सुखचैन सिंह (अभि. सा. 2), मंदर सिंह, संता सिंह (जिसकी मृत्यु हो गई है), गुरसेवक सिंह, बंता सिंह और अन्य के साथ न्यायालय परिसर में मौजूद था, जबकि अभियुक्त सुरैन सिंह (अपीलार्थी-अभियुक्त) भी झंडा सिंह, जसमैल सिंह, दर्शन सिंह, पाल सिंह, बुटा सिंह के साथ न्यायालय में कार्यवाहियों में हाजिर होने के लिए आया था ।

(ग) लगभग 11.00 बजे पूर्वाह्न में दोनों पक्ष झगड़ने लगे और कहा-सुनी हुई क्योंकि सुरैन सिंह ने भजन सिंह की मौजूदगी पर आक्षेप किया जो कि अमरीक सिंह का नातेदार था और कार्यवाहियों में पक्षकार नहीं था । सुरैन सिंह, अपीलार्थी-अभियुक्त ने अपनी कृपाण निकाली और भजन सिंह पर एक प्रहार किया । जब शिकायतकर्ता पक्षकार ने अपीलार्थी-अभियुक्त को रोकने की कोशिश की तो उसने मंदर सिंह पर कृपाण से एक प्रहार किया । उसने हरबंस सिंह (जिसकी मृत्यु हो गई है) पर भी कृपाण से हमला किया । दर्शन सिंह ने भी अपनी कृपाण निकाली और संता सिंह (जिसकी मृत्यु हो गई है) पर प्रहार करने लगा । क्षतिग्रस्त व्यक्तियों को गुरु गोबिंद सिंह चिकित्सा अस्पताल, फरीदकोट ले जाया गया, जहां संता सिंह और हरबंस सिंह की उन्हें पहुंची क्षतियों के कारण मृत्यु हो गई ।

(छ) शिकायतकर्ता द्वारा पुलिस थाना, फरीदकोट में भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 307, 324, 326, 148 और 149 के अधीन तारीख 17 फरवरी, 1995 को एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 14 रजिस्ट्रीकृत कराई गई और मामले को 1995 के सेशन मामला सं. 33 के रूप में सेशन न्यायालय के सुपुर्द किया गया ।

(ङ) विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने तारीख 26 मार्च, 1998 के आदेश द्वारा अपीलार्थी-अभियुक्त को हरबंस सिंह और संता सिंह की हत्या करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 307 और 324 के अधीन दोषसिद्ध किया और उसे जुर्माने सहित कठोर आजीवन कारावास भोगने का दंडादेश दिया । अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 324 के अधीन अपराध के लिए भी एक वर्ष का कठोर कारावास भोगने का

दंडादेश दिया और यह निदेश दिया कि सभी दंडादेश साथ-साथ भोगे जाएंगे । चूंकि वर्तमान मामले में अन्य अभियुक्तों के विरुद्ध पारित दोषसिद्धि और दंडादेश से हमारा सरोकार नहीं है, इसलिए हम उन्हें निर्दिष्ट नहीं कर रहे हैं ।

(च) अपीलार्थी ने तारीख 26 मार्च, 1998 के आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष अपील (1998 की दांडिक अपील सं. 209-डी) फाइल की । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने तारीख 2 सितंबर, 2008 के आदेश द्वारा अपीलार्थी-अभियुक्त की अपील भागत: मंजूर की और हरबंस सिंह की हत्या के संबंध में भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन, सुखचैन सिंह को क्षतियां पहुंचाने के संबंध में भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन और भजन सिंह तथा मंदर सिंह को क्षतियां कारित करने के संबंध में भारतीय दंड संहिता की धारा 324 के अधीन दोषसिद्धि और दंडादेश को कायम रखा और उसे संता सिंह की हत्या करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप से दोषमुक्त कर दिया ।

(छ) अपीलार्थी-अभियुक्त ने तारीख 2 सितंबर, 2008 के आदेश से व्यथित होकर इस न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत के माध्यम से यह अपील फाइल की है ।

3. पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को सुना और अभिलेख पर की सामग्री का परिशीलन किया ।

4. इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए एकमात्र मुद्दा यह है कि क्या अपीलार्थी-अभियुक्त का भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के बजाय धारा 304 भाग-2 के अधीन दोषसिद्धि का मामला बनता है या नहीं ?

5. चूंकि प्रस्तुत मामले में विचार करने के लिए मुद्दा अति सीमित है, इसलिए सभी तथ्यात्मक ब्यौरों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है बल्कि उन तथ्यों पर विचार करने की आवश्यकता है जिनका इस अपील से सरोकार है ।

6. आगे अग्रसर होने से पूर्व धारा 300 को उद्धृत करना सुसंगत है, जो निम्नलिखित प्रकार से है :–

> "300. **हत्या** – एतस्मिन् पश्चात् अपवादित दशाओं को छोड़कर आपराधिक मानव वध हत्या है, यदि वह कार्य, जिसके द्वारा मृत्यु

कारित की गई हो, मृत्यु कारित करने के आशय से किया गया हो, अथवा

दूसरा – यदि वह ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से किया गया हो जिससे अपराधी जानता हो कि उस व्यक्ति की मृत्यु कारित करना संभाव्य है जिसको वह अपहानि कारित की गई है, अथवा

तीसरा – यदि वह किसी व्यक्ति को शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से किया गया हो और वह शारीरिक क्षति, जिसके कारित करने का आशय हो, प्रकृति के मामूली अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त हो, अथवा

चौथा – यदि कार्य करने वाला व्यक्ति यह जानता हो कि वह कार्य इतना आसन्न संकट है कि पूरी अधिसंभाव्यता है कि वह मृत्यु कारित कर ही देगा या ऐसी शारीरिक क्षति कारित कर ही देगा जिससे मृत्यु कारित होना संभाव्य है और वह मृत्यु कारित करने या पूर्वोक्त रूप की क्षति कारित करने की जोखिम उठाने के लिए किसी प्रति हेतु के बिना ऐसा कार्य करे ।

अपवाद-1 – **आपराधिक मानव वध कब हत्या नहीं है** – आपराधिक मानव वध हत्या नहीं है, यदि अपराधी उस समय जब कि वह गंभीर और अचानक प्रकोपन से आत्म संयम की शक्ति से वंचित हो, उस व्यक्ति की, जिसने कि वह प्रकोपन दिया था, मृत्यु कारित करे या किसी अन्य व्यक्ति की मृत्यु भूल या दुर्घटनावश कारित करे ।

* * * *

* * * *

* * * *

अपवाद-4 – आपराधिक मानव वध हत्या नहीं है, यदि वह मानव वध अचानक झगड़ा जनित आवेश की तीव्रता में हुई अचानक लड़ाई में पूर्वचिन्तन बिना और अपराधी द्वारा अनुचित लाभ उठाए बिना या क्रूरतापूर्ण या अप्रायिक रीति से कार्य किए बिना किया गया हो ।

* * * * ।"

7. भारतीय दंड संहिता की धारा 300 का अपवाद-4 किसी पूर्वचिंतन के अभाव में लागू होता है । यह बात इस अपवाद के शब्दों से ही अति

स्पष्ट होती है । इस अपवाद में यह अनुध्यात है कि अचानक झगड़ा जनित आवेश की तीव्रता में अचानक लड़ाई शुरू हुई हो । भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के चौथे अपवाद के अंतर्गत अचानक हुई लड़ाई में किए गए कृत्य आते हैं । उक्त अपवाद प्रकोपन के ऐसे मामले के संबंध में है जो प्रथम अपवाद के अंतर्गत नहीं आता और इस अपवाद के पश्चात् इसे रखना अधिक उचित है । यह अपवाद उसी सिद्धांत पर आधारित है क्योंकि दोनों में ही पूर्वचिंतन का अभाव होता है । किंतु अपवाद-1 के मामले में आत्म संयम से पूरी तरह वंचित हो जाना आता है, जबकि अपवाद-4 के मामले में केवल यह है कि आवेश की तीव्रता होती है जो मनुष्यों की सूझ-बूझ पर पर्दा डाल देती है और उन्हें ऐसे कार्य करने के लिए उकसाती है जो वे अन्यथा नहीं करते । अपवाद-4 में अपवाद-1 जैसा ही प्रकोपन है, किंतु जो क्षति कारित की जाती है वह उस प्रकोपन का प्रत्यक्ष परिणाम नहीं होती है । वास्तव में, अपवाद-4 उन मामलों के संबंध में है, जिनमें इस बात के होते हुए भी कि कोई प्रहार किया गया हो, या विवाद के उत्पन्न होने में कुछ प्रकोपन दिया गया हो या झगड़ा किसी भी रूप में उत्पन्न हुआ हो, तो भी दोषिता के संबंध में दोनों पक्षकारों का पश्चात्वर्ती आचरण उन्हें एक समान स्तर पर रखता है । "अचानक लड़ाई" से विवक्षित है, परस्पर प्रकोपन और एक-दूसरे पर प्रहार । इसके पश्चात्, कारित किए गए मानव वध के लिए एकपक्षीय प्रकोपन का स्पष्ट तौर पर पता नहीं चलता है और न ही ऐसे मामलों में संपूर्ण दोष एक पक्ष पर डाला जा सकता है क्योंकि यदि ऐसा होता तो जो अपवाद अधिक समुचित रूप से लागू होता, वह अपवाद-1 होता । इस अपवाद में लड़ाई के लिए कोई पूर्ववर्ती विचार-विमर्श या निश्चय नहीं है । लड़ाई अचानक होती है, जिसके लिए न्यूनाधिक दोनों पक्षों को उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए । यह हो सकता है कि उनमें से एक पक्ष ने लड़ाई की शुरूआत की हो, किंतु यदि दूसरे पक्ष ने अपने स्वयं के आचरण द्वारा इसे बढ़ाया नहीं होता तो इसने उतना गंभीर मोड़ नहीं लिया होता, जितना इसने लिया । इसमें पारस्परिक प्रकोपन और अतिरेक होता है और प्रत्येक लड़ाई करने वाले का जितना-जितना दोष है उसे संविभाजित करना कठिन है । अपवाद-4 का अवलंब तब लिया जा सकता है यदि मृत्यु (क) पूर्वचिंतन के बिना, (ख) अचानक हुई लड़ाई में, (ग) अपराधियों द्वारा अनुचित लाभ उठाए बिना या क्रूरतापूर्ण या अप्रायिक रीति से कार्य किए बिना कारित की जाती, है और (घ) लड़ाई मर गए व्यक्ति के साथ होनी चाहिए । कोई मामला अपवाद-4 के अंतर्गत लाने के लिए इसमें वर्णित सभी संघटकों का पाया जाना आवश्यक है । यह उल्लेखनीय है कि

भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद-4 में उल्लिखित "लड़ाई" को भारतीय दंड संहिता में परिभाषित नहीं किया गया है । एक हाथ से ताली नहीं बजती । आवेश की तीव्रता के लिए यह अपेक्षित है कि आवेश को सहज होने के लिए कोई समय नहीं मिलना चाहिए और इस मामले में पक्षकार शुरूआत में मौखिक कहा-सुनी के कारण उग्र हो गए थे । लड़ाई दो और अधिक व्यक्तियों के बीच आयुधों सहित या बिना एक संघर्ष है । कोई ऐसा साधारण नियम प्रतिपादित करना संभव नहीं है कि अचानक लड़ाई किसे माना जाएगा । यह एक तथ्य का प्रश्न है और क्या झगड़ा अचानक हुआ है या नहीं, आवश्यक रूप से प्रत्येक मामले के साबित तथ्यों पर निर्भर करेगा । अपवाद-4 लागू होने के लिए, यह दर्शित करना पर्याप्त नहीं है कि अचानक झगड़ा हुआ था और कोई पूर्वचिंतन नहीं था । यह भी दर्शित किया जाना चाहिए कि अपराधी ने असम्यक् लाभ नहीं उठाया था या क्रूरतापूर्ण या प्रायिक रीति में कार्य नहीं किया था । इस उपबंध में प्रयुक्त "असम्यक् लाभ" अभिव्यक्ति से अभिप्रेत "अनुचित लाभ" है ।

8. **आंध्र प्रदेश राज्य** बनाम **रायवरपू पुन्नय्या और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने धारा 302 और धारा 304 के बीच विभेद करते हुए निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

> "दंड संहिता की स्कीम में आपराधिक मानव वध मुख्य अपराध है और हत्या उसका एक प्रकार है । सब 'हत्याएं' आपराधिक मानव वध होती हैं किन्तु सब आपराधिक मानव वध हत्या नहीं होते । मौटे तौर पर आपराधिक मानव वध में से हत्या के कुछ विशेष लक्षणों को छोड़ देने पर वह हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानव वध होता है । दंड नियत करने के प्रयोजनार्थ इस सामान्य अपराध की गंभीरता के अनुपात के अनुसार संहिता में वस्तुत: आपराधिक मानव वध की तीन कोटियां मानी गई हैं । प्रथम वह जिसे कि 'प्रथम कोटि का मानव वध' कहा जा सकता है । यह आपराधिक मानव वध का अत्यधिक गंभीर रूप है जो कि धारा 300 में 'हत्या' के रूप में परिभाषित है । दूसरे को 'द्वितीय कोटि का आपराधिक मानव वध' कहा जा सकता है जो कि धारा 304 के प्रथम भाग के अधीन दंडनीय है । इसके पश्चात् तीसरी कोटि का मानव वध है । यह आपराधिक मानव वध सब से निम्न प्रकार का है और इसके लिए उपबंधित दंड भी तीनों कोटियों के लिए उपबंधित दंडों में सब से कम

---

[1] [1977] 3 उम. नि. प. 1104 = (1976) 4 एस. सी. सी. 382.

है । इस कोटि का आपराधिक मानव वध धारा 304 के द्वितीय भाग के अधीन दंडनीय है ।

21. उपरोक्त संक्षिप्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि जब कभी किसी न्यायालय को इस प्रश्न पर विचार करना होता है कि क्या कोई अपराध मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए 'हत्या' है या 'हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानव वध' तो उसके लिए इस समस्या पर तीन प्रक्रमों पर विचार करना सुविधाजनक होगा । प्रथम प्रक्रम पर विचारित किए जाने वाला प्रश्न यह होगा कि क्या अभियुक्त ने कोई ऐसा कार्य किया है जिसके द्वारा उसने किसी अन्य व्यक्ति की मृत्यु कारित कर दी है । अभियुक्त के कार्य और मृत्यु के बीच ऐसे आकस्मिक संबंध का सबूत इस बात पर विचार करने के लिए द्वितीय प्रक्रम की ओर ले जाता है कि क्या अभियुक्त का वह कार्य धारा 299 में यथापरिभाषित 'आपराधिक मानव वध' की कोटि में आता है । यदि इस प्रश्न का उत्तर प्रथमदृष्ट्या सकारात्मक पाया जाता है तो दंड संहिता की धारा 300 के प्रवर्तन पर विचार करने का प्रक्रम आ जाता है । इस प्रक्रम पर न्यायालय को इस बात का अवधारण करना चाहिए कि क्या अभियोजन पक्ष द्वारा साबित तथ्य मामले को धारा 300 में अन्तर्विष्ट 'हत्या' की परिभाषा के चार खण्डों में से किसी एक की व्याप्ति के अन्तर्गत ले आते हैं । यदि इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक हो तो वह अपराध 'हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानव वध' होगा जो कि इस बात पर निर्भर करते हुए कि क्या क्रमशः धारा 299 का खण्ड (2) या खण्ड (3) लागू होता है, धारा 304 के प्रथम या द्वितीय भाग के अधीन दंडनीय होगा । यदि यह प्रश्न सकारात्मक पाया जाता है किन्तु मामला धारा 300 में प्रगणित अपवादों में किसी के अधीन आ जाता है तो अपराध तब भी 'हत्या की कोटि में न आने वाला मानव वध' होगा जो कि दंड संहिता की धारा 304 के प्रथम भाग के अधीन दंडनीय होगा ।"

9. **बुधी सिंह** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

"18. अचानक और गंभीर प्रकोपन के सिद्धांत का ऐसा कठोर अर्थान्वयन नहीं किया जा सकता जिससे सर्वव्यापी प्रयोग का कोई

[1] (2012) 13 एस. सी. सी. 663.

सिद्धांत निकल सके या उसे ऐसा कहा जा सके । यह बात सदैव प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगी । इस सिद्धांत को लागू करते समय न्यायालय की प्राथमिक बाध्यता यह है कि एक युक्तियुक्त प्रज्ञा के व्यक्ति के दृष्टिकोण से इस बात की परीक्षा करे कि यदि उसे ऐसा अचानक और गंभीर प्रकोपन दिया गया होता तो वह क्या करता, ताकि युक्तियुक्त रूप से निष्कर्ष निकाला जा सके कि आपराधिक मानव वध का अपराध करना संभाव्य था और तथ्यों के अनुसार, यह हत्या की कोटि में न आने वाला आपराधिक मानव वध है । गंभीर और अचानक प्रकोपन के परिणामस्वरूप किए गए अपराध का प्रसामान्यतः यह अर्थ है कि ऐसी परिस्थितियों में स्थित कोई भी व्यक्ति आत्म-नियंत्रण खो सकता है, किंतु अस्थायी तौर पर और वह भी केवल उस प्रकोपन के समय के सामीप्य में । अभियुक्त को प्रकोपन मृतक द्वारा किए गए एक कार्य या कार्यों की शृंखला से दिया जा सकता है, जिसके परिणामस्वरूप क्षति कारित की जाए ।

19. एक अन्य परीक्षण, जो अक्सर लागू किया जाता है, यह है कि हमलावर का व्यवहार ऐसा था जैसा एक युक्तियुक्त व्यक्ति का होता है । अचानक और गंभीर प्रकोपन, जिसके परिणामस्वरूप अचानक और अस्थायी तौर पर आत्म-नियंत्रण खो जाए, तथा ऐसे प्रकोपन के बीच के स्पष्ट विभेद को ध्यान में रखा जाना चाहिए जिससे वास्तव में हत्या करने का आशय प्रेरित हो । ऐसा कार्य मस्तिष्क की उसी हालत की निरंतरता और ऐसे व्यक्ति की हत्या करने के समय पर किया जाना चाहिए । जब यह कार्य पूर्वचिंतन के साथ और हत्या करने के आशय से किया गया हो, तो वह कार्य स्पष्ट तौर पर हत्या की कोटि में न आने वाले आपराधिक मानव वध की परिधि से बाहर हो जाएगा ..... ।"

10. **कीकर सिंह** बनाम **राजस्थान राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

"8. काउंसेल ने मामले को अपवाद-4 के अंतर्गत लाने का प्रयत्न किया । इस अपवाद को लागू करने के लिए इसमें प्रगणित सभी शर्तों का समाधान किया जाना आवश्यक है । (1) कार्य पूर्व-चिंतन के बिना आवेश की तीव्रता में अचानक हुई लड़ाई में ; (2) अचानक झगड़ा होने पर ; (3) अपराधी द्वारा असम्यक् लाभ लिए

[1] (1993) 4 एस. सी. सी. 238.

बिना कारित किया गया हो, और (4) अभियुक्त ने क्रूरतापूर्ण या अप्रायिक रीति में कार्य न किया हो । इसलिए, आपस में हाथापाई होना या एक-दूसरे पर प्रहारों का किया जाना आवश्यक है और प्रथम प्रहार, या प्रकोपन, कितना भी हल्का क्यों न हो, प्रत्येक नया प्रहार एक नया प्रकोपन बन जाता है । रक्त पहले ही गर्म होता है या प्रत्येक पश्चात्वर्ती प्रकार पर गर्म हो जाता है । आवेश की तीव्रता में किसी भी पक्ष द्वारा कोई बात नहीं सुनी जाती है । इसलिए ऐसी वस्तुस्थिति में संघर्ष आरंभ होने पर उनके बीच अलग-अलग दोष की मात्रा का संविभाजन करना कठिन है, किंतु यह संघर्ष अचानक लड़ाई अर्थात् परस्पर कहासुनी के कारण घटित होना चाहिए न कि एकपक्षीय हो । यह मायने नहीं रखता कि झगड़े का कारण, वास्तविक या काल्पनिक, क्या है, या पहले कौन एकत्रित होता है या आक्रमण करता है । प्रहार दूसरे की हत्या या गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त करने के किसी आशय के बिना किया जाना चाहिए । यदि दो व्यक्ति लड़ने लगते हैं और उनमें से एक निहत्था है जबकि दूसरा घातक आयुध का प्रयोग करता है, तो वह व्यक्ति जो ऐसे आयुध का प्रयोग करता है, तो उसे असम्यक् लाभ लेने वाला अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए और उसे अपवाद-4 की हकदारी से इनकार करना चाहिए । यह सही है कि घावों की संख्या कसौटी नहीं है, किंतु अपवाद-4 लागू करते समय अभियुक्त और मृतक द्वारा प्रयुक्त आयुधों के संबंध में उनकी स्थिति और मुकाबले की रीति को ध्यान में रखा जाना चाहिए । जब मृतक निहत्था हो और अभियुक्त के पास आयुध हो और मृतक को ऐसी क्षतियां कारित की जाएं जो घातक साबित हुई हों, तब धारा 300 का अपवाद-4 वर्जित हो जाता है और कारित अपराध हत्या माना जाएगा ।

9. अचानक झगड़े का अवसर केवल अचानक ही नहीं होना चाहिए, अपितु जिस पक्ष पर हमला किया गया वह प्रतिरक्षा के दृष्टिकोण से, कम-से-कम झगड़े की शुरूआत पर समान स्तर पर होना चाहिए । विशिष्ट रूप से, ऐसा वहां होना आवश्यक है, जहां खतरनाक आयुधों से हमला किया जाता है । जहां मृतक निहत्था हो और अचानक झगड़ा होने पर भी अभियुक्त को कोई क्षति कारित नहीं की है, वहां यदि अभियुक्त ने मृतक पर घातक प्रहार किया हो, तो अपवाद-4 लागू नहीं होता है और कारित अपराध धारा 302 के अधीन दंडनीय हत्या का होगा । समान रूप से, अपवाद-4 लागू करने के लिए यह आवश्यक है कि एक-दूसरे पर प्रहार किए जाने चाहिए, भले

ही उनमें से सभी अपने निशाने पर न लगें । भले ही लड़ाई पूर्वचिंतन-रहित और अचानक हो, फिर भी यदि आयुध या प्रतिकार की रीति किए गए अपराध के अत्यधिक अननुपातिक हो और उसकी प्रकृति क्रूरतापूर्ण और खतरनाक हो, तो अभियुक्त की अपवाद-4 के अधीन संरक्षा नहीं की जा सकती है .....।"

11. अब हमें धारा 300 के अपवाद-4 की कसौटी के आधार पर इस मामले के तथ्यों पर यह पता लगाने के लिए विचार करना है कि क्या यह मामला इस अपवाद के अंतर्गत आता है या नहीं । अपीलार्थी-अभियुक्त की ओर से विद्वान् काउंसेल ने सुनवाई के दौरान इस न्यायालय के समक्ष जोरदार रूप से यह दलील दी कि उच्च न्यायालय ने साफ-साफ यह निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि "जो अवश्यम्भावी निष्कर्ष निकाला जा सकता है, वह यह है कि यह अचानक हुई लड़ाई का मामला था जहां पूर्वचिंतन के बिना हमला किया गया था ।" विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि उच्च न्यायालय ने ऐसा अभिनिर्धारित करने के बावजूद अपीलार्थी-अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग-2 के बजाय धारा 302 के अधीन इस आधार पर गलत रूप से दोषसिद्ध किया कि अपीलार्थी-अभियुक्त ने क्रूरतापूर्ण रीति में कार्य किया था और छह व्यक्तियों को क्षतियां और एक व्यक्ति की मृत्यु कारित की थी ।

12. अपीलार्थी-अभियुक्त सुसंगत समय पर कृपाण धारण किए हुए था और उसने इसे निकाला तथा भजन सिंह की छाती पर बाईं तरफ 3 या 4 प्रहार किए । जब दूसरा पक्ष उसके बचाव में आया, तो अपीलार्थी-अभियुक्त ने मंदर सिंह की कमर पर पीछे की ओर एक प्रहार किया । यह भी पाया गया कि अपीलार्थी-अभियुक्त ने अमरीक सिंह-शिकायतकर्ता के बाएं कंधे के पिछली तरफ एक प्रहार किया था तथा उसने सुखचैन सिंह और हरबंस सिंह के दाएं बाजू पर भी कृपाण का प्रयोग करके प्रत्येक पर दो-दो प्रहार किए थे ।

13. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, डा. सरबजीत सिंह संधू (अभि. सा. 4), जिसने हरबंस सिंह के शव की शव-परीक्षा की थी, के कथन को उद्धृत करना सुसंगत है, जो कि निम्नलिखित है :–

"मैंने उसी दिन 4.50 बजे अपराह्न में हरबंस सिंह पुत्र मंदर सिंह, आयु 27 वर्ष, पुरुष, गांव पाखी खुर्द के शव की भी मरणोत्तर परीक्षा की थी, जिसे पुलिस थाना, फरीदकोट शहर के सहायक उप-निरीक्षक सुखदेव सिंह और हैड कांस्टेबल प्रसन्न सिंह, सं. 1432 द्वारा

लाया गया था । शव की शनाख्त बोहर सिंह पुत्र अजमेर सिंह तथा तेज सिंह पुत्र अजमेर सिंह की गई थी । शव की लंबाई 5 फुट 9 इंच थी । यह शव संतुलित रूप से गठित और संतुलित रूप से पोषित एक नवयुवक का था जिसने स्वेटर, शर्ट, जर्सी, पैंट, कच्छा, पगड़ी, छोटी कृपाण पहने हुए थी और काली दाढ़ी थी तथा दाईं कलाई में धातु का बना सफेद कड़ा पहने हुए था । धड़ के पीछे और निचले अंगों पर मृत्यु-पूर्व के बहुत सारे चिह्नत धब्बे वैसे के वैसे मौजूद थे । गर्दन की मांसपेशियों और ऊपरी अंगों में शव-काठिन्य मौजूद था । निचले अंगों में शव-काठिन्य नहीं था (विकसित प्रक्रम पर था), वस्त्र रक्तरंजित थे तथा वस्त्रों के आर-पार छिद्र मौजूद थे । मैंने उसके शरीर पर निम्नलिखित क्षतियां पाईं –

1. छाती की दाईं तरफ कांख से लगभग 22 से. मी. नीचे कक्षीय रेखा में पार्श्व की ओर 3 × 0.5 से. मी. का तिर्यक घाव मौजूद था । यह घाव हड्डी की गहराई तक था ।

2. उदर की पिछली तरफ दाईं ओर, क्षति सं. 1 से 8 से. मी. नीचे और पार्श्व में 2 × 5 से. मी. का अनुप्रस्थ घाव मौजूद था । छानबीन करने पर यह उदर के मध्य तक जा रहा था । दूसरे शब्दों में, अध-त्वचीय ऊत्तक, मांसपेशियों, दायां गुर्दा, उदरावरण और बड़ी आंत को काटते हुए जा रहा था । उदरावरण गुहा में 1000 सी. सी. से ऊपर तरल पदार्थ और थक्केदार रक्त था । पेट में लगभग 150 सी. सी. अध-पचा भोजन था । अन्य सभी अंग स्वस्थ थे ।

सभी क्षतियों की प्रकृति मृत्यु-पूर्व की थी । मेरी राय में इस मामले में मृत्यु का कारण क्षति सं. 2 के परिणामस्वरूप दाएं गुर्दे और बड़ी आंत में रक्तस्राव और सदमा था जो कि प्रकृति के मामूली अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त था ।"

14. प्रस्तुत मामले में, अभिलेख की सामग्री से यह स्पष्ट है कि जिन गुटों के अभियुक्त और मृतक थे उन परस्पर विरोधी गुटों के बीच कटु दुश्मनी थी । इन गुटों के बीच दांडिक मुकदमेबाजी चल रही थी । अभिलेख की सामग्री से यह भी साबित होता है कि हमला पूर्वचिंतन के बिना किया गया था और पूर्व-नियोजित नहीं था । दोनों पक्ष सुसंगत समय पर संहिता की धारा 107/151 के अधीन कार्यवाहियों के संबंध में कार्यपालक मजिस्ट्रेट, फरीदकोट के न्यायालय में मौजूद थे । जब अपीलार्थी-अभियुक्त

ने विरोधी पक्ष के एक सदस्य की मौजूदगी पर आक्षेप किया तो पक्षकारों के बीच हाथापाई आरंभ हो गई और इसकी परिणति दो व्यक्तियों की मृत्यु से हुई । अपीलार्थी-अभियुक्त के इस आचरण से कि उसने एकदम अपनी कृपाण निकाली और विरोधी पक्ष पर प्रहार करने लगा, यह साबित होता है कि हमला पूर्वचिंतन के साथ नहीं किया गया था और यह हमला क्षणिक आवेश में मृत्यु कारित करने के आशय के बिना किया गया था । अचानक लड़ाई का अवसर न केवल अचानक होना आवश्यक है अपितु जिस पक्ष पर हमला किया गया, वह कम से कम हमला प्रारंभ होने पर प्रतिरक्षा की दृष्टि से समान स्तर पर होना चाहिए ।

15. पक्षकारों के बीच हुई लड़ाई में प्रयुक्त किया गया आयुध "कृपाण" है जिसे "अमृतधारी सिखों" द्वारा आध्यात्मिक हथियार के रूप में प्रयुक्त किया जाता है । वर्तमान मामले में, अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा प्रयुक्त की गई कृपाण एक छोटी कृपाण थी । यह पता लगाने के लिए कि क्या हथियार या प्रतिकार की रीति क्रूरतापूर्ण और खतरनाक प्रकृति की थी, यह बात डाक्टर, जिसने मृतक के शव की शव-परीक्षा की थी, के इस अभिसाक्ष्य से स्पष्ट है कि कृपाण घोंपने के घाव छाती की दाईं तरफ तथा उदर के पीछे मौजूद थे जिससे यह विवक्षित है कि अपीलार्थी-अभियुक्त ने क्षणिक आवेश में कृपाण का प्रयोग करके क्षतियां कारित कीं, हालांकि मृतक के शरीर के महत्वपूर्ण अंगों पर कारित नहीं कीं अपितु उसने मृतक को जो कृपाण घोंपी थी वह घातक साबित हुई । अभियुक्त द्वारा आशयित क्षति और उसके द्वारा वास्तव में पहुंचाई गई क्षति मृत्यु कारित करने के लिए प्रकृति के मामूली अनुक्रम में पर्याप्त है या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर अवधारित किया जाना चाहिए । प्रस्तुत मामले में, जो क्षतियां कारित की गई थीं वे एक छोटी कृपाण से वार करने के परिणामस्वरूप कारित हुई थीं और यह उपधारणा नहीं की जा सकती है कि अभियुक्त का आशय पहुंचाई गई क्षतियां कारित करने का ही था । घटना के दौरान कारित किए गए घावों की संख्या निर्णायक बात नहीं है अपितु महत्वपूर्ण यह है कि घटना अचानक और पूर्वचिंतन के बिना होनी चाहिए और अपराधी ने गुस्से की तीव्रता में कार्य किया हो । निस्संदेह, अपराधी ने असम्यक् लाभ न लिया हो या क्रूरतापूर्ण रीति में कार्य न किया हो । अभिलेख की सामग्री से यह स्पष्ट है कि घटना अचानक हुई लड़ाई में घटित हुई थी और हमारी यह राय है कि अपीलार्थी-अभियुक्त ने कोई असम्यक् लाभ नहीं लिया था या क्रूरतापूर्ण रीति में कार्य नहीं किया था । कोई व्यक्ति जहां अचानक झगड़ा होने पर क्षणिक आवेश

में ऐसा आयुध उठा लेता जो उसके समीपस्थ है और क्षतियां कारित कर देता है और जिनमें से एक क्षति घातक साबित होती है तो वह इस अपवाद के फायदे का हकदार होगा बशर्ते उसने क्रूरतापूर्वक कार्य न किया हो ।

16. अतः यदि आशय और ज्ञान रहा है तो वह धारा 304 भाग-1 के अधीन का मामला होगा और यदि यह केवल ज्ञान का मामला है और आशय नहीं रहा है तो वह धारा 304 भाग-2 के अंतर्गत आएगा । हमारा यह मत है कि वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता है कि जब अपीलार्थी-अभियुक्त ने प्रश्नगत कार्य कारित किया था तो उसका मृतक की मृत्यु कारित करने का कोई आशय था । घटना गंभीर और अचानक प्रकोपन के कारण घटी थी और इसलिए अभियुक्त भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद-4 के फायदे का हकदार है ।

17. अतः प्रस्तुत मामले की संपूर्ण तथ्यात्मक पृष्ठभूमि, अभिलेख पर के विधिक साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् और ऊपर निर्दिष्ट मामलों में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधिक सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि अपीलार्थी-अभियुक्त का कार्य एक क्रूरतापूर्ण कार्य नहीं था और अभियुक्त ने मृतक का असम्यक् लाभ नहीं उठाया था । आवेश की तीव्रता में हाथापाई हुई थी और भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद-4 के अधीन की सभी अपेक्षाओं का समाधान किया गया है । इसलिए तथ्यात्मक स्थिति में भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद-4 का फायदा लागू होता है और अपीलार्थी-अभियुक्त इस फायदे का हकदार है ।

18. इस प्रकार, तथ्यात्मक पृष्ठभूमि और ऊपर उपवर्णित विधिक स्थिति पर विचार करते हुए अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि अपीलार्थी-अभियुक्त की समुचित दोषसिद्धि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के बजाय धारा 304 भाग-2 के अधीन होगी । इसलिए दस वर्ष के कारावास के दंडादेश से न्याय की पूर्ति हो जाएगी ।

19. इस अपील का उपर्युक्त निबंधनों के अनुसार निपटारा किया जाता है ।

अपील का निपटारा किया गया ।

जस.

[2017] 4 उम. नि. प. 115

सुधा रेनुकैय्या और अन्य

बनाम

आंध्र प्रदेश राज्य

13 अप्रैल, 2017

न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी और न्यायमूर्ति अशोक भूषण

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 और 149 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – हत्या – सामान्य उद्देश्य – क्षतिग्रस्त और प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों का साक्ष्य – जहां क्षतिग्रस्त साक्षी सहित प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों ने अभियोजन पक्षकथन का पूर्ण समर्थन किया और भिन्न-भिन्न अभियुक्त व्यक्तियों की भूमिकाओं को साबित किया वहां अभियोजन पक्षकथन को मात्र इस आधार पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि यह सामूहिक प्रतिद्वन्द्विता और शत्रुता का मामला है ।

संक्षेप में अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि सभी अभियुक्त और वस्तुतः शिकायतकर्ता वेलालुरु ग्राम के मूल निवासी हैं । दोनों गुट अर्थात् अभियुक्त दल और शिकायतकर्ता दल एक दूसरे पर हमला करते आ रहे हैं और कई दांडिक मामले दोनों गुटों के विरुद्ध दर्ज किए जा चुके हैं । शिकायतकर्ता पक्ष से संबंधित सत्य नारायण नाम के व्यक्ति की हत्या तारीख 7 फरवरी, 2003 को कर दी गई थी जिसके संबंध में अपराध मामला सं. 8/2003 ग्रामीण पुलिस थाना, पोन्नूर में दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 147, 148 और 302 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दर्ज कराया गया । इसके अतिरिक्त नगर पुलिस थाना, पोन्नूर में सोमरोतु तिरुपतिराव, सोमरोतु शिव शंकर राव और अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध, जिनके बारे में उक्त मामले के संबंध में सूदा चीना वीरैया की हत्या किए जाने का अभिकथन किया गया है, और एक अन्य अपराध मामला सं. 35/2003 दर्ज किया गया और उक्त मामले के संबंध में ऊपर नामित दोनों मृतकों तथा अन्य व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया और उन्हें न्यायिक अभिरक्षा में भेज दिया गया । न्यायालय ने उन्हें इस शर्त के साथ जमानत मंजूर की कि वे केवल बापट्ला में ही रहेंगे और बापट्ला पुलिस थाने में प्रतिदिन आकर अपनी उपस्थिति दर्ज कराएंगे तथा सप्ताह में एक बार पोन्नूर न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत होंगे । उपरोक्त मामले के संबंध में,

तारीख 10 अक्तूबर, 2013 को अभि. सा. 1 से अभि. सा. 6 और अभि. सा. 9 के साथ मृतक-1 और मृतक-2 तीन दुपहिया वाहनों से न्यायालय में प्रस्तुत होने के लिए पोन्नूर गए और न्यायालय में प्रस्तुत होने के पश्चात् वे सायंकाल वापस आ रहे थे और उक्त सूचना प्राप्त होने पर, अभियुक्त-2, अभियुक्त-4 से अभियुक्त-6, अभियुक्त-11, अभियुक्त-13 और अभियुक्त-18 ने एक दूसरे के साथ षड्यंत्र रचा और चूंकि अभियुक्त-18 के पास लारी (जिसकी पंजीकरण सं. एडीएम 8373 है) थी, सभी व्यक्ति कुल्हाड़ी, चाकू, सरिए और डंडों जैसे घातक हथियारों के साथ अभियुक्त-18 की लारी में बैठ गए और उस दुपहिया वाहन को टक्कर मारी जिस पर दोनों मृतक और अभि. सा. 5 यात्रा कर रहे थे । दोनों मृतक दुपहिया वाहन से नीचे गिर गए । इसके पश्चात् अभियुक्तों ने उन पर अंधाधुंध हमला किया और उनकी हत्या कर दी तथा अभि. सा. 5 को भी क्षतियां पहुंचाईं और वे सभी घटनास्थल से उसी लारी में बैठकर अपने हथियारों के साथ भाग गए । मृतक सं. 1 की घटनास्थल पर मृत्यु हो गई और अन्य आहतों को अस्पताल भेज दिया गया । अन्य व्यक्ति जो मृतक के दुपहिया वाहन के पीछे-पीछे आ रहे थे, उन्होंने यह घटना देखी थी और पुलिस में रिपोर्ट दर्ज कराई तथा दूसरे मृतक को पोन्नूर अस्पताल भेज दिया गया जहां पर चिकित्सक ने उसे मृत घोषित कर दिया और दूसरे आहत को सरकारी अस्पताल, गुन्तूर भेज दिया गया । यह घटना 4 बजे अपराह्न में घटित हुई थी । तिरुपतिराव अर्थात् मृतक-1 की मृत्यु घटनास्थल पर ही हो गई थी जबकि शिव शंकर राव अर्थात् मृतक-2 और एस. वैंकइयानायडु को तत्काल ही सरकारी अस्पताल, पोन्नूर ले जाया गया था जहां पर शिव शंकर राव की मृत्यु 5.30 बजे अपराह्न से 6 बजे अपराह्न के बीच हो गई थी । वैंकइयानायडु अचेत अवस्था में था, इसलिए चिकित्सक की सलाह के आधार पर उसे सरकारी अस्पताल, गुन्तूर भेज दिया गया । पुलिस सरकारी अस्पताल, पोन्नूर पहुंची और 6 बजे अपराह्न में शिवराम कृष्णय्या का कथन अभिलिखित किया जिसके आधार पर दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 147, 148 और 302 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 57/2003 दर्ज कराई गई । विचारण न्यायालय ने तारीख 24 दिसंबर, 2007 को पारित किए गए अपने आदेश द्वारा अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया था । विचारण न्यायालय ने प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य को निर्दिष्ट करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि उनके साक्ष्य में विरोधाभास और लोप हैं । विचारण न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया कि चिकित्सीय साक्ष्य से कुल्हाड़ी से कारित की गई क्षति का समर्थन नहीं होता है । अभि. सा. 5

की क्षतियों और चिकित्सीय साक्ष्य को निर्दिष्ट करने के पश्चात् विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि यह अभिनिर्धारित करना संभव नहीं है कि ये क्षतियां हसिया जैसे धारदार आयुध से कारित की गई हैं । विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अभियुक्त संदेह का लाभ पाने के आधार पर दोषमुक्ति के हकदार हैं । विचारण न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर, राज्य ने दांडिक अपील सं. 340/2009 फाइल की । सोमरोतु लक्ष्मी साम्राज्यम अर्थात् मृतक शिव शंकर राव की पत्नी ने दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 643/2008 फाइल की । दांडिक अपील और दांडिक पुनरीक्षण आवेदन दोनों की सुनवाई एक साथ की गई और उच्च न्यायालय द्वारा उन्हें स्वीकार किया गया । अभियुक्त-1 से अभियुक्त-3, अभियुक्त-5 से अभियुक्त-7 और अभियुक्त-11 को दंड संहिता की धारा 148 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दोषी पाया और उन्हें दोषसिद्ध करते हुए आजीवन कारावास तथा प्रत्येक पर 500/- रुपए जुर्माने का संदाय अधिरोपित करते हुए दंडादिष्ट किया । अभियुक्त-9 से अभियुक्त-12 की दोषमुक्ति की पुष्टि की गई है । कुछ अभियुक्तों द्वारा ये अपीलें फाइल की गई हैं जिनमें अभियुक्त-1 की मृत्यु हो चुकी है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – उच्च न्यायालय ने यह ठीक ही विचार किया है कि इस साक्षी को क्षतियां पहुंचने के तथ्य से इनकार नहीं किया गया है और न ही इस पर कोई विवाद किया गया है और इस साक्षी को यह सुझाव भी नहीं दिया गया है कि उसको ये क्षतियां अन्य हमलावरों द्वारा अन्य किसी स्थान पर किसी भिन्न रीति में कारित की गई हैं । उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि अन्वेषण अधिकारी द्वारा सरकारी अस्पताल, गुन्तूर या हाईटेक अस्पताल के चिकित्सकों की परीक्षा करने में कुछ गलतियां हुई हैं, इस तथ्य को अभियोजन पक्षकथन पर संदेह किए जाने का एकमात्र आधार नहीं माना जा सकता । जब अभि. सा. 5 अचेत अवस्था में था, तब ऐसी स्थिति में विलंब से परीक्षा कराना अभियोजन पक्षकथन के लिए घातक नहीं हो सकता । इस प्रकार उच्च न्यायालय ने अभि. सा. 5 के साक्ष्य का सही प्रकार मूल्यांकन किया है और उसका अवलंब लिया है जो हमारे मतानुसार पूर्णतया विधि के अनुसरण में है ।

आहत साक्षी (अभि. सा. 5) ने उन व्यक्तियों की विशिष्ट भूमिका का उल्लेख किया है जिन्होंने मृतक-1 और मृतक-2 को क्षतियां कारित की थीं और उनकी संपुष्टि चिकित्सीय साक्ष्य से होती है, ऐसी स्थिति में अभि. सा. 5

के साक्ष्य को विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए आधार पर अनदेखा करना स्पष्ट रूप से चलने योग्य नहीं है और उच्च न्यायालय ने मामले के सभी पहलुओं पर विचार करने के पश्चात् अभियुक्त को दोषी अभिनिर्धारित करने के लिए अभि. सा. 5 के साक्ष्य का ठीक ही अवलंब लिया है ।

अब न्यायालय विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए उन कारणों पर विचार करेंगे जिनके आधार पर अन्य प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य को त्यक्त किया गया है । विचारण न्यायालय ने अभि. सा. 1 के संबंध में यह मत व्यक्त किया है कि उसने यह स्वीकार किया है कि अभियुक्त-12 से अभियुक्त-19 के नाम प्रदर्श पी. 1 में नहीं दिए गए थे यद्यपि इस साक्षी ने यह कथन किया है कि उसने उस समय अभियुक्त के नाम पुलिस को बता दिए थे जब पुलिस ने उससे पूछताछ की थी । विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि तथाकथित षड्यंत्र और अभियुक्त-12 से अभियुक्त-19 की अपराध में भूमिका संदिग्ध है । यदि अभियुक्त-12 से अभियुक्त-19 को दोषमुक्त किया गया है, तब भी उनकी दोषमुक्ति से यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि विचारण न्यायालय अभियोजन पक्षकथन को त्यक्त कर दे जैसा कि प्रदर्श पी. 1 में उल्लेख किया गया है और अभि. सा. 1 द्वारा उसके मौखिक साक्ष्य से संपुष्टि होती है । इस प्रकार हमारा यह मत है कि अभि. सा. 1, जोकि एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है, के साक्ष्य को त्यक्त करने का कोई भी कारण नहीं है । अभि. सा. 21 पुलिस उप निरीक्षक है जिसने यह कथन किया है कि उसे इस अपराध के संबंध में तारीख 10 अक्तूबर, 2003 को लगभग 5 बजे अपराह्न में फोन पर सूचना प्राप्त हुई थी । वह तत्काल घटनास्थल पर पहुंचा और उसे यह पता चला कि दो आहतों को पोन्नूर सरकारी अस्पताल भेज दिया गया है और उसने वहां पर एक हीरो होन्डा पेशन मोटरसाइकिल भी देखी । घटनास्थल पर एक गार्ड को तैनात करने के पश्चात् उप निरीक्षक सरकारी अस्पताल, पोन्नूर के लिए रवाना हो गया जहां पहुंचकर उसे यह पता चला कि हैड कांस्टेबल सं. 690 (अभि. सा. 20) ने पहले ही शिकायतकर्ता का कथन अभिलिखित कर लिया है । अभि. सा. 1 का कथन छह बजे अपराह्न में अभिलिखित किया गया जैसा कि अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 23) द्वारा उसके अपने अभिसाक्ष्य में उल्लेख किया गया है । पुलिस द्वारा एक घन्टे के भीतर सूचना प्राप्त होने और 6 बजे अपराह्न तक अस्पताल में अभि. सा. 1 की मौजूदगी में साक्षियों के कथन अभिलिखित किए जाने से अभियोजन पक्षकथन की इस संबंध में संपुष्टि होती है कि घटना चार बजे

अपराह्न में घटित हुई थी और आहत को तत्काल अस्पताल भेज दिया गया था । आहत शिव शंकर राव की पोन्नूर अस्पताल में 5.30 बजे अपराह्न से 6 बजे अपराह्न के बीच मृत्यु हो गई थी, जिसके संबंध में मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट तत्काल तैयार की गई । इस प्रकार, हमारा यह मत है कि विचारण न्यायालय ने बिना किसी ठोस कारण के अभि. सा. 1 के साक्ष्य को त्यक्त किया है और उच्च न्यायालय ने अभि. सा. 1, जिसने अपने कथन में मृतकों और आहत साक्षियों अर्थात् दोनों पर किए गए हमलों की रीति से संबंधित सम्पूर्ण घटना का विस्तार से वर्णन किया है, के साक्ष्य का अवलंब लेने में कोई त्रुटि नहीं की है ।

अभि. सा. 2 के संबंध में विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि जब उप निरीक्षक (अभि. सा. 21) घटनास्थल पर गया, उसे अभि. सा. 2 घटनास्थल पर मौजूद नहीं मिला और अभि. सा. 1 ने यह सूचना दी है कि जब मृतक-2 और अभि. सा. 5 को सरकारी अस्पताल, पोन्नूर ले जाया जा रहा था, तब अभि. सा. 2 से मृतक-1 के शव के पास मौजूद रहने को कहा गया था । चूंकि अभि. सा. 2 का कथन सरकारी अस्पताल, पोन्नूर में अभिलिखित किया गया था इसलिए उसकी अस्पताल में मौजूदगी को त्यक्त नहीं किया जा सकता । न्यायालय का यह मत है कि अभि. सा. 2 घटनास्थल पर उस समय मौजूद नहीं पाया गया था जब अभि. सा. 21 घटनास्थल पर पहुंचा था, मात्र इस बात से यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि उसके प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य को त्यक्त कर दिया जाए ।

चिकित्सक (अभि. सा. 17) द्वारा देखी गई क्षतियों पर विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि ऊपर उल्लिखित कटावयुक्त क्षतियां कुल्हाड़ी, चाकू तथा फरसे से कारित की जा सकती हैं जिसके संबंध में चिकित्सक द्वारा राय भी दी गई है । यह तथ्य कि आयुधों को चिकित्सकों को नहीं दिखाया गया था और न ही उनकी प्रतिपरीक्षा के दौरान उनका ध्यान इन आयुधों की ओर दिलाया गया था, यह बात वर्तमान मामले के तथ्यों के आधार पर अधिक महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि इस संबंध में स्पष्ट चिकित्सीय साक्ष्य है कि ये क्षतियां चाकू, कुल्हाड़ी और फरसे से कारित की जा सकती हैं । हमारे समक्ष यह दलील नहीं दी गई है कि चिकित्सकों द्वारा जो क्षतियां मृतक-1 और मृतक-2 के शवपरीक्षण के दौरान देखी गई हैं वे चाकू और कुल्हाड़ी से कारित की जा सकती हैं । यह भी दलील दी गई है कि चिकित्सकों से यह पूछा गया था कि फरसे से जो क्षति कारित की जाती है उसकी आकृति अर्ध चन्द्रमा जैसी होती है, चिकित्सक ने स्वयं

अपनी रिपोर्ट में यह स्वीकार किया है कि उसने क्षतियों की गहराई, क्षतियों के मध्य भाग की स्थिति का उल्लेख नहीं किया है और न ही क्षतियों के किनारों के संबंध में कोई रिपोर्ट दी है । चिकित्सक ने किसी भी क्षति की आकृति अर्ध चन्द्रमा जैसी नहीं बताई है । चिकित्सक ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि उसने क्षतियों की आकृति, गहराई और क्षतियों के मध्य भाग का वर्णन नहीं किया है । उपर्युक्त चिकित्सीय साक्ष्य से यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि जो क्षतियां चिकित्सकों द्वारा देखी गई हैं वे कुल्हाड़ी, चाकू और फरसे से कारित नहीं की जा सकती हैं । प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अर्थात् अभि. सा. 1, 2, 3 और 5 ने स्पष्ट रूप से अभियुक्तों द्वारा प्रयोग किए गए आयुधों के संबंध में उल्लेख किया है और उनका यह प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य चिकित्सीय साक्ष्य के अनुसरण में है । इस प्रकार, चिकित्सकों का कथन न्यायालय में अभिलिखित किए जाने के समय पर उन्हें आयुधों के न दिखाए जाने से कोई भी फर्क नहीं पड़ता है और अभियोजन पक्षकथन किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं होता है । विचारण न्यायालय द्वारा प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के कथनों में आए विरोधाभासों को निर्दिष्ट किया गया है जोकि अपारिणामिक है । लंबा समय के बीत जाने के बाद प्रत्यक्षदर्शी साक्षी प्रत्येक अभियुक्त द्वारा कारित की गई क्षतियों का अलग-अलग वर्णन नहीं कर सकते और उनके साक्ष्य में आई छोटी-मोटी असंगतताओं से कोई भी फर्क नहीं पड़ता है ।

तथापि, यदि आहत साक्षी सहित ऐसे प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों ने साक्ष्य दिया है जिन्होंने अभियोजन पक्षकथन का पूरी तरह समर्थन किया है और भिन्न-भिन्न अभियुक्तों की अपराध में भूमिका साबित की है, तब ऐसी स्थिति में अभियोजन पक्षकथन को मात्र इस आधार पर नकारा नहीं जा सकता कि यह एक सामूहिक प्रतिद्वन्द्विता का मामला है । सामूहिक प्रतिद्वन्द्विता एक दोधारी तलवार है । यह मामला ऐसा मामला है जिसमें उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 386 के अधीन अपनी अपीली शक्ति का प्रयोग किया है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 386 के अधीन अपीली शक्ति का प्रयोग करने में उच्च न्यायालय को दोषमुक्ति के आदेश को उलटने के लिए पूर्ण शक्ति प्राप्त है और यदि अभियुक्त दोषी पाए जाते हैं तब वे विधि के अनुसार दंडादिष्ट किए जा सकते हैं । यह मामला एक ऐसा मामला है जिसमें आहत साक्षी और अन्य प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य को त्यक्त करने में विचारण न्यायालय को अनुचित पाया गया है । इस प्रकार हमारी राय में उच्च न्यायालय ने

दोषमुक्ति के आदेश को उलटने और अभियुक्तों को दोषसिद्ध करनें में कोई भी त्रुटि कारित नहीं की है । प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य से, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है और उच्च न्यायालय द्वारा अपने निर्णय में दिए गए कारणों के आधार पर, हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति के आदेश को अपास्त करके और अभियुक्तों को दोषसिद्ध करके ठीक ही किया है । (पैरा 24, 25, 26, 27, 33, 36 और 37)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2010] (2010) 6 एस. सी. सी. 519 :
एकनाथ गणपत अहेर और अन्य बनाम
महाराष्ट्र राज्य और अन्य ; 32

[2010] (2010) 9 एस. सी. सी. 567 :
सी. मुनियप्पन और अन्य बनाम **तमिलनाडु राज्य** ; 23

[2009] (2009) 10 एस. सी. सी. 401 :
धनपाल बनाम **राज्य द्वारा लोक अभियोजक, मद्रास** ; 34

[2008] (2008) 11 एस. सी. सी. 328 :
चन्द्रप्पा और अन्य बनाम **कर्नाटक राज्य** ; 31

[1988] (1988) (सप्ली.) एस. सी. सी. 686 :
उत्तर प्रदेश राज्य बनाम **अनिल सिंह** ; 35

[1976] ए. आई. आर 1976 एस. सी. 76 =
(1976) 1 एस. सी. सी. 172 :
करतारे और अन्य बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** । 29

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2014 की दांडिक अपील सं. 119-120.

2008 की दांडिक अपील सं. 340 में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, हैदराबाद द्वारा तारीख 9 सितंबर, 2013 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री एटीएम रंगा रामानुजम, सिद्धार्थ लूथरा (ज्येष्ठ अधिवक्ता), पवन कुमार शर्मा, (सुश्री) अनु गुप्ता और प्रत्यूष राज

प्रत्यर्थी की ओर से सुश्री प्रेरणा सिंह और श्री गुन्तूर प्रभाकर

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अशोक भूषण ने दिया ।

न्या. भूषण – ये अपीलें 2009 की दांडिक अपील सं 340 और 2008 के दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 643 को मंजूर करने वाले आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के तारीख 9 जुलाई, 2013 को पारित किए गए निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई हैं । दांडिक अपील, आंध्र प्रदेश राज्य द्वारा फाइल की गई है और दांडिक पुनरीक्षण आवेदन मृतक शिव शंकर राव की पत्नी सुमरोतु लक्ष्मी साम्राज्यम द्वारा फाइल की गई है । उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय द्वारा विचारण न्यायालय के उस आदेश को अपास्त किया है जिसके द्वारा विचारण न्यायालय ने अभियुक्त की दोषमुक्ति की थी और उच्च न्यायालय ने उसे भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में 'दंड संहिता' कहा गया है) की धारा 149 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया है । अभियुक्त ने उच्च न्यायालय के दोषसिद्धि के निर्णय से व्यथित होकर ये अपीलें प्रस्तुत की हैं ।

2. संक्षेप में अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है :–

सभी अभियुक्त और वस्तुतः शिकायतकर्ता वेलालुरु ग्राम के मूल निवासी हैं । दोनों गुट अर्थात् अभियुक्त दल और शिकायतकर्ता दल एक दूसरे पर हमला करते आ रहे हैं और कई दांडिक मामले दोनों गुटों के विरुद्ध दर्ज किए जा चुके हैं । शिकायतकर्ता पक्ष से संबंधित सत्य नारायण नाम के व्यक्ति की हत्या तारीख 7 फरवरी, 2003 को कर दी गई थी जिसके संबंध में अपराध मामला सं. 8/2003 ग्रामीण पुलिस थाना, पोन्नूर में दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 147, 148 और 302 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दर्ज कराया गया । इसके अतिरिक्त नगर पुलिस थाना, पोन्नूर में सोमरोतु तिरुपतिराव (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'मृतक-1' निर्दिष्ट किया गया है), सोमरोतु शिव शंकर राव (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'मृतक-2' निर्दिष्ट किया गया है) और अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध, जिनके बारे में उक्त मामले के संबंध में सूदा चीना वीरैया की हत्या किए जाने का अभिकथन किया गया है, और एक अन्य अपराध मामला सं. 35/2003 दर्ज किया गया और उक्त मामले के संबंध में ऊपर नामित दोनों मृतकों तथा अन्य व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया और उन्हें न्यायिक अभिरक्षा में भेज दिया गया । न्यायालय ने उन्हें इस शर्त के साथ जमानत मंजूर की कि वे केवल बापट्ला में ही रहेंगे और बापट्ला पुलिस थाने में

प्रतिदिन आकर अपनी उपस्थिति दर्ज कराएंगे तथा सप्ताह में एक बार पोन्नूर न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत होंगे । उपरोक्त मामले के संबंध में, तारीख 10 अक्तूबर, 2013 को अभि. सा. 1 से अभि. सा. 6 और अभि. सा. 9 के साथ 'मृतक-1' और 'मृतक-2' तीन दुपहिया वाहनों से न्यायालय में प्रस्तुत होने के लिए पोन्नूर गए और न्यायालय में प्रस्तुत होने के पश्चात् वे सायंकाल वापस आ रहे थे और उक्त सूचना प्राप्त होने पर, अभियुक्त-2, अभियुक्त-4 से अभियुक्त-6, अभियुक्त-11, अभियुक्त-13 और अभियुक्त-18 ने एक दूसरे के साथ षड्यंत्र रचा और चूंकि अभियुक्त-18 के पास लारी (जिसकी पंजीकरण सं. एडीएम 8373 है) थी, इसलिए ये सभी व्यक्ति कुल्हाड़ी, चाकू, सरिए और डंडों जैसे घातक हथियारों के साथ अभियुक्त-18 की लारी में बैठ गए और उस दुपहिया वाहन को टक्कर मारी जिस पर दोनों मृतक और अभि. सा. 5 यात्रा कर रहे थे । दोनों मृतक दुपहिया वाहन से नीचे गिर गए । इसके पश्चात् अभियुक्तों ने उन पर अंधाधुंध हमला किया और उनकी हत्या कर दी तथा अभि. सा. 5 को भी क्षतियां पहुंचाईं और वे सभी घटनास्थल से उसी लारी में बैठकर अपने हथियारों के साथ भाग गए । 'मृतक सं. 1' की घटनास्थल पर मृत्यु हो गई और अन्य आहतों को अस्पताल भेज दिया गया । अन्य व्यक्ति जो मृतक के दुपहिया वाहन के पीछे-पीछे आ रहे थे, उन्होंने यह घटना देखी थी और पुलिस में रिपोर्ट दर्ज कराई तथा दूसरे मृतक को पोन्नूर अस्पताल भेज दिया गया जहां पर चिकित्सक ने उसे मृत घोषित कर दिया और दूसरे आहत (अभि. सा. 5) को सरकारी अस्पताल, गुन्तूर भेज दिया गया । सूचना प्राप्त होने पर पुलिस वहां गई और अभि. सा. 1 का कथन अभिलिखित किया । बापट्ला नगर के पुलिस थाने के हैड कांस्टेबल (अभि. सा. 20) ने अभि. सा. 21 को मामले की फाइल सुपुर्द की और अभि. सा. 21 ने दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 147, 149, 307 और 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए अपराध मामला सं. 57/2013 दर्ज कराया । अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् अभि. सा. 23 ने आरोप पत्र प्रस्तुत किया ।

3. यह घटना 4 बजे अपराह्न में घटित हुई थी । तिरुपतिराव अर्थात् 'मृतक-1' की मृत्यु घटनास्थल पर ही हो गई थी जबकि शिव शंकर राव अर्थात् 'मृतक-2' और एस. वैंकइयानायडु (अभि. सा. 5) को तत्काल ही सरकारी अस्पताल, पोन्नूर ले जाया गया था जहां पर शिव शंकर राव की मृत्यु 5.30 बजे अपराह्न से 6 बजे अपराह्न के बीच हो गई थी ।

वैंकइयानायडु (अभि. सा. 5) अचेत अवस्था में था, इसलिए चिकित्सक की सलाह के आधार पर उसे सरकारी अस्पताल, गुन्तूर भेज दिया गया । पुलिस सरकारी अस्पताल, पोन्नूर पहुंची और 6 बजे अपराह्न में शिवराम कृष्णय्या का कथन अभिलिखित किया जिसके आधार पर दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 147, 148 और 302 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 57/2003 दर्ज कराई गई ।

4. अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 23) ने तारीख 10 अक्तूबर, 2003 को ही इस मामले का अन्वेषण संभाल लिया था । सरकारी अस्पताल, गुन्तूर पहुंचने के पश्चात् अन्वेषण अधिकारी ने वैंकइयानायडु को अचेत अवस्था में पाया । वह उसका कथन अभिलिखित नहीं कर सका । उसे तारीख 14 अक्तूबर, 2003 को अधिक सुविधाओं वाले गुन्तूर के एक बड़े अस्पताल भेज दिया गया था जहां उसे बीस दिनों के पश्चात् होश आया । अन्वेषण अधिकारी ने तारीख 4 नवंबर, 2010 को उस अस्पताल में अभि. सा. 5 का कथन अभिलिखित किया। अन्वेषण अधिकारी घटनास्थल पर भी गया । अनेक वस्तुएं अभिगृहीत कीं । स्थल नक्शा तैयार किया और घटनास्थल के फोटो भी प्राप्त किए । अन्वेषण पूरा करने के पश्चात् अन्वेषण अधिकारी ने 19 अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया जिनमें से एक अभियुक्त अर्थात् अभियुक्त-18 की मृत्यु तारीख 14 दिसंबर 2003 को ही हो गई थी । सभी अभियुक्तों का विचारण किया गया । अभियोजन पक्ष ने विचारण न्यायालय के समक्ष अभि. सा. 1 से अभि. सा. 23 तक सभी साक्षियों की परीक्षा कराई, प्रदर्श पी-1 से पी-25 दस्तावेज चिह्नांकित किए और तात्विक वस्तु 1 से 16 को भी चिह्नांकित किया । अभि. सा. 1 से अभि. सा. 6 और अभि. सा. 9 इस घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं । अभि. सा. 7 और अभि. सा. 8, प्रथम और मृतक-2 की पत्नियां हैं जो घटना के बारे में जानकारी मिलने पर तुरन्त घटनास्थल पर पहुंचीं थीं । अभि. सा. 10 के साक्ष्य से यह दर्शित होता है कि घटना के दिन उसने अभियुक्त को उसके मकान के सामने एक लारी में तैयारी करते हुए देखा था । अभि. सा. 16 वह चिकित्सक है जिसने सरकारी अस्पताल, गुन्तूर में आहत का उपचार किया था । उन चिकित्सकों की भी परीक्षा अभि. सा. 17 और अभि. सा. 18 के रूप में कराई गई है जिन्होंने दोनों शवों का शवपरीक्षण किया था । अभि. सा. 23 अन्वेषण अधिकारी है जिसने इस मामले का अन्वेषण किया है । अभियुक्त ने अपनी प्रतिरक्षा में कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है । विचारण के लंबित रहने के दौरान

अभियुक्त-1, अभियुक्त-9, अभियुक्त-11 और अभियुक्त-18 की मृत्यु हो जाने के कारण ऐसे अभियुक्तों के प्रति विचारण उपशमित कर दिया गया है ।

5. विचारण न्यायालय ने तारीख 24 दिसंबर, 2007 को पारित किए गए अपने आदेश द्वारा अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया था । विचारण न्यायालय ने प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य को निर्दिष्ट करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि उनके साक्ष्य में विरोधाभास और लोप हैं । विचारण न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया कि चिकित्सीय साक्ष्य से कुल्हाड़ी से कारित की गई क्षति का समर्थन नहीं होता है । अभि. सा. 5 की क्षतियों और चिकित्सीय साक्ष्य को निर्दिष्ट करने के पश्चात् विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि यह अभिनिर्धारित करना संभव नहीं है कि ये क्षतियां हसिया जैसे धारदार आयुध से कारित की गईं हैं । विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अभियुक्त संदेह का लाभ पाने के आधार पर दोषमुक्ति के हकदार हैं । विचारण न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर, राज्य ने दांडिक अपील सं. 340/2009 फाइल की । सोमरोतु लक्ष्मी साम्राज्यम अर्थात् मृतक शिव शंकर राव की पत्नी ने दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 643/2008 फाइल किया । दांडिक अपील और दांडिक पुनरीक्षण आवेदन दोनों की सुनवाई एक साथ की गई और उच्च न्यायालय द्वारा उन्हें स्वीकार किया गया । अभियुक्त-1 से अभियुक्त-3, अभियुक्त-5 से अभियुक्त-7 और अभियुक्त-11 को दंड संहिता की धारा 148 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दोषी पाया और उन्हें दोषसिद्ध करते हुए आजीवन कारावास तथा प्रत्येक पर 500/- रुपए जुर्माने का संदाय करने के लिए दंडादिष्ट किया । अभियुक्त-9 से अभियुक्त-12 की दोषमुक्ति की पुष्टि की गई है । ये अपीलें अभियुक्त्-2, अभियुक्त-3, अभियुक्त-5, अभियुक्त-6, अभियुक्त-7 और अभियुक्त-11 द्वारा फाइल की गईं हैं जिनमें अभियुक्त-1 की मृत्यु हो चुकी है ।

6. हमने अपीलार्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री एटीएम रंगा रामानुजम और श्री सिद्धार्थ लूथरा को सुना है । राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल सुश्री प्रेरणा सिंह की सुनवाई की गई है ।

7. इस अपील के समर्थन में अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि विचारण न्यायालय द्वारा किया गया दोषमुक्ति का आदेश अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के मूल्यांकन पर आधारित है और दोषमुक्ति के इस आदेश में उच्च न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है । यह दलील दी

गई है कि यदि दो मत संभव हों, तब विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति के आदेश में अपील न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने की आवश्यकता नहीं होती है । अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए चिकित्सीय साक्ष्य से तथाकथित प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य का समर्थन नहीं होता है । इसलिए, विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्षकथन को ठीक ही अविश्वसनीय ठहराया है । उच्च न्यायालय ने अभियुक्त पर यह साबित करने का भार गलत डाला है कि मृतक और प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों को न्यायालय में प्रस्तुत होने की आवश्यकता नहीं थी जबकि यह भार अभियोजन पक्ष पर आता है कि वह यह साबित करे कि मृतक और सभी प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों को पोन्नूर न्यायालय में प्रस्तुत होने की आवश्यकता थी जहां से उन्होंने वापस जाने का दावा किया है । अभियुक्त और शिकायतकर्ता दोनों दलों के बीच लंबे समय से शत्रुता चली आने के कारण अभियुक्तों को अपराध में आलिप्त किया गया है । जब चिकित्सकों को उनका साक्ष्य अभिलिखित किए जाने के लिए न्यायालय में प्रस्तुत किया गया, तब उन्हें वे हथियार नहीं दिखाए गए जिन्हें अभिगृहीत किया गया था, ताकि चिकित्सकों से यह राय प्राप्त की जाती कि क्या ऐसे हथियारों से मृतक और आहत साक्षियों को ऐसी क्षतियां कारित हो सकती थीं या नहीं और इस बात से अभियोजन पक्षकथन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है ।

8. राज्य के विद्वान् काउंसेल ने अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल की दलीलों का खंडन करते हुए यह तर्क दिया कि उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति के आदेश को उलट कर ठीक ही किया है । यह भी दलील दी गई है कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों द्वारा दिया गया प्रत्यक्ष साक्ष्य विश्वास किए जाने योग्य है और विचारण न्यायालय ने ऐसे साक्ष्य को अपर्याप्त कारणों के आधार पर त्यक्त किया है । आहत प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अर्थात् वैंकइयानायडु (अभि. सा. 5) ने इस घटना को पूर्ण रूप से साबित किया है और विशेषकर अभियुक्त की भूमिका को सिद्ध किया है और ऐसे साक्ष्य को विचारण न्यायालय द्वारा त्यक्त नहीं किया जाना चाहिए था । यह दलील दी गई है कि उच्च न्यायालय ने साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन ठीक प्रकार किया है और ऐसे साक्ष्य को विश्वासप्रद और विश्वसनीय अभिनिर्धारित करने के लिए तर्कसम्मत कारण दिए हैं । प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों द्वारा साबित की गई क्षतियों की संपुष्टि चिकित्सीय साक्ष्य से पूर्ण रूप से होती हैं । ऐसे प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य को हितबद्ध साक्षी होने के आधार पर त्यक्त नहीं किया जा सकता था जो मृतक-1 और मृतक-2 के साथ मौजूद थे और ये साक्षी मृतकों के परिवार के सदस्य थे जो

मोटरसाइकिल पर थे और अन्य दुपहिया वाहनों पर थे और ऐसे ही प्रत्यक्षदर्शी साक्षी घटना को साबित कर सकते थे । उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया दोषसिद्धि का निर्णय साक्ष्य का समुचित मूल्यांकन किए जाने पर आधारित है और अभियुक्तों को दोषी पाए जाने के आधार पर ये अपीलें खारिज की जानी चाहिए ।

9. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने इस न्यायालय के अनेक निर्णयों का अवलंब लिया है जिन्हें पक्षकारों द्वारा दी गई दलीलों पर विचार करते समय निर्दिष्ट किया जाएगा ।

10. जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, अभि. सा. 1 से अभि. सा. 6 और अभि. सा. 9 सभी घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं । वैंकइयानायडु (अभि. सा. 5) एक ऐसा आहत साक्षी है जो हीरो होंडा मोटरसाइकिल पर यात्रा कर रहा था जिसे उसका पिता (मृतक-1) चला रहा था । प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य पर टिप्पणी करने के पश्चात् विचारण न्यायालय ने कुछ कारणों के आधार पर साक्ष्य त्यक्त करने की कार्यवाही की । हमने विचारण न्यायालय के आदेश पर सावधानीपूर्वक विचार किया है, साथ ही प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के अभिसाक्ष्यों का परिशीलन भी किया है तथा साक्ष्य स्वीकार न करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों पर भी विचार किया है । हम प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य को त्यक्त करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों पर एक-एक करके विचार करेंगे । सर्वप्रथम, हम आहत साक्षी अभि. सा. 5 के अभिसाक्ष्य और इस अभिसाक्ष्य को त्यक्त करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों पर विचार करेंगे ।

11. जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है अभि. सा. 5, जिसकी आयु घटना के दिन लगभग साढ़े बारह वर्ष थी और वह हीरो होंडा मोटरसाइकिल पर बैठा हुआ था जिसे उसका पिता अर्थात् तिरुपतिराव (मृतक-1) चला रहा था, इसी मोटरसाइकिल पर शिव शंकर राव (मृतक-2) भी बैठा हुआ था । वैंकइयानायडु (अभि. सा. 5) ने अपने प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य में यह अभिसाक्ष्य दिया है कि वह, उसका पिता और शिव शंकर राव मोटरसाइकिल पर थे और बापट्ला से वापस आ रहे थे, शिवराम कृष्णय्या (अभि. सा. 1) और मुरली कृष्णा (अभि. सा. 3) स्कूटर से आ रहे थे और वीरावय्या (अभि. सा. 4), वैंकटलक्ष्मी नरसिम्हा (अभि. सा. 2) और वैंकटेशवरा राव (अभि. सा. 9) टी. वी. एस. मोपेड से आ रहे थे । वे लगभग 3 या 3.40 बजे अपराह्न में रवाना हुए थे और लगभग 4 बजे

अपराह्न में जब वे घटनास्थल पर पहुंचे, उसके पिता तिरुपतिराव ने यह देखा कि एक लारी जिसे अभियुक्त-3 चला रहा था, सामने की ओर से आ रही थी, उसके पिता ने अपना वाहन वापस मोड़ लिया । उस समय लारी ने उनकी मोटरसाइकिल में टक्कर मारी और वे नीचे गिर गए । लारी में बैठे हुए सभी अभियुक्तों के पास चाकू और कुल्हाड़ियां थीं । उसके पिता और शिव शंकर राव पर अभियुक्तों द्वारा कुल्हाड़ियों और चाकुओं से हमला किया गया । अभियुक्त-19 ने अभि. सा. 5 की दाईं कनपटी पर चाकू से वार किया और बोटचू वासु (अभियुक्त-11) ने उसके दाईं ओर डंडे से वार किया । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि वह बेहोश हो गया था और उसे हाइटैक अस्पताल, गुन्तूर में होश आया । साक्ष्य में यह भी आया है कि घटना के तत्काल पश्चात् शिव शंकर राव और वैंकइयानायडु को सरकारी अस्पताल, पोन्नूर ले जाया गया था । सरकारी अस्पताल, पोन्नूर जाने के दौरान 5.30 बजे से 6 बजे अपराह्न के बीच शिव शंकर राव की मृत्यु हो गई और वैंकइयानायडु (अभि. सा. 5) को सरकारी अस्पताल गुन्तूर भेज दिया गया जहां पर डा. विनयवर्धन (अभि. सा. 16) द्वारा 6 बजे अपराह्न में उसकी चिकित्सा परीक्षा की गई जिन्होंने अपने साक्ष्य में स्पष्ट रूप से यह साबित किया है कि तारीख 10 अक्तूबर, 2003 को 6.15 बजे अपराह्न में उन्होंने आहत वैंकइयानायडु की चिकित्सा परीक्षा मुरलीकृष्ण (अभि. सा. 3) की मौजूदगी में की थी और उन्होंने आहत के शरीर पर क्षतियां पाईं । अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 23) ने तारीख 10 अक्तूबर, 2003 को सायंकाल में ही इस मामले का अन्वेषण संभाल लिया था और अभि. सा. 1, 2, 3, 4, 6 और 9 के कथन उसी दिन अभिलिखित किए थे । अन्वेषण अधिकारी को उसी दिन यह पता चला कि आहत (अभि. सा. 5) को सरकारी अस्पताल, गुन्तूर भेज दिया गया है जहां पर वह पहुंचा और उसने अभि. सा. 5 को अचेत अवस्था में पाया, इसलिए अभि. सा. 5 का कथन उसी दिन अभिलिखित नहीं किया जा सका ।

12. अब हम विचारण न्यायालय के निर्णय पर विचार करेंगे और उसके द्वारा दिए गए उन कारणों का परिशीलन करेंगे जिनके आधार पर आहत प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के साक्ष्य को त्यक्त किया है । निर्णय के पैरा 15 में विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि अभि. सा. 23 ने अपने कथन में यह उल्लेख किया है कि जब वह सरकारी अस्पताल, पोन्नूर गया था, उस समय अभि. सा. 5 वहां मौजूद नहीं था और उसे सरकारी अस्पताल, गुन्तूर भेज दिया गया था क्योंकि उसकी दशा गंभीर थी ।

विचारण न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया कि दुर्भाग्यवश सरकारी अस्पताल, पोन्नूर के चिकित्सक की परीक्षा नहीं कराई गई है और अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे यह दर्शित होता हो कि अभि. सा. 5 को भी दूसरे मृतक के साथ सरकारी अस्पताल, पोन्नूर भेजा गया था । उपरोक्त इस मताभिव्यक्ति का कोई महत्व नहीं है कि सरकारी अस्पताल, पोन्नूर के किसी भी चिकित्सक की परीक्षा नहीं कराई गई और न ही अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री है जिससे यह दर्शित होता हो कि अभि. सा. 5 को सरकारी अस्पताल, पोन्नूर भेजा गया था क्योंकि वैंकइयानायडु (अभि. सा. 5) को सरकारी अस्पताल, गुन्तूर भेजा गया था जहां पर उसी दिन 6.15 बजे अपराह्न में उसकी चिकित्सा परीक्षा की गई थी जिसे डा. विनयवर्धन (अभि. सा. 16) द्वारा साबित किया गया है । अभि. सा. 1 और अभि. सा. 3 दोनों ने यह कथन किया है कि घटना के पश्चात् शिव शंकर राव और वैंकइयानायडु को सरकारी अस्पताल पोन्नूर लाया गया और 5.30 बजे अपराह्न के पश्चात् शिव शंकर राव की मृत्यु हो गई और वैंकइयानायडु को सरकारी अस्पताल, गुन्तूर के पास भेज दिया गया । इस संबंध में चिकित्सक की परीक्षा न कराया जाना अपरिणामिक और व्यर्थ होता कि वह यह साबित करता कि आहत (अभि. सा. 5) को सबसे पहले सरकारी अस्पताल, पोन्नूर ले जाया गया था या नहीं, क्योंकि इस बाबत कोई विवाद नहीं है कि आहत को सरकारी अस्पताल गुन्तूर में भर्ती कराया गया था और उसकी चिकित्सा परीक्षा उसी दिन 6.15 बजे अपराह्न में चिकित्सक द्वारा की गई थी । पैरा 16 में विचारण न्यायालय ने डा. विनयवर्धन (अभि. सा. 16) के साक्ष्य को निर्दिष्ट किया है जिसने अभि. सा. 5 की चिकित्सा परीक्षा तारीख 10 अक्तूबर, 2003 को 6.15 बजे अपराह्न में की थी । डा. विनयवर्धन के साक्ष्य से विचारण न्यायालय द्वारा निर्णय के पैरा 16 में यह उद्धृत किया गया है कि वह अर्थात् अभि. सा. 16 सरकारी अस्पताल, गुन्तूर में मुख्य चिकित्सा अधिकारी के पद पर कार्यरत था, ने यह कथन किया है कि तारीख 10 अक्तूबर, 2003 को 6.15 बजे अपराह्न में उसने वैंकइयानायडु (अभि. सा. 5) की चिकित्सा परीक्षा की थी जो उस समय मुरली कृष्णा (अभि. सा. 3) के साथ था, डा. विनयवर्धन ने यह भी पाया कि अभि. सा. 5 क्षतिग्रस्त थी और उसे यह बताया गया था कि अभि. सा. 5 की पिटाई वेटा कोडावली (हसिया) से की गई है । इस चिकित्सक द्वारा आहत के शरीर पर निम्न क्षतियां पाईं गईं :–

"1. दाएं अनुकपालीय आंशिक भाग में एक सेंटीमीटर के रक्तमय विदीर्ण घाव के साथ 10 से. मी. × 10 से. मी. आकार में विसरित सूजन है ।

बाएं हाथ पर हल्की खरोंच है और अग्रबाहु पर 10 से. मी. × 5 से. मी. आकार में लाल रंग की रगड़ है ।

खोपड़ी के एक्स-रे से कोई भी अस्थिभंग दिखाई नहीं दे रहा है, बाएं हाथ के एक्स-रे से प्रकोष्ठास्थि के नीचे की ओर अस्थिभंग दिखाई दे रहा है । अन्तःरोगी सं. 49385 के अनुसार वार्ड चिकित्सक द्वारा राय यह दी गई है कि रोगी तारीख 14 अक्तूबर, 2003 को अस्पताल से भाग गया था जिसका सिर क्षतिग्रस्त था । एक्स-रे और वार्ड चिकित्सक की राय के अनुसार क्षति सं. 2 गंभीर प्रकृति की है ; क्षति सं. 1 साधारण प्रकृति की है जो किसी कुन्द और खुरदुरी वस्तु से कारित की जा सकती है जोकि परीक्षा के समय से 1 से 6 घन्टे पूर्व कारित की गई होगी । प्रदर्श पी 13 मेरे द्वारा जारी किया गया क्षति प्रमाणपत्र है ।"

13. विचारण न्यायालय ने डा. विनयवर्धन (अभि. सा. 16) के साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् निम्न मत व्यक्त किया :–

वास्तव में, इस साक्ष्य की बहुत सी बातों पर संदेह होता है । पहली बात तो यह है कि यह अभिनिर्धारित करना संभव नहीं है कि क्षतियों की प्रकृति हसिया जैसे धारदार आयुध से कारित की गई क्षति जैसी हो ।

14. विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यह अभिनिर्धारित करना संभव नहीं है कि ऐसी क्षतियां हसिया जैसे धारदार आयुध से कारित की जा सकती हैं । अभि. सा. 5 के साक्ष्य को त्यक्त करने के लिए आवश्यक कारणों में एक कारण यह भी है ।

15. अभि. सा. 5 साक्षी कठघरे में स्वयं आया और उसकी परीक्षा कराई गई । अभि. सा. 5 ने उसको कारित क्षतियों के संबंध में अभिसाक्ष्य दिया है । अभि. सा. 5 ने अपने कथन में निम्न प्रकार उल्लेख किया है :–

वेलीवला अक्कइया (अभियुक्त-19) ने मेरी दाईं शंखास्थि पर चाकू से वार किया था । बोटचू वासु (अभियुक्त-11) ने मेरी दाईं ओर डंडे से वार किया । वेलीवला अक्कइया (अभियुक्त-19) ने मेरे हाथों

और टांगों को पकड़ लिया और मुझे फेंक दिया । मैं अचेत हो गया । मुझे हाईटेक अस्पताल, गुन्तूर में होश आया ।

इसके पश्चात् पुलिस ने मुझसे पूछताछ की ।

16. चूंकि अभि. सा. 5 ने यह कथन किया है कि उस पर चाकू और डंडे से उसकी दाईं शंखास्थि पर वार किया गया था, इसलिए उसके शरीर पर पाई गईं क्षतियों पर उसके द्वारा दिए गए साक्ष्य के आधार पर विचार किया जाएगा ।

17. चूंकि अभि. सा. 5 ने स्वयं यह कथन किया है कि उस पर चाकू और डंडे से हमला किया गया था और जो क्षतियां चिकित्सक द्वारा देखी गई हैं वे उसके अनुसार चाकू और डंडे से ही कारित की गई हैं, इसलिए अभि. सा. 5 के प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य और चिकित्सक (अभि. सा. 16) के चिकित्सीय साक्ष्य के बीच कोई भी असंगतता नहीं है और विचारण न्यायालय द्वारा अभि. सा. 5 के साक्ष्य को त्यक्त करने के लिए जो कारण दिए गए हैं वे अनुचित हैं ।

18. विचारण न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया है कि अभि. सा. 23 ने चिकित्सक से इस संबंध में कोई पुष्टि नहीं की थी कि जब वह तारीख 10 अक्तूबर, 2003 को अस्पताल गया था तब अभि. सा. 5 वास्तव में अचेत अवस्था में था और उसने उसे अचेत पाया । विचारण न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया है कि चूंकि अभि. सा. 5 काफी समय तक अचेत अवस्था में था और उसे 20 दिनों से अधिक समय के बाद होश आया था, इसलिए अन्वेषण अभिक्रम से यह प्रत्याशा की जाती है कि इस साक्षी की परीक्षा किए जाने के समय पर उसे चिकित्सक को भी बुलाना चाहिए था । विचारण न्यायालय ने अपने निर्णय के पैरा 17 में निम्न मत व्यक्त किया है :–

> "अभियोजन पक्ष के अनुसार भी अभि. सा. 5 काफी लंबे समय तक अचेत अवस्था में रहा और उसे 20 दिन से भी अधिक समय के बाद होश आया । स्वाभाविकतः, हम अन्वेषण अभिक्रम से यह प्रत्याशा करेंगे कि इस साक्षी की परीक्षा करते समय चिकित्सक मौजूद रहना चाहिए था । उपरोक्त परिस्थितियों में इस साक्षी की परीक्षा के संबंध में थोड़ा संदेह होता है । हमें यह दोहराना पड़ रहा है कि यह इंगित किया जाना चाहिए कि चिकित्सक (अभि. सा. 16) के इस साक्ष्य की अनुपस्थिति में कि अभि. सा. 5 को अस्पताल में अचेत अवस्था में लाया गया था, सम्पूर्ण कहानी अविश्वसनीय होनी

चाहिए । इस बात से अभि. सा. 5 का साक्ष्य त्यक्त हो जाता है । अब हम अभि. सा. 1, 2, 4, 5, 6 और 9 के साक्ष्य पर विचार करेंगे ।"

19. विचारण न्यायालय ने अभि. सा. 5 के साक्ष्य के प्रति इस आधार पर प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला है कि चिकित्सक (अभि. सा. 16) द्वारा कोई भी साक्ष्य अभि. सा. 5 के अचेत होने के संबंध में नहीं दिया गया है, इसलिए सम्पूर्ण कहानी अविश्वसनीय होनी चाहिए । अभि. सा. 5 ने यह कथन किया है कि घटनास्थल पर हमला किए जाने के पश्चात् वह अचेत हो गया था और उसे हाईटेक अस्पताल, गुन्तूर में ही जाकर होश आया था ।

20. अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 23) ने अपने कथन में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया है कि वह अभि. सा. 1, 2, 3, 4, 6 और 9 का साक्ष्य अभिलिखित करने के पश्चात् सरकारी अस्पताल, गुन्तूर गया था और उसने आहत वेंकइयानायडु (अभि. सा. 5) को अचेत अवस्था में देखा, इसलिए वह उसका कथन अभिलिखित नहीं कर सका था । अन्वेषण अधिकारी ने अपने कथन में निम्न प्रकार उल्लेख किया है :–

> मैं जी. जी. एच. गुन्तूर गया था और मैंने आहत एस. वेंकइयानायडु (अभि. सा. 5) को अचेत अवस्था में पाया ; इसलिए मैं उसका कथन अभिलिखित नहीं कर सका था ।

21. अभि. सा. 5 न्यायालय में प्रस्तुत हुआ और उसकी मुख्य परीक्षा में उसके समक्ष यह प्रश्न रखा गया कि क्या वह उस समय अचेत अवस्था में था जब उसे सरकारी अस्पताल, गुन्तूर में भर्ती कराया गया था और उसे कब होश आया । अभि. सा. 5 ने मुख्य परीक्षा और प्रतिपरीक्षा दोनों में यह कथन किया है कि उसे 20 दिन बाद होश आया था और होश आने के अगले दिन उसका कथन अभिलिखित किया गया था ।

22. चिकित्सक (अभि. सा. 16) से, जो न्यायालय में प्रस्तुत हुआ और जिसने अभि. सा. 15 का साक्ष्य अभिलिखित किया, से कोई भी ऐसा प्रश्न नहीं पूछा गया कि जब वेंकइयानायडु को अस्पताल में भर्ती कराया गया था तब वह अचेत अवस्था में था या होश में था । विचारण न्यायालय का यह मत है कि इस संबंध में कोई भी साक्ष्य नहीं है कि अभि. सा. 5 अचेत था और ऐसे साक्ष्य के अभाव में कि अभि. सा. 5 को अचेत अवस्था में अस्पताल लाया गया था, सम्पूर्ण कहानी अविश्वसनीय होनी चाहिए, विचारण न्यायालय का यह मत पूर्णतया त्रुटिपूर्ण और साक्ष्य के अनुचित

मूल्यांकन पर आधारित है । अभि. सा. 5 और अभि. सा. 23 का साक्ष्य इस संबंध में है कि वह उस समय अचेत अवस्था में था जब उसे सरकारी अस्पताल, गुन्तूर में भर्ती कराया गया था और अभिलेख पर इस संबंध में कोई भी प्रतिकूल साक्ष्य नहीं है, विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया यह मत कि सम्पूर्ण कहानी को अविश्वसनीय ठहराया जाना चाहिए, अनुचित है और विचारण न्यायालय के मत को उच्च न्यायालय द्वारा ठीक ही उलटा गया है ।

23. यह भी उल्लेख करना सुसंगत होगा कि विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया यह मत कि अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 23) को चिकित्सक से यह पृष्ठांकित कराना चाहिए था कि तारीख 10 अक्तूबर, 2003 को अभि. सा. 5 अचेत अवस्था में था, यद्यपि अभिलेख पर यह साक्ष्य है कि वह तारीख 10 अक्तूबर, 2003 को उस समय अचेत अवस्था में था जब उसे अस्पताल में भर्ती कराया गया था, मात्र यह तथ्य कि अन्वेषण अधिकारी द्वारा चिकित्सक से इस संबंध में प्रमाणपत्र प्राप्त नहीं किया गया था, अपरिणामिक है । इसके अतिरिक्त, यह सुस्थापित है कि अन्वेषण अधिकारी ने भी यदि कोई गलती की है और उसने अन्वेषण करने में उपेक्षा से काम लिया है या अन्वेषण में कोई लोप या खामी रह गई है, तब न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह अभियोजन साक्ष्य पर ऐसी खामियों को स्पष्ट करने के लिए विचार करे । **सी. मुनियप्पन और अन्य** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[1] वाले मामले में निर्णय के पैरा 55 में निम्न अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "जब अन्वेषण अधिकारी द्वारा कोई उपेक्षापूर्ण कार्य या कोई लोप आदि कारित किए जाते हैं जिनसे अन्वेषण पर दुष्प्रभाव पड़ता है तब न्यायालय की यह विधिक बाध्यता है कि वह ऐसी खामियों को दूर करने के लिए अभियोजन साक्ष्य पर सावधानीपूर्वक विचार करे ताकि यह पता लगाया जा सके कि उक्त साक्ष्य विश्वसनीय है या नहीं और यदि विश्वसनीय है तो किस सीमा तक और यह भी पता लगाया जा सके कि ऐसी खामियों से सत्य का उद्देश्य प्रभावित होता है या नहीं ।"

24. उच्च न्यायालय ने विशेष रूप से अपने निर्णय के पैरा 27 और 28 में अभि. सा. 5 के साक्ष्य पर विचार किया है । उच्च न्यायालय ने यह

---

[1] (2010) 9 एस. सी. सी. 567.

ठीक ही विचार किया है कि इस साक्षी को क्षतियां पहुंचने के तथ्य से इनकार नहीं किया गया है और न ही इस पर कोई विवाद किया गया है और इस साक्षी को यह सुझाव भी नहीं दिया गया है कि उसको ये क्षतियां अन्य हमलावरों द्वारा अन्य किसी स्थान पर किसी भिन्न रीति में कारित की गई हैं । उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि अन्वेषण अधिकारी द्वारा सरकारी अस्पताल, गुन्तूर या हाईटेक अस्पताल के चिकित्सकों की परीक्षा करने में कुछ गलतियां हुई हैं, इस तथ्य को अभियोजन पक्षकथन पर संदेह किए जाने का एकमात्र आधार नहीं माना जा सकता । जब अभि. सा. 5 अचेत अवस्था में था, तब ऐसी स्थिति में विलंब से परीक्षा कराना, अभियोजन पक्षकथन के लिए घातक नहीं हो सकता । इस प्रकार उच्च न्यायालय ने अभि. सा. 5 के साक्ष्य का सही प्रकार मूल्यांकन किया है और उसका अवलंब लिया है जो हमारे मतानुसार पूर्णतया विधि के अनुसरण में है ।

25. आहत साक्षी (अभि. सा. 5) ने उन व्यक्तियों की विशिष्ट भूमिका का उल्लेख किया है जिन्होंने मृतक-1 और मृतक-2 को क्षतियां कारित की थीं और उनकी संपुष्टि चिकित्सीय साक्ष्य से होती है, ऐसी स्थिति में अभि. सा. 5 के साक्ष्य को विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए आधार पर अनदेखा करना स्पष्ट रूप से चलने योग्य नहीं है और उच्च न्यायालय ने मामले के सभी पहलुओं पर विचार करने के पश्चात् अभियुक्त को दोषी अभिनिर्धारित करने के लिए अभि. सा. 5 के साक्ष्य का ठीक ही अवलंब लिया है ।

26. अब हम विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए उन कारणों पर विचार करेंगे जिनके आधार पर अन्य प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य को त्यक्त किया गया है । विचारण न्यायालय ने अभि. सा. 1 के संबंध में यह मत व्यक्त किया है कि उसने यह स्वीकार किया है कि अभियुक्त-12 से अभियुक्त-19 के नाम प्रदर्श पी. 1 में नहीं दिए गए थे यद्यपि इस साक्षी ने यह कथन किया है कि उसने उस समय अभियुक्त के नाम पुलिस को बता दिए थे जब पुलिस ने उससे पूछताछ की थी । विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि तथाकथित षड्यंत्र और अभियुक्त-12 से अभियुक्त-19 की अपराध में भूमिका संदिग्ध है । यदि अभियुक्त-12 से अभियुक्त-19 को दोषमुक्त किया गया है, तब भी उनकी दोषमुक्ति से यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि विचारण न्यायालय अभियोजन पक्षकथन को त्यक्त कर दे जैसा कि प्रदर्श पी. 1 में उल्लेख किया गया है और अभि.

सा. 1 द्वारा उसके मौखिक साक्ष्य से संपुष्टि होती है । इस प्रकार हमारा यह मत है कि अभि. सा. 1, जोकि एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है, के साक्ष्य को त्यक्त करने का कोई भी कारण नहीं है । अभि. सा. 21 पुलिस उप निरीक्षक है जिसने यह कथन किया है कि उसे इस अपराध के संबंध में तारीख 10 अक्तूबर, 2003 को लगभग 5 बजे अपराह्न में फोन पर सूचना प्राप्त हुई थी । वह तत्काल घटनास्थल पर पहुंचा और उसे यह पता चला कि दो आहतों को पोन्नूर सरकारी अस्पताल भेज दिया गया है और उसने वहां पर एक हीरो होन्डा पेशन मोटरसाइकिल भी देखी । घटनास्थल पर एक गार्ड को तैनात करने के पश्चात् उप निरीक्षक सरकारी अस्पताल, पोन्नूर के लिए रवाना हो गया जहां पहुंचकर उसे यह पता चला कि हेड कांस्टेबल सं. 690 (अभि. सा. 20) ने पहले ही शिकायतकर्ता का कथन अभिलिखित कर लिया है । अभि. सा. 1 का कथन छह बजे अपराह्न में अभिलिखित किया गया जैसा कि अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 23) द्वारा उसके अपने अभिसाक्ष्य में उल्लेख किया गया है । पुलिस द्वारा एक घन्टे के भीतर सूचना प्राप्त होने और 6 बजे अपराह्न तक साक्षियों के कथन अस्पताल में अभि. सा. 1 की मौजूदगी में अभिलिखित किए जाने से अभियोजन पक्षकथन की इस संबंध में संपुष्टि होती है कि घटना 4 बजे अपराह्न में घटित हुई थी और आहत को तत्काल अस्पताल भेज दिया गया था । आहत शिव शंकर राव की पोन्नूर अस्पताल में 5.30 बजे अपराह्न से 6 बजे अपराह्न के बीच मृत्यु हो गई थी, जिसके संबंध में मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट तत्काल तैयार की गई । इस प्रकार, हमारा यह मत है कि विचारण न्यायालय ने बिना किसी ठोस कारण के अभि. सा. 1 के साक्ष्य को त्यक्त किया है और उच्च न्यायालय ने अभि. सा. 1, जिसने अपने कथन में मृतकों और आहत साक्षियों अर्थात् दोनों पर किए गए हमलों की रीति से संबंधित सम्पूर्ण घटना का विस्तार से वर्णन किया है, के साक्ष्य का अवलंब लेने में कोई त्रुटि नहीं की है ।

27. अभि. सा. 2 के संबंध में विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि जब उप निरीक्षक (अभि. सा. 21) घटनास्थल पर गया, उसे अभि. सा. 2 घटनास्थल पर मौजूद नहीं मिला और अभि. सा. 1 ने यह सूचना दी है कि जब मृतक-2 और अभि. सा. 5 को सरकारी अस्पताल, पोन्नूर ले जाया जा रहा था, तब अभि. सा. 2 से प्रथम मृतक के शव के पास मौजूद रहने को कहा गया था । चूंकि अभि. सा. 2 का कथन सरकारी अस्पताल, पोन्नूर में अभिलिखित किया गया था इसलिए उसकी

अस्पताल में मौजूदगी को त्यक्त नहीं किया जा सकता । हमारा यह मत है कि अभि. सा. 2 घटनास्थल पर उस समय मौजूद नहीं पाया गया था जब अभि. सा. 21 घटनास्थल पर पहुंचा था, मात्र इस बात से यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि उसके प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य को त्यक्त कर दिया जाए ।

28. विचारण न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया है कि अभियोजन पक्ष ने यह तथ्य सिद्ध करने का प्रयास नहीं किया है कि तारीख 10 अक्तूबर, 2003 को अर्थात् घटना के दिन इन साक्षियों और मृतकों को पोन्नूर न्यायालय के समक्ष मौजूद होना चाहिए था । विचारण न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया है कि पोन्नूर न्यायालय में कुछ साक्षियों विशेषकर मृतक-1 की पुत्री अर्थात् कल्याणी (अभि. सा. 6) का मौजूद होना आवश्यक नहीं था । साक्ष्य में यह भी प्रस्तुत किया गया है कि वे सभी व्यक्ति जो पोन्नूर न्यायालय से वापस आ रहे थे, उनमें से कुछ व्यक्तियों का पोन्नूर न्यायालय में मौजूद होना आवश्यक नहीं था । साक्ष्य में यह भी प्रस्तुत किया गया है कि मृतक-2 और कुछ अन्य व्यक्ति जो तारीख 10 अक्तूबर, 2003 को वापस आ रहे थे, उन्हें सशर्त जमानत मंजूर की गई थी और उन्हें सप्ताह में एक बार न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत होना था । मात्र यह कारण कि अन्य कुछ व्यक्तियों को न्यायालय में प्रस्तुत होने की आवश्यकता नहीं थी किंतु फिर भी वे उन व्यक्तियों के साथ न्यायालय गए जिन्हें न्यायालय में प्रस्तुत होना था, न तो अप्राकृतिक और न ही असामान्य है । जब अभियुक्त पोन्नूर न्यायालय जा रहे थे तब उनके साथ उनके परिवार के अन्य सदस्य भी थे, इस बात में कोई भी ऐसी असामान्यता नहीं है जिसके आधार पर विचारण न्यायालय द्वारा प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जा सके ।

29. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों में से एक दलील यह भी है कि जो चिकित्सक न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत हुआ था उसे अपराध में प्रयोग किए जाने वाले आयुध को उसकी यह राय जानने के लिए नहीं दिखाया गया था कि क्या इस आयुध से ऐसी क्षति कारित की जा सकती है या नहीं । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने **करतारे और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले के पैरा 26 का अवलंब लिया और इस निर्णय का पैरा 25 इस प्रकार है :–

"25. ..... अभियोजन पक्ष और न्यायालय का यह कर्तव्य

---

[1] ए. आई. आर. 1976 एस. सी. 76 = (1976) 1 एस. सी. सी. 172.

है कि वे इस पर विचार करें कि अपराध में अभिकथित रूप से प्रयोग किया गया आयुध, यदि उपलब्ध है, चिकित्सा साक्षी को दिखाया जाए और उसकी इस संबंध में राय ली जाए कि क्या आहत के शरीर पर दिखाई देने वाली सभी क्षतियां या उनमें से कोई भी क्षति उस आयुध से कारित की जा सकती है या नहीं । ऐसा न किए जाने की स्थिति में कभी-कभी न्याय प्रक्रिया में बिगाड़ पैदा हो जाता है ..... ।"

30. वर्तमान मामले में डा. एन. सुब्बाराव (अभि. सा. 17) न्यायालय में प्रस्तुत हुए जिन्होंने तिरुपतिराव के शव का शवपरीक्षण किया था । इस चिकित्सक ने अपने कथन में यह उल्लेख किया है कि ये क्षतियां फरसे और चाकू से कारित की जा सकती हैं । अभि. सा. 18 ने शिव शंकर राव का शवपरीक्षण किया है । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि जो क्षतियां मैंने शवपरीक्षण रिपोर्ट में उल्लिखित की हैं, वे कुल्हाड़ी, फरसे और चाकू से कारित की जा सकती हैं । प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि अभियुक्तों ने कुल्हाड़ी, चाकू और डंडों का प्रयोग करते हुए मृतक-1 और मृतक-2 पर हमला किया था । मृतक-1 और मृतक-2 की शवपरीक्षण रिपोर्ट में जिन क्षतियों का उल्लेख किया गया है वे ऐसी क्षतियां हैं जो कुल्हाड़ी, चाकू और डंडों से कारित की जा सकती हैं । इस प्रकार, चिकित्सीय साक्ष्य और प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के साथ कोई भी असंगतता नहीं है । दोनों मृतकों की मृत्यु मानव वध प्रकृति की है । चिकित्सक (अभि. सा. 17) और चिकित्सक (अभि. सा. 18) ने शवपरीक्षण किया है और अभि. सा. 16 ने अभि. सा. 5 को कारित हुई क्षतियों के संबंध में साक्ष्य दिया है और इन सभी के साक्ष्य से यह प्रदर्शित होता है कि इन साक्षियों को वे आयुध नहीं दिखाए गए जिनसे क्षतियां कारित की गई थीं । अभि. सा. 17 ने तिरुपतिराव के शव पर जो बाह्य क्षतियां देखीं थीं उनका यहां उल्लेख किया जाना उचित होगा । अभि. सा. 17 के कथन में क्षतियों का निम्न प्रकार उल्लेख किया गया है :–

"तारीख 11 अक्तूबर, 2003 को लगभग 3 बजे अपराह्न में, मैंने सोमरोतु तिरुपतिराव नाम के एक पुरुष के शव का शवपरीक्षण किया था जो कि मृतक-1 है । बाहर से देखने में मृत्युकाठिन्य प्रतीत होता है तथा निम्न क्षतियां भी दिखाई देती हैं –

1. बाएं कान की लौ (लंबिका) पर तिरछी कटी हुई क्षति है जिसकी माप 11 से. मी. × 2 से. मी. तथा गहराई 1 से.

मी. है जो अनुकपालीय क्षेत्र तक फैली हुई है और नीचे की ओर गर्दन तक फैली हुई है ।

2. बाएं अनुकपालीय भाग में कटी हुई क्षति है जिसकी माप 12 से. मी. × 4 से. मी. है तथा गहराई अस्थि तक है । गहराई से विच्छेदन करने पर बाईं पार्श्व-कपालीय अस्थि में अस्थिभंग है ।

3. बाएं अग्र-पार्श्वकपालीय भाग में 5 से. मी. × 2 से. मी. कटी हुई क्षति मौजूद है जो करोटि तक गहरी है ।

4. बाईं जंघा पर 10 से. मी. × 5 से. मी. माप की कटी हुई क्षति मौजूद है जो त्वचा तक गहरी है ।

5. दाएं अग्रबाहु के पृष्ठ तल पर 20 से. मी. × 2 से. मी. माप की कटी हुई क्षति है जो हाथ के पृष्ठ तल तक फैली हुई है और इसकी गहराई 2.5 से. मी. है । गहराई से विच्छेद न करने पर अग्रबाहु की दोनों अस्थियों अर्थात् बहिष्प्रकोष्ठका और अन्तःप्रकोष्ठिका में अस्थिभंग पाया गया है ।

6. बाहु के एक-तिहाई ऊपरी भाग में 8 से. मी. × 5 से. मी. माप की कटी हुई क्षति पाई गई है जिसकी गहराई त्वचा तक है ।

7. बाएं कंधे के चारों ओर 8 से. मी. × 3 से. मी. माप की क्षति पाई गई है जिसकी गहराई 3.4 से. मी. है ; गहराई से विच्छेदन करने पर ह्युमरस अस्थि का मुण्ड विस्थापित दिखाई देता है ।

8. बाएं कंधे के नीचे की ओर 7 से. मी. × 2 से. मी. माप की कटी हुई क्षति पाई गई है जिसकी गहराई 2 से. मी. है ।

9. बाईं टांग पर 22 से. मी. × 10 से. मी. माप की सम्मर्दित क्षति है जिसकी गहराई अस्थि तक है । गहराई से विच्छेदन करने पर टांग की दोनों अस्थियों अर्थात् अन्तर्जंघिका और बहिर्जंघिका में अस्थिभंग पाया गया है ।

10. दाईं जांघ के मध्य में 8 से. मी. × 3 से. मी. माप की कटी हुई क्षति पाई गई है जिसकी गहराई अस्थि तक है । गहराई से विच्छेदन करने पर जंघास्थि के मध्य में अस्थिभंग

पाया गया है ।

11. पीठ के बाईं ओर पर असंफलकान्तरीय भाग में 10 से. मी. × 2 से. मी. माप की कटी हुई क्षति पाई गई है जिसकी गहराई त्वचा तक है ।

12. पीठ पर क्षति सं. 11 के नीचे 10 से. मी. × 2 से. मी. माप की कटी हुई क्षति पाई गई है जिसकी गहराई त्वचा तक है ।

13. पीठ के दाईं ओर (वक्ष के पीछे) 10 से. मी. × 2 से. मी. माप की कटी हुई क्षति पाई गई है जिसकी गहराई त्वचा तक है ।

14. कटि-प्रदेश के दाईं ओर 6 से. मी. × 2 से. मी. माप की वेध कर कारित की गई क्षति पाई गई है और गहराई से विच्छेदन करने पर अधो-पार्श्विक भाग में दाएं वृक्क पर 2 से. मी. × 1 से. मी. माप का विदीर्ण घाव दिखाई देता है ।

15. दाईं जंघा के पीछे की ओर 4 से. मी. व्यास की खरोंच वाली क्षति पाई गई है ।"

31. चिकित्सक (अभि. सा. 17) द्वारा देखी गई क्षतियों पर विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि ऊपर उल्लिखित कटावयुक्त क्षतियां कुल्हाड़ी, चाकू तथा फरसे से कारित की जा सकती हैं जिसके संबंध में चिकित्सक द्वारा राय भी दी गई है । यह तथ्य कि आयुधों को चिकित्सकों को नहीं दिखाया गया था और न ही उनकी प्रतिपरीक्षा के दौरान चिकित्सक का ध्यान इन आयुधों की ओर दिलाया गया था, यह बात वर्तमान मामले के तथ्यों के आधार पर अधिक महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि इस संबंध में स्पष्ट चिकित्सीय साक्ष्य है कि ये क्षतियां चाकू, कुल्हाड़ी और फरसे से कारित की जा सकती हैं । हमारे समक्ष यह दलील नहीं दी गई है कि चिकित्सकों द्वारा जो क्षतियां मृतक-1 और मृतक-2 के शवपरीक्षण के दौरान देखी गई हैं वे चाकू और कुल्हाड़ी से कारित की जा सकती हैं । यह भी दलील दी गई है कि चिकित्सकों से यह पूछा गया था कि फरसे से जो क्षति कारित की जाती है उसकी आकृति अर्ध चन्द्रमा जैसी होती है, चिकित्सक ने स्वयं अपनी रिपोर्ट में यह स्वीकार किया है कि उसने क्षतियों की गहराई, क्षतियों के मध्य भाग की स्थिति का उल्लेख नहीं किया है और न ही क्षतियों के किनारों के संबंध में कोई रिपोर्ट दी है । चिकित्सक ने किसी भी क्षति की आकृति अर्ध चन्द्रमा जैसी नहीं बताई है । चिकित्सक ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि उसने क्षतियों की आकृति, गहराई और

क्षतियों के मध्य भाग का वर्णन नहीं किया है । उपर्युक्त चिकित्सीय साक्ष्य से यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि जो क्षतियां चिकित्सकों द्वारा देखी गई हैं वे कुल्हाड़ी, चाकू और फरसे से कारित नहीं की जा सकती हैं । प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अर्थात् अभि. सा. 1, 2, 3 और 5 ने स्पष्ट रूप से अभियुक्तों द्वारा प्रयोग किए गए आयुधों के संबंध में उल्लेख किया है और उनका यह प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य चिकित्सीय साक्ष्य के अनुसरण में है । इस प्रकार, चिकित्सकों का कथन न्यायालय में अभिलिखित किए जाने के समय पर उन्हें आयुधों के न दिखाए जाने से कोई भी फर्क नहीं पड़ता है और अभियोजन पक्षकथन किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं होता है । विचारण न्यायालय द्वारा प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के कथनों में आए विरोधाभासों को निर्दिष्ट किया गया है जोकि अपारिणामिक हैं । लंबा समय के बीत जाने के बाद प्रत्यक्षदर्शी साक्षी प्रत्येक अभियुक्त द्वारा कारित की गई क्षतियों का अलग-अलग वर्णन नहीं कर सकते और उनके साक्ष्य में आई छोटी-मोटी असंगतताओं से कोई भी फर्क नहीं पड़ता है । **चन्द्रप्पा और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट करना उचित होगा । इस निर्णय का पैरा 17 और 18 निम्न प्रकार है :–

> "17. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह प्रतिवाद किया गया है कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के कथनों के बीच आए विरोधाभासों से यह दर्शित होता है कि उन्होंने घटना नहीं देखी है और इस प्रकार इन साक्षियों के परिसाक्ष्य का अवलंब नहीं लिया जा सकता । यह दलील दी गई है कि उनके कथन हमला करने की वास्तविक रीति और प्रत्येक अभियुक्त द्वारा मृतक एवं अभि. सा. 3 को कारित की गई क्षतियों को लेकर विरोधाभासी हैं । हमारी यह राय है कि ऐसे मामलों में साक्षी से यह प्रत्याशा करना कि वह प्रत्येक अभियुक्त द्वारा मृतक या आहतों को कारित की गई क्षतियों के संबंध में बिल्कुल सटीक चित्रण करें, अयुक्तियुक्त होगा जबकि अभिलेख पर यह साबित किया गया है कि क्षतियां अनेक अभियुक्तों द्वारा कारित कीं गई हैं जिनके पास भिन्न-भिन्न प्रकार के आयुध थे ।
>
> 18. हमने यह भी निष्कर्ष निकाला है कि समय बीतने के साथ-साथ साक्षी की स्मरण शक्ति दुर्बल होने लगती है और साक्षियों के लिए बिल्कुल स्पष्ट रूप से घटना को पुनः याद करना कठिन होता है ।

---

[1] (2008) 11 एस. सी. सी. 328.

हमने अभिलेख का परिशीलन किया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि घटना घटित होने के पांच वर्ष से भी अधिक समय के बाद साक्ष्य अभिलिखित किया गया है और यदि प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों की स्मरण शक्ति आंशिक रूप से असफल हो गई है और यदि वे क्षतियों का स्पष्ट वर्णन नहीं कर पाए हैं, तब भी उनके साक्ष्य का मूल आधार विचलित नहीं हुआ है । तथापि, यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि अभि. सा. 2 चार अपीलार्थियों, मृतक और देवेन्द्रप्पा (अभि. सा. 3) की बहिन है और भाइयों के बीच विवाद के दौरान वह अपने पिता नवीलापा के साथ रहती रही जो अपीलार्थियों के साथ रहता था, किंतु इस महिला ने फिर भी अभियोजन पक्षकथन का समर्थन नहीं किया है । हमारी यह राय है कि सामान्य परिस्थितियों में वह महिला अपीलार्थियों के विरुद्ध साक्ष्य नहीं देती किंतु उसने प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के रूप में साक्ष्य दिया है और अभियोजन पक्षकथन का सभी महत्वपूर्ण बातों के संबंध में समर्थन किया है ।"

32. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने **एकनाथ गणपत अहेर और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का भी अवलंब लिया है । इस मामले के समर्थन में यह उल्लेख किया गया है कि सामूहिक प्रतिद्वन्द्विता और शत्रुता के मामले में यह आम बात है कि अपराध में भाग लिए जाने से संबंधित अधिक से अधिक व्यक्तियों को आलिप्त किया जाता है । इस निर्णय के पैरा 26 में अधिकथित उपरोक्त प्रतिपादना में कोई भी विवाद नहीं हो सकता जो निम्न प्रकार उद्धरित की जा रही है :–

"26. यह स्वीकृत प्रतिपादना है कि सामूहिक प्रतिद्वन्द्विता और शत्रुता के मामले में यह आम बात है कि अधिक से अधिक व्यक्तियों को अपराध में भाग लिए जाने से संबंधित आलिप्त किया जाता है । ऐसी परिस्थितियों में न्यायालयों को अत्यंत सचेत रहना चाहिए और साक्ष्य की सावधानीपूर्वक संवीक्षा करनी चाहिए । साक्ष्य की बारीकी से परीक्षा करने के पश्चात् यदि न्यायालय को अपराध में आलिप्त किए गए व्यक्तियों द्वारा भाग लेने से संबंधित युक्तियुक्त संदेह होता है तब न्यायालय को अभियुक्तों को संदेह का लाभ देना होगा ।"

---

[1] (2010) 6 एस. सी. सी. 519.

33. तथापि, यदि आहत साक्षी सहित ऐसे प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों ने साक्ष्य दिया है जिन्होंने अभियोजन पक्षकथन का पूरी तरह समर्थन किया है और भिन्न-भिन्न अभियुक्तों की अपराध में भूमिका साबित की है, तब ऐसी स्थिति में अभियोजन पक्षकथन को मात्र इस आधार पर नकारा नहीं जा सकता कि यह एक सामूहिक प्रतिद्वन्द्विता का मामला है । सामूहिक प्रतिद्वन्द्विता एक दोधारी तलवार है ।

34. अन्त में, विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अपील न्यायालय की शक्ति भी ऐसी स्थिति में सीमित है जब दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध इसका प्रयोग किया जा रहा हो । विद्वान् काउंसेल ने **धनपाल** बनाम **राज्य द्वारा लोक अभियोजक, मद्रास**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया है । इस निर्णय के पैरा 21, 22, 39 और 41 में निम्न मत व्यक्त किया गया है :–

> "21. विचारण न्यायालय के निर्णय का समुचित रूप से मूल्यांकन करने के पश्चात्, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत निश्चित रूप से एक संभव या तर्कसम्मत मत है । यह विधि की सुस्थापित स्थिति है कि विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत एक संभव मत है, तब ऐसी स्थिति में उच्च न्यायालय द्वारा मात्र कारणों को प्रतिस्थापित करके दोषमुक्ति को अपास्त नहीं किया जा सकता । हमारी सुविचारित राय में, उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय विधि की सुस्थापित विधि के प्रतिकूल है और यह अपास्त किया जाना चाहिए ।
>
> 22. शिव स्वरूप **बनाम** सम्राट वाले पूर्वतम मामले में इस मुद्दे से संबंधित संविवाद पर विस्तार से विचार किया गया है । इस मामले में, अपील न्यायालय की व्यापकता, कार्यक्षेत्र और शक्तियों पर प्रिवी कौंसिल द्वारा व्यापकार्थक रूप में विचार किया गया है । लार्ड रसैल ने निर्णय देते हुए निम्न मत व्यक्त किया है (आई. ए. पृष्ठ 404) –
>
> > ..... उच्च न्यायालय को जिन परिस्थितियों पर समुचित रूप से विचार करने के लिए महत्व देना चाहिए वे इस प्रकार हैं – (1) साक्ष्य की विश्वसनीयता से संबंधित विचारण न्यायाधीश का मत ; (2) अभियुक्त के पक्ष में निर्दोषिता की उपधारणा, निश्चित रूप से ऐसी उपधारणा इस तथ्य से निर्बल

[1] (2009) 10 एस. सी. सी. 401.

नहीं हो सकती कि उसे उसके विचारण के दौरान दोषमुक्त किया गया है ; (3) संदेह के आधार पर अभियुक्त को मिलने वाला लाभ ; और (4) ऐसे न्यायाधीश द्वारा निकाले गए निष्कर्षों पर विचार करने में अपील न्यायालय की ओर से बरती गई सुस्ती जिसने अभियुक्तों को विचारण के दौरान स्वयं देखा था ।

इस मामले में बनाए गए विधिक सूत्र का प्रयोग इस न्यायालय के पश्चात्वर्ती निर्णयों में किया गया है ।

39. उपरोक्त मामलों से निम्न सिद्धांत उद्भूत होते हैं –

1. अभियुक्त को निर्दोष ही उपधारित किया जाता है जब तक कि उसे दोषी साबित न कर दिया जाए । अभियुक्त को यह उपधारणा विचारण न्यायालय के समक्ष ही प्राप्त हो जाती है । विचारण न्यायालय द्वारा की गई दोषमुक्ति से उसके निर्दोष होने की उपधारणा और अधिक प्रबलित हो जाती है ।

2. साक्ष्य का पुनर्विलोकन करने की शक्ति व्यापक है और अपील न्यायालय अभिलेख पर प्रस्तुत सम्पूर्ण साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन कर सकता है । अपील न्यायालय तथ्यों और विधि दोनों को दृष्टिगत करते हुए विचारण न्यायालय के निष्कर्ष पर विचार कर सकता है किंतु अपील न्यायालय को विचारण न्यायालय के विनिश्चय को महत्व देना चाहिए ।

3. अपील न्यायालय को सदैव यह ध्यान में रखना चाहिए कि विचारण न्यायालय को साक्षियों के हाव-भाव समझने का एक विशिष्ट अवसर प्राप्त था । विचारण न्यायालय साक्षियों की विश्वसनीयता का मूल्यांकन करने के लिए अन्य न्यायालय की तुलना में बेहतर स्थिति में होता है ।

4. अपील न्यायालय विचारण न्यायालय द्वारा की गई दोषमुक्ति के आदेश को अभिखंडित या उसमें हस्तक्षेप केवल तभी कर सकता है जब ऐसा करने के लिए अत्यंत सारभूत और आबद्धकारी कारण हों ।

5. यदि दो युक्तियुक्त या संभव मत व्यक्त किए जा सकते हों अर्थात् एक वह जो दोषमुक्ति के पक्ष में हो और दूसरा वह जिससे दोषसिद्धि की जा सके तब उच्च

न्यायालय/अपील न्यायालय को अभियुक्त के पक्ष में जाने वाले मत पर कार्यवाही करनी चाहिए ।

41. ऊपर स्पष्ट की गई सुस्थापित विधिक स्थिति यह है कि यदि विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत संभव या तर्कसम्मत मत है, तब उच्च न्यायालय को अपने मत द्वारा विचारण न्यायालय के मत को प्रतिस्थापित नहीं करना चाहिए । इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, विचारण न्यायालय के युक्तियुक्त निर्णय में हस्तक्षेप करके उच्च न्यायालय ने अपने आक्षेपित निर्णय द्वारा न्यायोचित नहीं किया है । परिणामस्वरूप, अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई यह अपील मंजूर की जाती है और इसका निपटारा भी किया जाता है तथा उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया निर्णय अपास्त किया जाता है ।"

35. **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **अनिल सिंह**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यद्यपि युक्तियुक्त रूप से दो मत संभव हैं अर्थात् एक दोषसिद्धि तथा दूसरा दोषमुक्ति के पक्ष में, फिर भी यह न्यायालय दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करेगा किंतु न्यायालय कभी भी ऐसे मामले में हस्तक्षेप करने में संकोच नहीं करेगा जिसमें की गई दोषमुक्ति अनुचित हो अर्थात् जिस पर किसी भी युक्तियुक्त व्यक्ति का विचार दोषमुक्ति के पक्ष में न हो, या दोषमुक्ति स्पष्ट रूप से अवैध अथवा अनुचित रूप से की गई हो । इस निर्णय के पैरा 14 में निम्न मत व्यक्त किया गया है :–

"14. संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अपील की व्यापकता निर्विवादित रूप से अत्यंत सीमित है । यह न्यायालय अनुच्छेद 136 के अधीन साक्ष्य का मूल्यांकन करने के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग करने की सीमा के परे नहीं जा सकता । न्यायालय साक्ष्य का समुचित रूप से मूल्यांकन किए जाने पर निकाले गए समवर्ती निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं कर सकता । यदि युक्तियुक्त रूप से दो मत संभव हैं अर्थात् एक मत दोषसिद्धि के पक्ष में और दूसरा दोषमुक्ति के पक्ष में तब न्यायालय को दोषमुक्ति के पक्ष में किए गए आदेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए (उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** जशोदा नंदन गुप्ता ; आन्ध्र प्रदेश राज्य **बनाम** अंजनेयुलु वाले मामले देखिए) । किंतु यह

---

[1] (1988) (सप्ली.) एस. सी. सी. 686.

न्यायालय ऐसे मामले में हस्तक्षेप करने से संकोच नहीं करेगा जिसमें दोषमुक्ति का आदेश इतना अनुचित हो कि कोई भी युक्तियुक्त व्यक्ति इस निष्कर्ष पर न पहुंच सके कि दोषमुक्ति उचित है या अपील न्यायालय दोषमुक्ति के ऐसे आदेश में हस्तक्षेप करने से संकोच नहीं करेगा जब दोषमुक्ति का आदेश स्पष्ट रूप से अवैध या अनुचित हो ।"

36. वर्तमान मामला ऐसा मामला है जिसमें उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 386 के अधीन अपनी अपीली शक्ति का प्रयोग किया है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 386 के अधीन अपीली शक्ति का प्रयोग करने में उच्च न्यायालय को दोषमुक्ति के आदेश को उलटने के लिए पूर्ण शक्ति प्राप्त है और यदि अभियुक्त दोषी पाए जाते हैं तब वे विधि के अनुसार दंडादिष्ट किए जा सकते हैं ।

37. वर्तमान मामला एक ऐसा मामला है जिसमें आहत साक्षी और अन्य प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य को त्यक्त करने में विचारण न्यायालय को अनुचित पाया गया है । इस प्रकार हमारी राय में उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति के आदेश को उलटने और अभियुक्तों को दोषसिद्ध करनें में कोई भी त्रुटि कारित नहीं की है । प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य से, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है और उच्च न्यायालय द्वारा अपने निर्णय में दिए गए कारणों के आधार पर, हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति के आदेश को अपास्त करके और अभियुक्तों को दोषसिद्ध करके ठीक ही किया है ।

38. इन अपीलों में कोई सार नहीं है । दोनों अपीलें खारिज की जाती हैं ।

अपीलें खारिज की गईं ।

अस./पा.

[2017] 4 उम. नि. प. 146

राज तलरेजा

बनाम

कविता तलरेजा

24 अप्रैल, 2017

न्यायमूर्ति आदर्श कुमार गोयल और न्यायमूर्ति दीपक गुप्ता

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13(1)(ia) – क्रूरता के आधार पर पति द्वारा पत्नी के विरुद्ध विवाह-विच्छेद की डिक्री की ईप्सा – पत्नी द्वारा पति, उसके परिवार के सदस्यों के विरुद्ध मानहानिकारक अभियोग लगाया जाना – जांच करने पर सभी अभियोग मिथ्या पाया जाना और पत्नी के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही आरंभ किया जाना – निचले न्यायालयों द्वारा पत्नी की शिकायत को मिथ्या और असद्भाविक न मानते हुए पति की विवाह-विच्छेद की अर्जी खारिज किया जाना – यदि यह पाया जाता है कि अभिकथन स्पष्ट रूप से मिथ्या हैं तब निस्संदेह पति या पत्नी द्वारा एक-दूसरे के विरुद्ध मिथ्या अभियोग लगाने का ऐसा आचरण क्रूरता का कृत्य होगा और चूंकि इस मामले में पत्नी के सभी अभिकथन मिथ्या पाए गए हैं इसलिए विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करके विवाह का विघटन करना उचित होगा ।

अपील के पक्षकारों का विवाह वर्ष 1989 में हिन्दू रीति-रिवाज के अनुसार हुआ था । वर्ष 1999 तक पति और पत्नी दोनों एक साथ पति के माता-पिता के साथ रहे । वर्ष 1999 में यह दंपत्ति अपने स्वयं के आवास में स्थानांतरित हो गया । तारीख 19 मार्च, 2000 को पति ने दांपत्य-गृह छोड़ दिया और उसके ठीक पश्चात् तारीख 25 मार्च, 2000 को विवाह का विघटन करने के लिए विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान करने हेतु एक अर्जी फाइल की । पत्नी ने इस व्यादेश के लिए प्रार्थना करते हुए एक वाद फाइल किया कि पति को दांपत्य-गृह में प्रवेश करने के लिए अनुज्ञात न किया जाए । तारीख 7 नवंबर, 2000 को समाचार-पत्रों में कतिपय समाचार प्रकाशित हुए, जिनमें पति के विरुद्ध गंभीर अभिकथन किए गए । उसके पश्चात्, तारीख 5 दिसंबर, 2000 को उसने इसी प्रकार का एक पत्र उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तथा पुलिस अधीक्षक को भेजा । तारीख 16 मार्च, 2001 को ये शिकायतें मिथ्या पाई गईं । तारीख 12 अप्रैल, 2001 को पत्नी की प्रेरणा पर अपीलार्थी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा

452, 323 और 341 के अधीन एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई । पुलिस ने मामले का अन्वेषण किया और यह उल्लेख करते हुए तारीख 30 अप्रैल, 2001 को रिपोर्ट फाइल की कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में कोई सार नहीं है । पुलिस के अनुसार, पत्नी के शरीर पर क्षतियां स्वयं पहुंचाई गई क्षतियां हैं और उसने एक मिथ्या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल की है । यह सिफारिश की गई कि उसके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 182 के अधीन दांडिक कार्यवाहियां आरंभ की जाएं । यह विवादग्रस्त नहीं है कि तारीख 16 मार्च, 2001 तक पत्नी के विरुद्ध ये दांडिक कार्यवाहियां आरंभ हो गई थीं । पति ने विवाह-विच्छेद की अर्जी में इन सभी तथ्यों को सम्मिलित करने के लिए संशोधन आवेदन दिया और इसमें यह अभिकथन किया कि विभिन्न प्राधिकारियों के समक्ष मिथ्या शिकायतें फाइल करने के कारण पत्नी द्वारा उसके साथ क्रूरता की गई । विद्वान् विचारण न्यायाधीश द्वारा विवाह-विच्छेद की अर्जी को खारिज कर दिया गया । पति द्वारा उच्च न्यायालय में फाइल की गई अपील भी खारिज कर दी गई । इससे व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रस्तुत मामले में, उपरोक्त वर्णित तथ्यों से यह स्पष्ट है कि पत्नी ने अपने पति, उसके परिवार के सदस्यों और सहयोगियों के विरुद्ध अंधाधुंध, मानहानिकारक और मिथ्या अभियोग लगाए, जिनसे उसके समकक्ष व्यक्तियों की दृष्टि में उसकी ख्याति निश्चित रूप से कम हुई होगी । यदि शिकायतें फाइल करने के उचित कारण हैं, तो केवल शिकायतें फाइल करना क्रूरता नहीं है । केवल इस कारण कि शिकायत पर कोई कार्रवाई नहीं की गई या विचारण के पश्चात् अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया जाता है, तो पत्नी के ऐसे अभियोगों को हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 के अर्थांतर्गत क्रूरता के आधार के रूप में नहीं माना जा सकता है । तथापि, यदि यह पाया जाता है कि अभिकथन स्पष्ट रूप से मिथ्या हैं, तब किसी प्रकार का संदेह नहीं हो सकता है कि पति द्वारा पत्नी के विरुद्ध या पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध मिथ्या अभियोग लगाने का उक्त आचरण क्रूरता का कृत्य होगा । इस मामले में सभी अभिकथन मिथ्या पाए गए थे । बाद में उसने यह अभिकथन करते हुए एक अन्य शिकायत फाइल की कि उसके पति के साथ-साथ कुछ अन्य व्यक्तियों ने उसके मकान में अतिचार और उस पर हमला किया था । अन्वेषण करने पर पुलिस ने यह पाया कि न केवल शिकायत मिथ्या है अपितु क्षतियां पत्नी द्वारा स्वयं कारित की गई हैं । उसके पश्चात् पत्नी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 182 के

अधीन कार्यवाहियां आरंभ की गईं । इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय का परिशीलन किया । उच्च न्यायालय ने मिथ्या शिकायतों के अभिवाक् पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि यह अभिनिर्धारित करने का कोई कारण नहीं है कि प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा फाइल की गई आपराधिक शिकायत मिथ्या और असद्भाविक थी । यह न्यायालय उच्च न्यायालय और निचले न्यायालय के इस निष्कर्ष से सहमत नहीं है । दोनों निचले न्यायालयों ने पत्नी के इस कथन का अवलंब लिया है कि उसका पति प्रायः उसके घर आता रहता था और उसने अपने वैवाहिक दायित्वों को पूर्ण किया है । ये मताभिव्यक्तियां अभिलेख पर के किसी विश्वसनीय या सटीक साक्ष्य पर आधारित नहीं हैं । यद्यपि इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि पति के विरुद्ध मिथ्या शिकायतें फाइल करने के पत्नी के कृत्य क्रूरता की कोटि में आते हैं, तथापि, न्यायालय पत्नी की आवश्यकताओं के प्रति अचेत नहीं है कि उसके पास एक काफी अच्छा मकान हो जहां वह रह सके । उसका पुत्र और पुत्रवधु हो सकता है सदैव उसके साथ न रहें । इसलिए उसके निर्वाह व्यय और निवास-स्थान के लिए कुछ स्थायी व्यवस्था की जानी चाहिए । पक्षकारों की प्रास्थिति को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय यह निदेश देता है कि पति 50,00,000/- रुपए (पचास लाख रुपए केवल) एकमुश्त निर्वाह व्यय के रूप में पत्नी को संदाय करेगा और वह किसी पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर किसी और रकम का दावा नहीं करेगी । यह रकम आज से तीन माह के भीतर संदत्त की जाए । यह भी निदेश दिया जाता है कि पत्नी तब तक उसी मकान में रहना जारी रखेगी, जो पति की माता का है, जब तक पति वैसे ही अवस्थान में समान आकार का फ्लैट उपलब्ध नहीं कराता है । इस प्रयोजन के लिए, पति को निदेश दिया जाता है कि यह सुनिश्चित करे कि 1,00,00,000/- रुपए (एक करोड़ रुपए केवल) तक के मूल्य का फ्लैट अपनी पत्नी के नाम में अंतरित किया जाए और जब तक यह उपलब्ध कराया जाता है, तब तक वह उसी मकान में रहना जारी रखेगी जिसमें वह फिलहाल रह रही है । तद्नुसार, यह अपील मंजूर की जाती है । उच्च न्यायालय द्वारा 2004 की खंड न्यायपीठ सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 1432 में तारीख 1 मार्च, 2013 को पारित किए गए निर्णय और आदेश तथा कुटुम्ब न्यायालय, उदयपुर द्वारा 2000 के सिविल मामला सं. 56 में तारीख 5 अगस्त, 2004 को पारित निर्णय और डिक्री अपास्त किए जाते हैं । पति द्वारा अधिनियम की धारा 13 के अधीन फाइल की गई विवाह-विच्छेद की अर्जी डिक्रीत की जाती है और तारीख 13 अप्रैल, 1989 को संपन्न हुआ पक्षकारों का विवाह विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विघटित किया जाता है । (पैरा 10, 11, 12 और 13)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2013] (2013) 5 एस. सी. सी. 226 :
के. श्रीनिवास राव बनाम **डी. ए. दीपा** ; 9

[2010] (2010) 4 एस. सी. सी. 476 :
रवि कुमार बनाम **जुल्मी देवी** । 9

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2013 की सिविल अपील सं. 10719.

2004 की खंड न्यायपीठ सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 1432 में राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर के तारीख 1 मार्च, 2013 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री गौरव अग्रवाल और एस. के. वर्मा

प्रत्यर्थी की ओर से सुश्री विभा दत्ता मखीजा, ज्येष्ठ अधिवक्ता, श्री अक्षत श्रीवास्तव और सुश्री दिशा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति दीपक गुप्ता ने दिया ।

न्या. गुप्ता – अपील के पक्षकारों का विवाह वर्ष 1989 में हिन्दू रीति-रिवाज के अनुसार हुआ था । इस विवाह-बंधन से वर्ष 1990 में एक पुत्र का जन्म हुआ । यह विवादग्रस्त नहीं है कि वर्ष 1999 तक पति और पत्नी दोनों एक साथ पति के माता-पिता के साथ रहे । वर्ष 1999 में यह दंपत्ति अपने स्वयं के आवास में स्थानांतरित हो गया । तारीख 19 मार्च, 2000 को पति ने दांपत्य-गृह छोड़ दिया और उसके ठीक पश्चात् तारीख 25 मार्च, 2000 को विवाह का विघटन करने के लिए विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान करने हेतु एक अर्जी फाइल की ।

2. यह विवादग्रस्त नहीं है कि पत्नी ने इस व्यादेश के लिए प्रार्थना करते हुए एक वाद फाइल किया कि पति को दांपत्य-गृह में प्रवेश करने के लिए अनुज्ञात न किया जाए । तारीख 7 नवंबर, 2000 को समाचार-पत्रों में कतिपय समाचार प्रकाशित हुए, जिनमें पति के विरुद्ध गंभीर अभिकथन किए गए थे । उसके पश्चात्, तारीख 5 दिसंबर, 2000 को उसने इसी प्रकार का एक पत्र उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तथा पुलिस अधीक्षक को भेजा । अंततः, तारीख 7 दिसंबर, 2000 को उसने मुख्यमंत्री को एक अन्य शिकायत की । तारीख 16 मार्च, 2001 को ये शिकायतें मिथ्या पाई गईं । तारीख 12 अप्रैल, 2001 को पत्नी की प्रेरणा पर अपीलार्थी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 452, 323 और 341 के अधीन एक प्रथम

इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई । पुलिस ने मामले का अन्वेषण किया और यह उल्लेख करते हुए तारीख 30 अप्रैल, 2001 को रिपोर्ट फाइल की कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में कोई सार नहीं है । पुलिस के अनुसार, पत्नी के शरीर पर क्षतियां स्वयं पहुंचाई गई क्षतियां हैं और उसने एक मिथ्या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल की है । यह सिफारिश की जाती है कि उसके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 182 के अधीन दांडिक कार्यवाहियां आरंभ की जाएं । यह विवादग्रस्त नहीं है कि तारीख 16 मार्च, 2001 तक पत्नी के विरुद्ध ये दांडिक कार्यवाहियां आरंभ हो गई थीं ।

3. पति ने विवाह-विच्छेद की अर्जी में इन सभी तथ्यों को सम्मिलित करने के लिए संशोधन आवेदन दिया और इसमें यह अभिकथन किया कि विभिन्न प्राधिकारियों के समक्ष मिथ्या शिकायतें फाइल करने के कारण पत्नी द्वारा उसके साथ क्रूरता की गई । हमारे समक्ष उठाया गया यही एकमात्र मुद्दा है । विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने अर्जी खारिज कर दी । पति द्वारा फाइल की गई अपील भी खारिज कर दी गई । इसलिए यह अपील फाइल की गई है ।

4. यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि पुलिस द्वारा अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने और पत्नी के विरुद्ध कार्यवाहियां आरंभ करने के 11 वर्ष पश्चात् पत्नी ने वर्ष 2012 में पति के विरुद्ध प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के रद्दकरण के विरुद्ध अभ्यापति आवेदन फाइल किया, जिसमें निचले न्यायालय द्वारा नोटिस जारी किया गया । तथापि, पति द्वारा पुनरीक्षण फाइल करने पर पुनरीक्षण न्यायालय ने पुनरीक्षण आवेदन मंजूर किया और विचारण न्यायालय के आदेश को अभिखंडित कर दिया । परिणामतः, पति के विरुद्ध कोई दांडिक कार्यवाहियां लंबित नहीं हैं ।

5. हमने अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री गौरव अग्रवाल तथा प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल सुश्री विभा दत्ता मखीजा को सुना ।

6. विद्वान् काउंसेल श्री अग्रवाल ने यह दलील दी कि पति के विरुद्ध मानहानिकारक अभिकथन करने और मिथ्या शिकायतें फाइल करने के पत्नी के कृत्य क्रूरता की कोटि में आते हैं । दूसरी ओर, विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल सुश्री मखीजा ने यह दलील दी कि उसकी मुवक्किल का कोई दोष नहीं है और क्रूरता की बात को साबित नहीं किया गया है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि उसकी मुवक्किल एक वैध रूप से विवाहित स्त्री होने की प्रास्थिति चाहती है और उसकी प्रार्थना है कि यह अपील खारिज कर दी जाए ।

7. अब हम पति द्वारा अवलंब लिए गए साक्ष्य को निर्दिष्ट कर सकते हैं । प्रथम साक्ष्य तारीख 7 नवंबर, 2000 के समाचार-पत्र की वह रिपोर्ट है जिसमें यह कहा गया है कि पत्नी ने यह अभिकथन किया है कि दहेज की मांग पूरी न करने पर उसके पति और पति के परिवार के सदस्यों द्वारा उसकी कई बार पिटाई की गई । यह अभिकथन किए गए कि उसे अनाथ की तरह रखा जाता था और उसे दो बार आग लगाने का प्रयत्न किया गया । ये अभिकथन पत्नी द्वारा पुलिस को भेजे गए पत्र में किए गए थे । उसके पश्चात्, पत्नी ने इसी प्रकार की शिकायत राज्य महिला आयोग, राजस्थान सहित विभिन्न प्राधिकारियों को भेजी । उसने पुन: राजस्थान उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को यह अभिकथन करते हुए एक तार भेजा कि उसके पति और सास-ससुर ने उसे जलाने का प्रयत्न किया तथा उसे समाप्त करने के लिए गुण्डे लगाए । राजस्थान के मुख्यमंत्री को भी शिकायत की गई । मामला पुलिस को निर्दिष्ट किया गया । पुलिस द्वारा अन्वेषण करने पर अभिकथन पूरी तरह मिथ्या पाए गए । उसके पश्चात्, पत्नी ने अपने पति और तीन अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध एक शिकायत फाइल की जिसमें उनके विरुद्ध गृह-अतिचार और उस पर हमला करने तथा मकान छोड़ने की धमकी देने के अभिकथन किए गए । इस मामले में भी पुलिस की अंतिम रिपोर्ट यह है कि शिकायत निराधार और मिथ्या है तथा क्षतियां स्वयं कारित की गई हैं ।

8. जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, पुलिस के इन निष्कर्षों ने अंतिमता प्राप्त कर ली है और आज की तारीख में पति के विरुद्ध कोई दांडिक मामला लंबित नहीं है । यह बात अति स्पष्ट है कि पत्नी द्वारा लगाए गए अभिकथन मिथ्या हैं । यह सत्य हो सकता है ये अभिकथन विवाह-विच्छेद की अर्जी फाइल करने के पश्चात् किए गए हों और पत्नी उत्तेजित मानसिक दशा में रही हो । तथापि, यह बात पति के विरुद्ध मानहानिकारक कथन करने का अधिकार नहीं देती । इन अभिकथनों का मिथ्यापन इस तथ्य से प्रकट होता है कि पुलिस ने इस मामले का विचारण तक करने के लिए एक उपयुक्त मामला नहीं पाया था । पुलिस द्वारा अपनी रद्दकरण रिपोर्ट फाइल करने के पश्चात् पत्नी मौन रही और उसने 11 वर्ष पश्चात् एक अभ्यापति आवेदन फाइल किया ।

9. **के. श्रीनिवास राव** बनाम **डी. ए. दीपा**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

"16. अत:, समर घोष **बनाम** जया घोष [(2007) 4 एस. सी.

---

[1] (2013) 5 एस. सी. सी. 226.

सी. 511] वाले मामले में उल्लिखित मानसिक क्रूरता के दृष्टांतस्वरूप उदाहरणों में हम कुछ और जोड़ सकते हैं । अभिवचनों में पति या पत्नी अथवा पति या पत्नी के नातेदारों के विरुद्ध निराधार अशिष्ट मानहानिकारक अभिकथन करना, ऐसी शिकायतें फाइल करना या ऐसी सूचनाएं या समाचार जारी करना जिनसे पति या पत्नी के कारबार के भविष्य पर अथवा पति या पत्नी की नौकरी पर प्रतिकूल असर पड़ सकता है तथा पति या पत्नी के विरुद्ध न्यायालय में बार-बार मिथ्या परिवाद और मामले फाइल करना, मामले के तथ्यों में, पति द्वारा पत्नी को या पत्नी द्वारा पति को मानसिक क्रूरता कारित करने की कोटि में आएगा ।"

रवि कुमार बनाम **जुल्मी देवी**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने क्रूरता की परिभाषा पर विचार करते हुए निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

"19. यह सत्य हो सकता है कि उक्त अधिनियम में क्रूरता की कोई परिभाषा नहीं दी गई है । वास्तव में ऐसी कोई परिभाषा देना संभव नहीं है । वैवाहिक संबंधों में क्रूरता का स्पष्ट रूप से अर्थ पतियों या पत्नियों के बीच पारस्परिक आदर और समझबूझ का ऐसा अभाव होना है जिससे संबंधों में कटुता आ जाती है और प्रायः विभिन्न प्रकार का ऐसा कठोर व्यवहार किया जाता है जिसे क्रूरता की संज्ञा दी जा सकती है । वैवाहिक संबंधों में क्रूरता कभी-कभी हिंसा का रूप ले सकती है और कभी-कभी कोई अलग रूप ले सकती है । कभी-कभार यह केवल एक मन:स्थिति या एक दृष्टिकोण हो सकती है । कुछ परिस्थितियों में चुप्पी क्रूरता की कोटि में आ सकती है ।

20. अत: वैवाहिक आचरण में क्रूरता की कोई परिभाषा देना कठिन है और इसके प्रवर्गों का कदापि अंत नहीं हो सकता है । पति अपनी पत्नी के प्रति क्रूर है या पत्नी अपने पति के प्रति क्रूर है, यह प्रस्तुत मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करके अभिनिश्चित और तय किया जाना चाहिए न कि किसी पूर्व-निर्धारित कठोर सिद्धांत द्वारा ।

वैवाहिक मामलों में क्रूरता असीमित प्रकार की हो सकती है – यह हल्की या पाश्विक हो सकती है और अंग-विक्षेप और शब्दों के द्वारा हो सकती है । इससे संभवत: यह स्पष्ट होता है कि शेलडन

[1] (2010) 4 एस. सी. सी. 476.

बनाम शेलडन [(1960) 2 डब्ल्यू. एल. आर. 993] वाले मामले में क्यों लार्ड डेनिंग ने यह अभिनिर्धारित किया कि वैवाहिक मामलों में क्रूरता के प्रवर्गों का कदापि अंत नहीं हो सकता है ।"

10. क्रूरता को कदापि स्टीकतापूर्वक परिभाषित नहीं किया जा सकता है । क्रूरता क्या है यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा । प्रस्तुत मामले में, उपरोक्त वर्णित तथ्यों से यह स्पष्ट है कि पत्नी ने अपने पति, उसके परिवार के सदस्यों और सहयोगियों के विरुद्ध अंधाधुंध, मानहानिकारक और मिथ्या अभियोग लगाए, जिनसे उसके समकक्ष व्यक्तियों की दृष्टि में उसकी ख्याति निश्चित रूप से कम हुई होगी । यदि शिकायतें फाइल करने के उचित कारण हैं, तो केवल शिकायतें फाइल करना क्रूरता नहीं है । केवल इस कारण कि शिकायत पर कोई कार्रवाई नहीं की गई या विचारण के पश्चात् अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया जाता है, तो पत्नी के ऐसे अभियोगों को हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) के अर्थांतर्गत क्रूरता के आधार के रूप में नहीं माना जा सकता है । तथापि, यदि यह पाया जाता है कि अभिकथन स्पष्ट रूप से मिथ्या हैं, तब किसी प्रकार का संदेह नहीं हो सकता है कि पति द्वारा पत्नी के विरुद्ध या पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध मिथ्या अभियोग लगाने का उक्त आचरण क्रूरता का कृत्य होगा । इस मामले में सभी अभिकथन मिथ्या पाए गए थे । बाद में उसने यह अभिकथन करते हुए एक अन्य शिकायत फाइल की कि उसके पति के साथ-साथ कुछ अन्य व्यक्तियों ने उसके मकान में अतिचार और उस पर हमला किया था । अन्वेषण करने पर पुलिस ने यह पाया कि न केवल शिकायत मिथ्या है अपितु क्षतियां पत्नी द्वारा स्वयं कारित की गई हैं । उसके पश्चात् पत्नी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 182 के अधीन कार्यवाहियां आरंभ की गईं ।

11. हमने उच्च न्यायालय के निर्णय का परिशीलन किया । उच्च न्यायालय ने मिथ्या शिकायतों के अभिवाक् पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि यह अभिनिर्धारित करने का कोई कारण नहीं है कि प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा फाइल की गई आपराधिक शिकायत मिथ्या और असद्भाविक थी । हम उच्च न्यायालय और निचले न्यायालय के इस निष्कर्ष से सहमत नहीं हैं । दोनों निचले न्यायालयों ने पत्नी के इस कथन का अवलंब लिया है कि उसका पति प्राय: उसके घर आता रहता था और उसने अपने वैवाहिक दायित्वों को पूर्ण किया है । ये मताभिव्यक्तियां अभिलेख पर के किसी विश्वसनीय या सटीक साक्ष्य पर आधारित नहीं हैं । हमारे समक्ष यह विवादग्रस्त नहीं है कि पत्नी निरंतर उस मकान में रह रही है

जो पति की माता का है जबकि पति अपने माता-पिता के साथ एक अलग मकान में रहता है और पक्षकारों का पुत्र और पुत्रवधु पत्नी के साथ रहते हैं । पुत्र पति के साथ काम कर रहा है । हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि सुश्री मखीजा ने हमारे समक्ष निष्पक्ष रूप से यह बताया कि पति ने पुत्र के प्रति अपनी पितृत्व बाध्यताओं को सदैव पूरा किया है और अपनी पत्नी को न्यायालय द्वारा यथानिर्धारित भरण-पोषण का लगातार संदाय कर रहा है ।

12. यद्यपि हमने यह अभिनिर्धारित किया है कि पति के विरुद्ध मिथ्या शिकायतें फाइल करने के पत्नी के कृत्य क्रूरता की कोटि में आते हैं, तथापि, हम पत्नी की आवश्यकताओं के प्रति अचेत नहीं हैं कि उसके पास एक काफी अच्छा मकान हो जहां वह रह सके । उसका पुत्र और पुत्रवधु हो सकता है सदैव उसके साथ न रहें । इसलिए उसके निर्वाह व्यय और निवास-स्थान के लिए कुछ स्थायी व्यवस्था की जानी चाहिए । पक्षकारों की प्रास्थिति को ध्यान में रखते हुए, हम यह निदेश देते हैं कि पति 50,00,000/- रुपए (पचास लाख रुपए केवल) एकमुश्त निर्वाह व्यय के रूप में पत्नी को संदाय करेगा और वह किसी पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर किसी और रकम का दावा नहीं करेगी । यह रकम आज से तीन माह के भीतर संदत्त की जाए । हम यह भी निदेश देते हैं कि पत्नी तब तक उसी मकान में रहना जारी रखेगी, जो पति की माता का है, जब तक पति वैसे ही अवस्थान में समान आकार का फ्लैट उपलब्ध नहीं कराता है । इस प्रयोजन के लिए, पति को निदेश दिया जाता है कि यह सुनिश्चित करे कि 1,00,00,000/- रुपए (एक करोड़ रुपए केवल) तक के मूल्य का फ्लैट अपनी पत्नी के नाम में अंतरित किया जाए और जब तक यह उपलब्ध कराया जाता है, तब तक वह उसी मकान में रहना जारी रखेगी जिसमें वह फिलहाल रह रही है ।

13. तद्नुसार, यह अपील मंजूर की जाती है । उच्च न्यायालय द्वारा 2004 की खंड न्यायपीठ सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 1432 में तारीख 1 मार्च, 2013 को पारित किए गए निर्णय और आदेश तथा कुटुम्ब न्यायालय, उदयपुर द्वारा 2000 के सिविल मामला सं. 56 में तारीख 5 अगस्त, 2004 को पारित निर्णय और डिक्री अपास्त किए जाते हैं । पति द्वारा अधिनियम की धारा 13 के अधीन फाइल की गई विवाह-विच्छेद की अर्जी डिक्रीत की जाती है और तारीख 13 अप्रैल, 1989 को संपन्न हुआ पक्षकारों का विवाह विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विघटित किया जाता है । पत्नी, इसमें ऊपर निदेशित अनुसार, 50,00,000/- रुपए (पचास लाख रुपए केवल) के स्थायी निर्वाह व्यय तथा 1,00,00,000/- रुपए (एक करोड़ रुपए केवल)

तक मूल्य के एक आवासीय फ्लैट की हकदार होगी । लंबित आवेदन/आवेदनों, यदि कोई हो, का निपटारा हो जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

[2017] 4 उम. नि. प. 155

वसंत संपत दुपारे

बनाम

महाराष्ट्र राज्य

3 मई, 2017

न्यायमूर्ति दीपक मिश्र, न्यायमूर्ति रोहिन्टन फली नरीमन और न्यायमूर्ति उदय उमेश ललित

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 और धारा 376 – बलात्संग और हत्या – 4 वर्ष की बालिका के साथ अपीलार्थी द्वारा बलात्संग किया जाना और तत्पश्चात् उसकी पैशाचिक रूप में हत्या करना – आहत को अपीलार्थी के साथ अंतिम बार साइकिल पर देखा जाना – चिकित्सीय साक्ष्य से बलात्संग और नृशंस हत्या की पुष्टि होना – मृतका के गुप्तांगों पर पाई गई क्षतियां चिकित्सीय साक्ष्य के अनुसार बलपूर्वक मैथुन किए जाने से कारित हो सकती हैं और बरामद किए गए पत्थरों से पीट-पीट कर हत्या करने की संपुष्टि होती है, ऐसी स्थिति में निचले दोनों न्यायालयों द्वारा निकाला गया दोषसिद्धि का निष्कर्ष न्यायोचित है ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 302 – हत्या – मृत्यु दंडादेश में परिवर्तन के लिए आवेदन – अपीलार्थी द्वारा बर्बरतापूर्वक हत्या किया जाना – आहत की आयु केवल 4 वर्ष होना – विचारण न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत मृत्यु दंडादेश की पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा होना – मामले का विरल से विरलतम मामले की कोटि में आना – गुरुतरकारी परिस्थितियों का प्रभावी होना – गुरुतरकारी परिस्थितियों अर्थात् बर्बरतापूर्वक रीति से जिसमें अपराध कारित किया गया है और आहत की आयु केवल 4 वर्ष होने से उपशमनकारी परिस्थितियां स्पष्ट रूप से विचार में लाने योग्य नहीं हैं और मामला विरल से विरलतम मामले की कोटि में ही आता है, अतः मृत्यु दंडादेश में कोई भी हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

इस मामले में अभियुक्त/अपीलार्थी ने 4 वर्ष की एक अप्राप्तवय कन्या के साथ बलात्संग करके दो पत्थरों से पीट-पीट कर उसकी हत्या कर दी । अपीलार्थी का दंड संहिता की धारा 302, 363, 367, 376(2)(च) और 201 के अधीन विचारण किया गया और उसे अन्य दंडादेशों के साथ मृत्यु दंडादेश अधिनिर्णीत किया गया । अपीलार्थी ने विचारण न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने निचले न्यायालय के दोषसिद्धि के आदेश की पुष्टि करते हुए अपीलार्थी की अपील खारिज कर दी और मृत्यु दंडादेश कायम रखा । इसके पश्चात् अपीलार्थी ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष उच्च न्यायालय के निर्णय को चुनौती दी । उच्चतम न्यायालय ने भी अपीलार्थी की अपील खारिज करते हुए विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय के निर्णय को न्यायोचित ठहराते हुए अपील खारिज कर दी । इसके पश्चात् अपीलार्थी ने उच्चतम न्यायालय के ही समक्ष मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में परिवर्तित किए जाने के लिए पुनर्विलोकन आवेदन फाइल किए । उच्चतम न्यायालय द्वारा ये आवेदन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का आलोचनात्मक विश्लेषण करने के पश्चात् हमारा यह समाधान हो गया है कि ऐसी परिस्थितियां जो स्पष्ट रूप से सिद्ध की गई हैं, इस प्रकार हैं कि अपीलार्थी को आंगन में देखा गया था जहां पर अप्राप्तवय कन्या और अन्य बच्चे खेल रहे थे ; अपीलार्थी को मृतका को अपनी साइकिल पर ले जाते हुए देखा गया था ; अपीलार्थी अभि. सा. 6 की किरयाने की दुकान पर मृतका के लिए मिन्ट चाकलेट लेने गया था ; अभियुक्त अर्थात् अपीलार्थी ने अभि. सा. 2 से यह कहा था कि वह बच्ची उसके मित्र की पुत्री है और यह भी कहा कि वह उसे लेकर टेकड़ी-वाडी जा रहा है ; अपीलार्थी ने मृतका के शव का पता बताया था, अपीलार्थी ने वह स्थान भी दिखाया था जहां पर उसने अपने कपड़े धोये थे और अपीलार्थी के बताने पर ही रक्त-रंजित पत्थर बरामद किए गए थे ; हमारा समाधान इस साक्ष्य से भी हुआ है कि चिकित्सा रिपोर्ट से मृतका के शरीर पर कारित की गई क्षतियों की पुष्टि स्पष्ट रूप से होती है ; मृतका के गुप्तांगों पर जो क्षतियां कारित हुई हैं वे चिकित्सक की राय के अनुसार बलपूर्वक मैथुन किए जाने से कारित हो सकती हैं ; जो पत्थर बरामद किए गए थे, उन पर रक्त लगा हुआ था और चिकित्सीय साक्ष्य से इस तथ्य की भी संपुष्टि होती है कि ये क्षतियां इन पत्थरों से पीट-पीट कर कारित की जा सकती हैं ; रासायनिक विश्लेषण की रिपोर्ट से अपीलार्थी

के कपड़ों पर लगे हुए रक्त के ग्रुप का निर्धारण किया गया है ; अपीलार्थी द्वारा इस संबंध में कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि उसके बताए जाने पर ऐसी बरामदगी क्यों हुई है ; दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अपीलार्थी की परीक्षा के दौरान कोई भी ऐसा न्यायोचित स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है जिससे यह पता चल सके कि प्रश्नगत अपराध में उसे क्यों आलिप्त किया गया है । इस प्रकार, हमारा यह निष्कर्ष है कि अपराध में फंसाने वाली प्रत्येक परिस्थिति स्पष्ट रूप से सिद्ध की गई है और परिस्थितियों की शृंखला पूरी तरह संपूर्ण है और उसके आधार पर अन्यथा कोई परिकल्पना नहीं की जा सकती अर्थात् साबित किए जाने के लिए जो प्रस्तावित परिकल्पना है वही की जा सकती है और एकमात्र यही निष्कर्ष निकलता है कि अभियुक्त द्वारा ही अपराध कारित किया गया है । अतः, हमें विद्वान् विचारण न्यायाधीश द्वारा की गई दोषसिद्धि और उच्च न्यायालय द्वारा की गई उसकी पुष्टि को कायम रखने में कोई संकोच नहीं है । (पैरा 3)

इस प्रकार यह सुस्थापित है, न्यायालय दोनों परिस्थितियों (गुरुतरकारी तथा उपशमनकारी परिस्थितियां) के संचयी प्रभाव पर विचार करेगा और न्यायालय के लिए यह अधिक समुचित नहीं होगा कि वह दंडादेश के सिद्धांत के सबसे अधिक महत्वपूर्ण पहलू को, अन्य बातों को अनदेखा करते हुए विनिश्चित करे और न्यायालय का यह प्राथमिक कर्तव्य है कि वह दोनों परिस्थितियों पर संतुलित रूप से विचार करे । इसके अतिरिक्त, सदैव यह प्रयास किया जाना चाहिए कि किसी भी प्रकार से इन सिद्धांतों का अत्यधिक परिगणन करने से न्यायिक विवेकाधिकार विचलित न हो और यह कि गुरुतरकारी तथा उपशमनकारी परिस्थितियों को अपेक्षाकृत महत्व दिया जाना चाहिए और यह कि न्यायालय को दोनों परिस्थितियों के बीच संतुलन स्थापित करना चाहिए तथा इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि न्याय के लिए किसको अधिक महत्व दिया जाए । अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री से यह दर्शित होता है कि पुनर्विलोकनाधीन निर्णय दिए जाने के पश्चात्, आवेदक ने इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय से स्नातक प्रारंभिक परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है जिसके आधार पर वह स्नातक स्तर पर अध्ययन कर सकता है और यह कि वह गांधी विचार परीक्षा में भी सफल हो गया है और उसने जनवरी, 2016 में आयोजित कला प्रतियोगिता में भाग लिया है । यह प्रकथन किया गया है कि आवेदक का कारावास के दौरान का आचरण बेदाग है । अब इस बात

पर बल दिया गया है कि यह संभावना है कि अभियुक्त में सुधार आ सकता है और उसका पुनर्वास किया जा सकता है । यद्यपि, आवेदक द्वारा यह प्रयास पुनर्विलोकनाधीन निर्णय दिए जाने के पश्चात् किए गए हैं, फिर भी हमने इस संबंध में प्रस्तुत की गई सामग्री पर विचार किया है कि इनके आधार पर भिन्न मत दिया जा सकता है या नहीं । हमने अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री का सूक्ष्मता से परिशीलन किया है किंतु हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि गुरुतरकारी परिस्थितियां अर्थात् अत्यंत दुर्वृतता और बर्बरतापूर्ण रीति जिसमें अपराध कारित किया गया था और यह तथ्य कि आहत 4 वर्ष की एक असहाय बालिका थी, से स्पष्ट रूप से उपशमनकारी परिस्थितियां जो अब अभिलेख पर प्रस्तुत की गई हैं, विचार में लाने योग्य नहीं रह जाती हैं । मामले की संपूर्ण पृष्ठभूमि पर विचार करने के पश्चात्, हमारी सुविचारित राय में यह भिन्न मत व्यक्त किए जाने का मामला नहीं है । अतः, हम पुनर्विलोकनाधीन निर्णय में व्यक्त किए गए मत की पुष्टि करते हैं और वर्तमान पुनर्विलोकन आवेदन खारिज करते हैं । (पैरा 19 और 20)

अवलंबित निर्णय

पैरा

[1983] (1983) 3 एस. सी. सी. 470 :
माछी सिंह और अन्य बनाम **पंजाब राज्य** ; 9, 10

[1977] (1977) 3 एस. सी. सी. 68 :
दगडू और अन्य बनाम **महाराष्ट्र राज्य** । 10

निर्दिष्ट निर्णय

[2016] (2016) 9 स्केल 600 :
बी. ए. उमेश बनाम **कर्नाटक उच्च न्यायालय** ; 15

[2014] (2014) 9 एस. सी. सी. 737 :
मोहम्मद आरिफ उर्फ **अशफाक** बनाम **रजिस्ट्रार, भारत का उच्चतम न्यायालय और अन्य** ; 1

[2012] (2012) 4 एस. सी. सी. 257 :
राम नरेश और अन्य बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य** ; 18

[2011] (2011) 13 एस. सी. सी. 706 :
राजेश कुमार बनाम **राज्य द्वारा राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली** ; 17

[1991] (1991) 4 एस. सी. सी. 341 :
मल्कियत सिंह और अन्य बनाम **पंजाब राज्य** ; 14

[1977] (1977) 3 एस. सी. सी. 218 :
तरलोक सिंह बनाम **पंजाब राज्य** । 16

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2014 की दांडिक अपील सं. 2486-2487 में 2015 की पुनरीक्षण आवेदन सं. 637-638.

2012 का दांडिक पुष्टिकरण मामला सं. 1 और 2012 की दांडिक अपील सं. 112 में मुंबई उच्च न्यायालय की नागपुर न्यायपीठ के तारीख 27 मार्च, 2012 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध आवेदन ।

आवेदक की ओर से सर्वश्री अनूप भंभानी (ज्येष्ठ अधिवक्ता), निशांत गोखले, यश एस. विजय और सेन्तिल जगदीशन

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री निशांत रमाकांत राव कटनेश्वरकर और अर्पित राय

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति उदय उमेश ललित ने दिया ।

न्या. ललित – 2015 के पुनरीक्षण आवेदन सं. 637 और 638, 2014 की दांडिक अपील सं. 2486 और 2487 में इस न्यायालय द्वारा पारित तारीख 26 नवंबर, 2014 के उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत किए गए हैं जिसके द्वारा भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 302, 363, 367, 376(2)(च) और 201 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आवेदक की दोषसिद्धि की पुष्टि की गई है और साथ ही दंड संहिता की धारा 302 के अधीन मृत्यु दंडादेश तथा धारा 376(2)(च) के अधीन आजीवन कारावास सहित अधिरोपित किए गए अन्य दंडादेशों की भी पुष्टि की गई है । **मोहम्मद आरिफ** उर्फ **अशफाक** बनाम **रजिस्ट्रार, भारत का उच्चतम न्यायालय और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए इस न्यायालय के विनिश्चय को दृष्टिगत करते हुए इन पुनरीक्षण आवेदनों को मौखिक सुनवाई के लिए न्यायालय में सूचीबद्ध किया गया है ।

2. जिन तथ्यों के आधार पर इस न्यायालय में दांडिक अपीलें फाइल

---

[1] (2014) 9 एस. सी. सी. 737.

की गई हैं उन पर और अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य की प्रकृति और गुणवत्ता पर इस न्यायालय के तारीख 26 नवंबर, 2014 के निर्णय को दृष्टिगत करते हुए विचार किया गया है । आवेदक के विरुद्ध यह आरोप लगाया गया था कि उसने आहत के साथ, जो 4 वर्ष की एक अप्राप्तवय कन्या थी, बलात्संग किया और उसकी पीट-पीट कर हत्या कर दी । आवेदक ने अभिकथित रूप से आहत को चाकलेट देने के बहाने से फुसलाया, उसका अपहरण किया और अपनी वासना की तुष्टि के पश्चात् 8.5 किलोग्राम और 7.5 किलोग्राम के पत्थरों से कुचल-कुचलकर उसकी हत्या कर दी । अभियोजन पक्ष ने मनीषा (अभि. सा. 2), मिनाल (अभि. सा. 3), वन्दना (अभि. सा. 5) और बेबी शर्मा (अभि. सा. 6) के साक्ष्य का अवलंब लिया है जिन्होंने आवेदक को इस घटना के दिन साइकिल पर आहत को ले जाते हुए देखा था । भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 के अधीन आवेदक ने अपने प्रकटीकरण कथन में उस स्थान को दर्शाया है जहां पर उसका शव पड़ा हुआ था और आवेदक ने उस टोंटी का भी उल्लेख किया है जहां पर उसने अपने रक्त-रंजित कपड़े धोए थे । अभिलेख पर उपलब्ध चिकित्सीय साक्ष्य पर विचार इस निर्णय के पैरा 14 में किया गया है जो कि निम्न प्रकार है :–

> "14. चिकित्सक के अनुसार, उसने आहत की आन्तरिक जांच करने के दौरान यह पाया कि उसकी करोटि के नीचे बाएं कपालास्थि के निकट और दाईं कपालास्थि पर 4 सेमी. × 4 सेमी. माप की गहरे लाल रंग की क्षति है और कपालास्थि में अस्थिभंग है जो अन्दर की ओर दबी हुई है, अस्थिभंग अनुकपालीय अस्थि तक फैला हुआ है जो दाईं कपालास्थि और पार्श्वकपालीय अस्थि से होकर आन्तरिक और मध्य कपालीय भाग तक जाता है । उपजालतानिका में रक्तस्राव मौजूद है जो मस्तिष्क की सतह पर फैला हुआ है और मस्तिष्कावरण सिकुड़ा हुआ है । चिकित्सक की राय में मृत्यु का कारण सिर और गुप्तांग में आई क्षति है । चिकित्सक ने यह साक्ष्य दिया है कि जो दो पत्थर मुहरबंद आवरण में अध्यपेक्षा (प्रदर्श 62) के साथ मेरी राय के लिए मेरे पास भेजे गए थे, उनसे आहत को ऐसी क्षति पहुंचाई जा सकती है । चिकित्सक ने पत्थरों का भार तौला है जो 8.5 किलोग्राम और 7.5 किलोग्राम पाया गया है और उसने यह राय दी है कि आहत के साथ बलपूर्वक मैथुन किया गया है ।"

3. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य और परिस्थितियों पर विचार करने के

पश्चात् इस न्यायालय ने उपरोक्त निर्णय में निम्न मत व्यक्त किया :–

"अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का आलोचनात्मक विश्लेषण करने के पश्चात् हमारा यह समाधान हो गया है कि ऐसी परिस्थितियां जो स्पष्ट रूप से सिद्ध की गई हैं, इस प्रकार हैं कि अपीलार्थी को आंगन में देखा गया था जहां पर अप्राप्तवय कन्या और अन्य बच्चे खेल रहे थे ; अपीलार्थी को मृतका को अपनी साइकिल पर ले जाते हुए देखा गया था ; अपीलार्थी अभि. सा. 6 की किरयाने की दुकान पर मृतका के लिए मिन्ट चाकलेट लेने गया था ; अभियुक्त अर्थात् अपीलार्थी ने अभि. सा. 2 से यह कहा था कि वह बच्ची उसके मित्र की पुत्री है और यह भी कहा कि वह उसे लेकर टेकड़ी-वाडी जा रहा है ; अपीलार्थी ने मृतका के शव का पता बताया था, अपीलार्थी ने वह स्थान भी दिखाया था जहां पर उसने अपने कपड़े धोए थे और अपीलार्थी के बताने पर ही रक्त-रंजित पत्थर बरामद किए गए थे ; हमारा समाधान इस साक्ष्य से भी हुआ है कि चिकित्सा रिपोर्ट से मृतका के शरीर पर कारित की गई क्षतियों की पुष्टि स्पष्ट रूप से होती है ; मृतका के गुप्तांगों पर जो क्षतियां कारित हुई हैं वे चिकित्सक की राय के अनुसार बलपूर्वक मैथुन किए जाने से कारित हो सकती हैं ; जो पत्थर बरामद किए गए थे, उन पर रक्त लगा हुआ था और चिकित्सीय साक्ष्य से इस तथ्य की भी संपुष्टि होती है कि ये क्षतियां इन पत्थरों से पीट-पीट कर कारित की जा सकती हैं ; रासायनिक विश्लेषण की रिपोर्ट से अपीलार्थी के कपड़ों पर लगे हुए रक्त के ग्रुप का निर्धारण किया गया है ; अपीलार्थी द्वारा इस संबंध में कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि उसके बताए जाने पर ऐसी बरामदगी क्यों हुई है ; दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अपीलार्थी की परीक्षा के दौरान कोई भी ऐसा न्यायोचित स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है जिससे यह पता चल सके कि प्रश्नगत अपराध में उसे क्यों आलिप्त किया गया है । इस प्रकार, हमारा यह निष्कर्ष है कि अपराध में फंसाने वाली प्रत्येक परिस्थिति स्पष्ट रूप से सिद्ध की गई है और परिस्थितियों की शृंखला पूरी तरह संपूर्ण है और उसके आधार पर अन्यथा कोई परिकल्पना नहीं की जा सकती अर्थात् साबित किए जाने के लिए जो प्रस्तावित परिकल्पना है वही की जा सकती है और एकमात्र यही निष्कर्ष निकलता है कि अभियुक्त द्वारा ही अपराध कारित किया गया है । अतः, हमें विद्वान् विचारण

न्यायाधीश द्वारा की गई दोषसिद्धि और उच्च न्यायालय द्वारा की गई उसकी पुष्टि को कायम रखने में कोई संकोच नहीं है ।"

4. आवेदक को अधिनिर्णीत मृत्यु दंडादेश के मुद्दे पर इस न्यायालय ने सबसे पहले विवाद्यक मुद्दे को लागू होने वाले सिद्धांतों पर निम्न प्रकार विचार किया है :–

"39. अब हम दंडादेश के पहलू पर विचार करेंगे । बचन सिंह **बनाम** पंजाब राज्य [(1980) 2 एस. सी. सी. 684] वाले मामले के पैरा 165 में निम्न अभिनिर्धारित किया गया है –

'(क) सामान्य नियम यह है कि हत्या का अपराध आजीवन कारावास से दंडनीय होगा । न्यायालय इस नियम से अलग हट सकता है और ऐसी स्थिति में मृत्यु दंडादेश अधिरोपित कर सकता है यदि ऐसा करने के लिए विशेष कारण हैं । मृत्यु दंडादेश अधिरोपित करने से पूर्व ऐसे कारण अभिलिखित किए जाने चाहिए ।

(ख) दंड संहिता की धारा 302 के अधीन हत्या के अपराध के लिए दंडादेश अधिरोपित करने के मामले पर विचार करते समय न्यायालय को अपराध तथा अपराधी दोनों से सुसंगत प्रत्येक परिस्थिति को ध्यान में रखना चाहिए । यदि न्यायालय को यह पता चलता है कि अपराध असाधारण रूप से गंभीर और जघन्य प्रकृति का है, और उसकी रूपरेखा इस ढंग से बनाई गई है और उसका निष्पादन इस प्रकार हुआ है कि वह पूरे समाज के लिए गंभीर खतरा बन गया है तो न्यायालय मृत्यु दंडादेश अधिरोपित कर सकता है ; अन्यथा नहीं ।'

40. **बचन सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में न्यायालय ने फुर्मन **बनाम** जार्जिया [33 एल. ईडी. 2 डी. 346 = 408 यू. एस. 238 (1972)] वाले मामले को निर्दिष्ट किया और गुरुतरकारी परिस्थितियों तथा उपशमनकारी परिस्थितियों के संबंध में विद्वान् काउंसेल द्वारा दिए गए सुझावों का उल्लेख किया । गुरुतरकारी परिस्थितियों के बारे में चर्चा करते हुए न्यायालय ने काउंसेल द्वारा बताई गई गुरुतरकारी परिस्थितियों पर विचार किया जो निम्न प्रकार हैं –

"**गुरुतरकारी परिस्थितियां**" – कोई न्यायालय इसके बावजूद निम्नलिखित मामलों में अपने विवेकाधिकार के अनुसार मृत्यु दंडादेश अधिरोपित कर सकता है –

'(क) यदि हत्या पूर्व विचारित पहले ही योजना बनाकर की गई है और घोर निर्दयतापूर्ण की गई है ; अथवा

(ख) यदि हत्या आपवादिक रूप से भ्रष्ट तरीके से की है ; अथवा

(ग) यदि भारत के सशस्त्र बल की किसी सदस्य या किसी पुलिस बल के किसी सदस्य या किसी लोक सेवक की निम्नलिखित के दौरान हत्या की है –

(I) जब ऐसा सदस्य या लोक सेवक अपनी ड्यूटी पर रहा हो ; अथवा

(II) ऐसे सदस्य अथवा लोक सेवक के रूप में अपने कर्तव्यों के विधिक अनुपालन में किए गए किसी कार्य या उसके लिए किसी प्रयास के परिणामस्वरूप चाहे वह हत्या के समय यथास्थिति, ऐसा सदस्य अथवा लोक सेवक रहा हो या न रहा हो अथवा वह ऐसा सदस्य अथवा लोक सेवक न रहा हो ;

(घ) यदि किसी ऐसे व्यक्ति की हत्या की गई है जिसने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 43 के अधीन अपने विधिक कर्तव्यों के निर्वहन में कोई कृत्य किया हो अथवा जिसने उक्त संहिता की धारा 37 और धारा 129 के अधीन सहायता की मांग किए जाने पर किसी मजिस्ट्रेट या किसी पुलिस अधिकारी की सहायता की हो ।'

इसे उद्धृत करने के पश्चात् न्यायालय ने इस निर्णय के पैरा 203 में इस प्रकार मत व्यक्त किया –

'203. व्यापक रूप से यह कहा जा सकता है कि इन संकेतों को ग्रहण करने में कोई आपत्ति नहीं है किन्तु जैसा कि हम पहले उपदर्शित कर चुके हैं, हम किसी एक रूप में या अन्य रूप में व्यापक विवरण देकर न्यायिक विवेकाधिकार में बाधा डालने की कोशिश नहीं करेंगे ।'

41. इसके पश्चात् न्यायालय ने **बचन सिंह** (उपरोक्त) वाले

मामले के पैरा 206 में उपशमनकारी परिस्थितियों से संबंधित सुझावों को निर्दिष्ट किया जो निम्न प्रकार हैं –

"**उपशमनकारी परिस्थितियां**" – पूर्वोक्त मामलों में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते समय न्यायालय निम्नलिखित परिस्थितियों को ध्यान में रखेगा –

'(1) यह कि अपराध घोर रूप से मानसिक अथवा संवेदनशील परेशानी की स्थिति में किया गया है ।

(2) अभियुक्त की आयु, यदि अभियुक्त नवआयु या वृद्ध है तो उसे मृत्यु दंडादेश नहीं दिया जाएगा ।

(3) यह संभावना होना कि अभियुक्त ऐसे आपराधिक हिंसा के कृत्य नहीं करेगा जिससे समाज को खतरा बना रहे ।

(4) यह संभावना होना कि अभियुक्त में सुधार आ सकता है या उसका पुनर्वास किया जा सकता है ।

राज्य को साक्ष्य के आधार पर यह साबित करना होगा कि अभियुक्त पूर्वोक्त शर्त सं. 3 और 4 को पूरा नहीं कर सकता है ।

(5) यह कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार अभियुक्त को इस बात का विश्वास होना कि जो अपराध उसने किया है उसके करने में वह नैतिक रूप से युक्तियुक्त था ।

(6) यह कि अभियुक्त ने किसी अन्य व्यक्ति के दबाव अथवा प्रभाव के कारण ऐसा कार्य किया है ।

(7) यह कि अभियुक्त की दशा से ऐसा दर्शित होता है कि वह मानसिक रूप से ठीक नहीं था और यह कि इस मानसिक दोष के कारण उसे अपने आचरण की आपराधिकता का बोध नहीं था ।'

उपरोक्त बातों को उद्धृत करने के पश्चात्, न्यायालय ने निर्णय के पैरा 207 में निम्न मत व्यक्त किया –

'207. हम इसके अलावा कुछ नहीं कहेंगे कि निस्संदेह

रूप से ये सुसंगत परिस्थितियां हैं और दण्ड का अवधारण करते समय इन्हें बहुत महत्व दिया जाना चाहिए ।'

42. उक्त मामले के पैरा 209 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया – [**बचन सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले के पृष्ठ 751 पर पैरा 209 देखिए]

'209. ..... इसलिए इस बात पर ध्यान देने के लिए आवाज उठाना आज्ञापक है कि न्यायालय हमारे द्वारा दिए गए व्यापक स्पष्टीकारक मार्गदर्शनों द्वारा उपदर्शित रीति से अपने महत्वपूर्ण कर्तव्यों का निर्वहन बड़ी धर्मभीरूता के साथ, मानवता के प्रति सावधानी बरतते हुए तथा धारा 354(3) में निरूपित विधायी नीति का मार्ग अपनाते हुए करेगा अर्थात् हत्या के लिए दोषसिद्ध व्यक्ति के लिए आजीवन कारावास नियमतः दिया जाएगा और मृत्यु दंड आपवादिक रूप से (मानव जीवन की मर्यादा से संबंधित एक वास्तविक और मानने वाली बात यह है कि विधि की आड़ लेकर किसी का जीवन समाप्त करने से रोका जाए । यह दण्ड 'विरल से विरलतम' मामलों को छोड़कर नहीं दिया जाना चाहिए, जबकि उसके लिए कोई अन्य अनुकल्प निर्विवाद रूप से वर्जित है) ।'

43. माछी सिंह और अन्य **बनाम** पंजाब राज्य [(1983) 3 एस. सी. सी. 470] वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने 'विरल से विरलतम' मामले के सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए निर्णय के पैरा 32 में यह मत व्यक्त किया –

'32. ऐसे कारणों का पता लगाना कठिन नहीं है कि संपूर्ण समाज ऐसे मानवीय दृष्टिकोण का अनुमोदन नहीं करता है कि किसी भी मामले में मृत्यु दण्ड नहीं दिया जाए । पहली बात तो यह है कि मानवता जीवन के आदर-भाव के सिद्धांत पर आधारित है । जब समाज का कोई सदस्य किसी अन्य सदस्य की हत्या करके इस सिद्धांत का अतिक्रमण करता है, तब यह संभव नहीं है कि समाज यह महसूस करे कि वह इस सिद्धांत के शिकंजे में कसा हुआ है । दूसरी बात यह है कि यह अहसास होना चाहिए कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को किसी भी खतरे में डाले बिना सुरक्षा के साथ अपना जीवन व्यतीत करने योग्य है क्योंकि समाज उसे उसके द्वारा प्रवृत्त विधि के नियम

के आधार पर सुरक्षा देता है । विधि के नियम का अस्तित्व और किसी मामले में आलिप्त हो जाने का भय ऐसे व्यक्तियों को अपराध करने से रोक कर रखता है जिन्हें दूसरों की हत्या करने में कोई संकोच नहीं होता यदि ऐसा करना उनके उद्देश्य के अनुकूल हो । समाज के प्रत्येक व्यक्ति को इस सुरक्षा के लिए समाज के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए ।'

44. इसके पश्चात् समाज की भावना और उसकी आत्म-संरक्षा के पहलुओं पर विचार करने के पश्चात् न्यायालय ने यह राय व्यक्त की है कि समाज इस संरक्षा को, मृत्यु शास्ति मंजूर करवा कर, वापस ले सकता है । इस संबंध में न्यायालय ने **मांछी सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले के पृष्ठ 487 पर पैरा 32 में इस प्रकार मत व्यक्त किया है –

'32. किन्तु समाज प्रत्येक मामले में ऐसा नहीं करेगा । वह विरल से विरलतम मामले में ऐसा कर सकता जब सामूहिक अन्तःकरण को इतना आघात पहुंचे कि समाज न्यायिक शक्ति धारकों से मृत्यु शास्ति बनाए रखने या अन्यथा वांछनीयता के निरपेक्ष मृत्यु शास्ति अधिरोपित करने की प्रत्याशा करे ।'

यहां यह उल्लेख करना उचित होगा कि उक्त मामले में कुछ पहलुओं पर बल दिया गया है अर्थात् हत्या कारित करने की रीति हत्या कारित करने का हेतु, अपराध की असामाजिक या घृणास्पद प्रकृति, अपराध की गंभीरता और हत्या के आहत का व्यक्तित्व ।

45. इस प्रकार परिगणना करने के पश्चात् **बचन सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले से उद्भूत प्रतिपादनाएं **माछी सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले के पृष्ठ 489 पर पैरा 38 में इस प्रकार उल्लिखित है –

'38. **बचन सिंह** वाले मामले से निम्न प्रतिपादनाएं उद्भूत होती हैं –

(i) आत्यंतिक आपराधिता के घोरतम मामलों के सिवाय मृत्यु शास्ति जैसा आत्यंतिक दंड नहीं दिया जाना चाहिए ।

(ii) मृत्यु शास्ति का विकल्प चुनने से पूर्व 'अपराधी' की परिस्थितियों पर 'अपराध' की परिस्थितियों सहित विचार किया जाना चाहिए ।

(iii) आजीवन कारावास नियम है और मृत्यु दंडादेश अपवाद है । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि मृत्यु दंडादेश केवल तब अधिरोपित किया जाना चाहिए जब अपराध की सुसंगत परिस्थितियों पर विचार करने पर आजीवन कारावास का दंडादेश अयुक्तियुक्त प्रतीत हो और ऐसा तब किया जाए और केवल तब ही किया जाए जब अपराध की प्रकृति और परिस्थितियों और सभी सुसंगत परिस्थितियों पर विचार करने पर आजीवन कारावास का दंडादेश अधिरोपित करने के विकल्प का प्रयोग विवेकपूर्ण न किया जा सके ।

(iv) गुरुतरकारी और उपशमनकारी परिस्थितियों के बीच संतुलन बनाना चाहिए और ऐसा करने में उपशमनकारी परिस्थितियों को पूर्ण महत्व दिया जाना चाहिए और इस विकल्प का प्रयोग करने से पूर्व गुरुतरकारी तथा उपशमनकारी परिस्थितियों के बीच उचित संतुलन बनाना चाहिए ।'

46. इसके पश्चात्, तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यह मत व्यक्त किया कि उक्त मार्गदर्शक सिद्धांतों को लागू करने के लिए निम्न प्रश्नों के उत्तर दिए जाने अपेक्षित हैं [**माछी सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले के पृष्ठ 489 पर पैरा 39 देंखे] –

'(क) क्या अपराध से संबंधित ऐसी कोई असामान्य बात है जिसके कारण आजीवन कारावास का दंडादेश अनुचित और मृत्यु दंडादेश उचित माना जाए ?

(ख) क्या अपराध की परिस्थितियां ऐसी हैं कि अपराधी के पक्ष में कम करने वाला परिस्थितियों को अधिकतम महत्व देने के पश्चात् भी मृत्यु दंडादेश के सिवाय कोई विकल्प नहीं है ?'

उक्त मामले में न्यायालय ने तीन अभियुक्तों के संबंध में मृत्यु शास्ति जैसे दंडादेश की अधिकतम सीमा को कायम रखा है ।"

5. ऊपर कथित सिद्धांतों के आलोक में वर्तमान मामले के तथ्यों का अवलंब पुनर्विलोकनाधीन निर्णय में इस न्यायालय द्वारा निम्न प्रकार लिया गया है :–

"57. उपर्युक्त नजीरों को ध्यान में रखते हुए, हम इस बात पर विचार करेंगे कि न्ययालय का उस समय क्या कर्तव्य होता है जब सामूहिक अन्तःकरण को, कारित किए गए अपराध से आघात पहुंचे ।

जब अपराध पैशाचिक प्रकृति का हो और उससे समाज के मन में वीभत्सा उत्पन्न हो, तब न्यायिक अन्तःकरण पर आघात होता है और सामूहिक अन्तःकरण न्याय के लिए समाज की गुहार और अपराध में कारित की गई रीति के प्रति घोर आक्रोश को दृष्टिगत करते हुए प्रतिक्रिया करने को विवश हो जाता है । हम इस बात से पूरी तरह सचेत हैं कि न्यायाधीश, दंडादेश अधिरोपित करते समय किसी भी प्रकार के वैयक्तिक सिद्धांत और पक्षपात के अधीन रहकर कभी भी कार्य न करें । दंडादेश न्यायाधीश के व्यवहार या उसकी निजी समझ से ग्रसित नहीं होना चाहिए । दंडादेश विरल से विरलतम मामले से संबंधित अनेक नजीरों में अधिरोपित कसौटी पर खरा उतरना चाहिए । हम **माछी सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में चर्चा किए गए दो प्रश्नों का उल्लेख करना चाहेंगे ।

58. अब हम उस रीति पर विचार करेंगे जिसमें अपराध कारित किया गया है । अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री से यह दर्शित होता है कि अपीलार्थी उस क्षेत्र के निवासियों से पूरी तरह परिचित था और जैसा कि दर्शाया गया है उसका मृतका के पिता के घर आना जाना था और बच्चे उसे अंकल कहते थे । उसने मृतका को चाकलेट के बहाने अपने साथ जाने को उकसाया था । यह एक ऐसा कृत्य है जिसमें पूरी तरह भोलेपन का लाभ उठाया गया है । वह मृतका को अपनी साइकिल से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता रहा और उसके साथ बर्बरता रीति में बलात्संग करता रहा जैसे मानो उसे दुस्तोष्य और कभी न पूरी होने वाली भूख हो । अप्राप्तवय कन्या को ऐसी क्षतियां कारित हुई हैं जिनसे समाज भयपरत हो सकता है और मानवीय अन्तःकरण को वेदना पहुंच सकती है । अपीलार्थी ने दो भारी पत्थरों से आहत को पीट-पीट कर उसकी मृत्यु कारित की है । अप्राप्तवय आहत कन्या किसी भी प्रकार का कोई भी प्रतिरोध नहीं कर सकी । यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें अभियुक्त क्षणभर के लिए बहक गया हो । यह ऐसा मामला भी नहीं है जिसमें उस बालिका की मृत्यु बलात्संग के परिणामस्वरूप अत्यधिक रक्तस्राव से हुई है बल्कि यह ऐसा मामला है जिसमें अपीलार्थी ने जान-बूझकर कृत्य किया है । नृशंस कृत्य करने के पश्चात् अपीलार्थी का शान्त भाव बना रहना भी स्पष्ट है क्योंकि उसने टोंटी पर अपने हाथ धोए और वस्तुओं को छुपाने के लिए पूरी सावधानी बरती । जैसा कि स्पष्ट

है कि अपीलार्थी ने क्षण भर के लिए भी यह नहीं सोचा था कि मृतका को कितनी पीड़ा और यन्त्रणा पहुंच रही होगी । 4 वर्ष की बालिका जो अपीलार्थी की इस बेढंगी जैविक इच्छा को न समझ सकी, अपने अल्हड़पन और दुर्बलता के कारण अंकल के साथ चली गई जिसने उसकी जीवन लीला समाप्त कर दी । अपीलार्थी के इस बर्बरतापूर्ण कृत्य से दूर-दूर तक यह दर्शित नहीं होता है कि उसे एक छोटी बालिका के बहुमूल्य जीवन का तनिक भी अहसास था जबकि वास्तव में इस बालिका ने अभी अपना जीवन ठीक से देखा भी नहीं था । अपीलार्थी के आचरण की अपराधिता केवल दूषित और भ्रष्ट ही नहीं है बल्कि वह समाज के लिए घातक भी है । यह विपत्तिकारक है ।

60. वर्तमान मामले में, जैसा कि हमने देखा है, केवल बलात्संग ही बर्बरतापूर्ण रीति में कारित नहीं किया गया है बल्कि हत्या भी पैशाचिक रूप में की गई है । एक अप्राप्तवय कन्या की गरिमा को धोखे से नृशंस रूप में समाप्त कर देने की तुलना में उसके साथ किया गया बलात्संग कुछ नहीं है । यह एक बालिका के पवित्र शरीर और समाज की आत्मा के साथ किया गया अपराध है और जिस रीति में यह अपराध कारित किया गया है उससे यह अपराध और बड़ा हो जाता है । अपराध की प्रकृति और उसके कारित किए जाने की रीति से उसके असाधारण होने का पता चलता है । इस अपराध से दूषिता, अपमान और असामान्यता साबित होती है । यह अपराध नृशंस और बर्बरतापूर्ण है । यह अपराध अमानवीय रीति में कारित किया गया है । अनाशंक्य रूप से यह कहा जा सकता है कि गुरुतरकारी परिस्थितियों को साबित करने के लिए बहुत कुछ है ।

61. हम इस बात से पूरी तरह जागृत हैं कि उपशमनकारी परिस्थितियों पर विचार किया जाना चाहिए । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने उपशमनकारी परिस्थितियों पर बात करते हुए यह दलील दी है कि अपीलार्थी की आयु लगभग 55 वर्ष है और उसके सुधरने की संभावना है । यह उल्लेखनीय है कि अपराध कारित किए जाने के दौरान अपीलार्थी की आयु लगभग 47 वर्ष थी । जैसा कि दिखाई दे रहा है, अपीलार्थी को कोई पछतावा नहीं है । ऐसे मामले सामने आए हैं जिनमें न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचकर मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में परिवर्तित किया है कि अभियुक्त ने पछतावा

व्यक्त किया है या अपराध पूर्वचिन्तन द्वारा कारित नहीं किया गया है । किन्तु उपलब्ध तथ्यात्मक स्थिति के एक के बाद एक प्रक्रम पर विचार करने पर पूर्वचिन्तन, कुप्रवृत्ति और वासना साबित होती है । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अपीलार्थी का कोई भी आपराधिक इतिहास नहीं है किन्तु हमारा यह निष्कर्ष है कि वह पूर्वापराधी है और उसके विरुद्ध बहुत से मामले लंबित हैं । अपीलार्थी के विरुद्ध मात्र इतना कहना पर्याप्त नहीं है । अपीलार्थी द्वारा अप्राप्तवय कन्या के साथ जो भयावह क्रूरता कारित की गई है वह अपीलार्थी की आयु को दृष्टिगत करते हुए अत्यंत घातक और सुस्पष्ट है । यह क्रूरता किसी मानसिक तनाव या भावनात्मक असंतुलन के कारण कारित नहीं की गई है और यह अर्थ लगाना कठिन होगा कि वह ऐसा कृत्य अब नहीं करेगा और सुधर जाएगा या उसका पुनर्वास हो जाएगा । जैसा कि परिस्थितियों से पता चलता है, वह समाज के लिए खतरा बना रहेगा क्योंकि एक असहाय बालिका इस अपराधी का शिकार हुई है । हमारी सुविचारित राय में उपशमनकारी कोई परिस्थिति नहीं है ।"

6. पुनर्विलोकनाधीन निर्णय में इस न्यायालय की ऊपर कोट की गई मताभिव्यक्तियों से यह दर्शित होता है कि बढ़ाने वाले तथ्यों पर पैरा 58 और 60 में विचार किया गया है और उपशमनकारी परिस्थितियों सहित मामले की संपूर्णता पर अधिक विशिष्टता के साथ पैरा 61 में विचार किया गया है । बढ़ाने वाले तथ्यों से केवल घोर दुष्टता ही दर्शित नहीं होती है अपितु इस न्यायालय की राय में इन तथ्यों से पैशाचिक और नृशंस रीति सामने आती है जिसमें अपराध कारित किया गया है । न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अभियुक्त के पक्ष में ऐसी कोई भी उपशमनकारी परिस्थितियां नहीं हैं जिनके आधार पर उसे कम दण्ड अधिनिर्णीत किया जा सके ।

7. इस प्रक्रम पर, यह उल्लेखनीय है कि **माछी सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय से यह दर्शित होता है कि बार-बार उद्धृत किए गए सिद्धांतों को अधिकथित करने के पश्चात् इस न्यायालय ने अभियुक्त माछी सिंह, जागीर सिंह और कश्मीर सिंह के अलग-अलग मामलों पर विचार किया है । **माछी सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 42 में यह मत व्यक्त किया गया है :–

" ..... कारित किया गया अपराध आपवादिक रूप से दुर्वृत्त

और जघन्य प्रकृति का है । अपराध कारित किए जाने की रीति और उसकी संरचना से वह अत्यंत अत्याचारी और क्रूरतापूर्ण बन जाता है ।

.....कारित किए गए अपराध के ऐसे लक्षण हैं जो अत्यंत भयंकर हैं विशेषकर ऐसी स्थिति में जब हम हथियार और उसके प्रयोग की रीति की बात करें । चूंकि इस मामले में जघन्य, अत्याचारी और क्रूरतापूर्ण अपराध कारित किया गया है इसलिए विधि कठोर दंडादेश की गुहार कर रही है ।

..... अपराध इतना घृणाजनक और निर्दयी है कि उससे अभियुक्त-अपीलार्थियों द्वारा हत्या कारित किए जाने की नैसर्गिक प्रवृत्ति का पता चलता है ।"

इसी प्रकार अपीलार्थी जागीर सिंह के संबंध में न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है :–

"..... कारित किए गए अपराध के ऐसे लक्षण हैं जो अत्यंत भयंकर हैं विशेषकर ऐसी स्थिति में जब हम हथियार और उसके प्रयोग की रीति की बात करें । चूंकि इस मामले में जघन्य, अत्याचारी और क्रूरतापूर्ण अपराध कारित किया गया है इसलिए विधि कठोर दंडादेश की गुहार कर रही है ।

.....आहत की असहाय स्थिति और मामले की परिस्थितियों के आधार पर हम मृत्यु दण्डादेश की पुष्टि करते हैं ।"

8. इसके अतिरिक्त पैरा 44 और 45 से यह दर्शित होता है कि अभियुक्त कश्मीर सिंह ने छह वर्ष की एक असहाय बालिका की मृत्यु कारित की है और कुल मिलाकर इन अपीलार्थियों के संबंध में और विशेषकर उक्त अभियुक्त कश्मीर सिंह के संबंध में इस प्रकार मत व्यक्त किया गया है :–

"44. जहां तक अपीलार्थी कश्मीर सिंह पुत्र अर्जन सिंह का संबंध है, सेशन न्यायालय द्वारा उस पर मृत्यु दण्डादेश अधिरोपित किया गया है जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा निम्न कारणों के आधार पर की गई है ।

इसी प्रकार, अपीलार्थी कश्मीर सिंह ने अपने दुर्वृत्त मन से सोते हुए छह वर्ष के ऐसे बालक जिसका नाम बलबीर सिंह है, की मृत्यु कारित की है जो कोई प्रतिरोध भी नहीं कर सकता था और अपीलार्थी के इस कृत्य से उसके हत्या करने की नैसर्गिक प्रवृत्ति का

पता चलता है ।

45. हमारा यह मत है कि जहां तक इन तीनों अपीलार्थियों का संबंध है **बचन सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में विहित विरल से विरलतम मामले का नियम स्पष्ट रूप से लागू होता है और मृत्यु दण्डादेश दिया जाना चाहिए । हम यह स्वीकार करने के लिए आनत नहीं हैं कि आजीवन कारावास इस अपराध की परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए उचित होगा । अतः, हम सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत को कायम रखने के लिए पूर्णतया सहमत हैं कि मृत्यु शास्ति जैसा कठोर दंडादेश अपीलार्थी (1) माछी सिंह, (2) कश्मीर सिंह पुत्र अर्जन सिंह और (3) जागीर सिंह को दिया जाना चाहिए । तद्नुसार, हम उन पर अधिरोपित मृत्यु दंडादेश की पुष्टि करते हैं और उनकी अपीलों को खारिज करते हैं ।"

9. **माछी सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए आंकलन तथा मतों से यह दर्शित होता है कि गुरुतरकारी परिस्थितियां अर्थात् वे परिस्थितियां जिनमें अपराध कारित किया गया है, अपराध कारित करने में पैशाचिक और बर्बरता का व्यवहार, आहत की हैसियत और उसकी असहायता तथा यह तथ्य कि अपराध घृणाजनक और निर्दयतापूर्ण है जैसी परिस्थितियों को सम्यक् रूप से महत्व दिया गया है । स्वयं इन तथ्यों से यह पता चलता है कि संबद्ध अभियुक्तों के विरुद्ध विनिश्चयाधार प्रभावित हुआ है । वर्तमान मामले में चार वर्ष की अप्राप्तवय कन्या के साथ अपीलार्थी/आवेदक द्वारा बलात्संग किया गया है और उसकी पीट-पीटकर हत्या की गई है । अपराध की नृशंसता और पैशाचिक प्रकृति से तथा इस तथ्य को ध्यान में रखा गया है कि आहत ने अपीलार्थी/आवेदक पर विश्वास और भरोसा किया था और इस न्यायालय ने गुरुतरकारी परिस्थितियों को अन्य सभी कारकों पर प्रभावी पाया है । साक्ष्य और परिस्थितियों पर इस पुनर्विलोकनाधीन निर्णय में विस्तार से विचार किया गया है और इस न्यायालय को मृत्यु दंडादेश की पुष्टि करने में कोई संकोच नहीं है ।

10. वर्तमान पुनर्विलोकन याचिका में आवेदक की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री अनूप भंभानी ने प्रारंभ में ही यह दलील दी है कि **बचन सिंह** (उपरोक्त) और **माछी सिंह** (उपरोक्त) वाले मामलों में अधिकथित सिद्धांतों के आलोक में उपशमनकारी तथ्यों पर विचार किया जाना चाहिए था और इस संबंध में समुचित और प्रभावी सुनवाई आवेदक

के पक्ष में नहीं कराई गई है । अतः, इस न्यायालय ने तारीख 31 अगस्त, 2016 के आदेश द्वारा आवेदक को, मृत्यु दंड को आजीवन कारावास में परिवर्तित किए जाने के लिए उपशमनकारी तथ्यों को उपदर्शित करने हेतु सामग्री फाइल करने के लिए अनुज्ञात किया है । यह आदेश **दगडू और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए दिया गया था जिसमें इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यह मत व्यक्त किया है :–

> "79. ..... न्यायालय को अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए दंडादेश के प्रश्न को तय करने हेतु बिना किसी शर्त के उसकी सुनवाई करनी चाहिए । किंतु यदि किसी भी कारण से न्यायालय ऐसा करने का लोप कर देता है और इस संबंध में अभियुक्त बृहत्तर न्यायालय के समक्ष शिकायत करता है, तब वह न्यायालय दंडादेश के प्रश्न पर अभियुक्त की सुनवाई किए जाने के भंग का उपचार करने के लिए स्वतंत्र होगा ।
>
> 80. ..... धारा 235(2) में अन्तर्विष्ट उपबंधों के समुचित और प्रभावी कार्यान्वयन के लिए सदैव यह आवश्यक नहीं है कि मामला उस न्यायालय को भेजा जाए जिसने दोषसिद्धि अभिलिखित की है । .....मामले को इस प्रकार भेजना एक अपवाद है न कि नियम और जहां तक संभव हो मामले का समीचीन और निष्पक्ष निपटारा करने के हित में, ऐसा करने से बचना चाहिए ।"

11. इसके पश्चात् आवेदक ने 2016 की दांडिक प्रकीर्ण याचिका सं. 16369-16370 फाइल की जिसमें कतिपय तथ्य और सामग्री अभिलेख पर प्रस्तुत की गई । यह दलील दी गई है :–

> **"जेल में आवेदक द्वारा प्राप्त की गई शिक्षा और उसके क्रियाकलाप**
>
> (i) आवेदक ने यह निवेदन किया है कि उसे बाल्यकाल के दौरान छठी कक्षा के पश्चात् विद्यालय छोड़ना पड़ा था । इसके पश्चात् उसने इलैक्ट्रिशियन, मजदूर, माली तथा सुरक्षा गार्ड के रूप में काम किया । महाराष्ट्र में मृत्यु दंडादेश दिए जाने की पंक्ति में लगे बंदियों को काम करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाता है किंतु आवेदक ने जेल की नर्सरी में अपने विचारण के दौरान कार्य किया है ।

---

[1] (1977) 3 एस. सी. सी. 68.

कारावास के दौरान आवेदक ने शिक्षा अध्ययन, कला प्रतियोगिता तथा सुधार के लिए कई आयोजनों में कार्य किया है । आवेदक के काउंसेल को यह भी बताया गया है कि आवेदक द्वारा बनाई गई कलाकृतियां जेल में भी प्रदर्शित की गई हैं ।

(ii) आवेदक ने वर्ष 2015 में सफलतापूर्वक इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय द्वारा चलाए जा रहे स्नातक पाठ्यक्रम को पूरा किया है । इस पाठ्यक्रम द्वारा ऐसे लोगों को स्नातक के स्तर पर योग्य बनाया जाता है जो मैट्रिक के पूर्व स्कूल जाना बंद कर देते हैं ।

(iii) वर्ष 2015 में आवेदक गांधी विचार परीक्षा में सफल हुआ है । इस परीक्षा के माध्यम से एम. के. गांधी के जीवन और उपदेशों के आधार पर ऐसे कैदियों का पुनर्वास किया जाता है जिन्होंने जघन्य अपराध कारित किए होते हैं । इस पाठ्यक्रम में महात्मा गांधी के उपदेशों, उनकी जीवनी तथा वर्णनात्मक परीक्षा को सम्मिलित किया गया है ।

(iv) आवेदक कला में पूर्णतया पारंगत है और उसने नागपुर म्युनिसिपल कारपोरेशन एण्ड कलार्जन फाउंडेशन द्वारा तारीख 10 जनवरी, 2016 को आयोजित की गई प्रतियोगिता में भी भाग लिया है ।

(v) अतः, यह निवेदन किया गया है कि आवेदक सुधार और पुनर्वास की ओर अग्रसर है और इसीलिए उस पर अधिरोपित मृत्यु दंडादेश आजीवन कारावास में परिवर्तित किया जाना चाहिए ।"

अपीलार्थी/आवेदक द्वारा फाइल किए गए आवेदन से आवेदक का जेल में अनुशासनिक अभिलेख पूर्णतया बेदाग है और उसका कोई भी आपराधिक इतिहास नहीं है ।

12. इसके पश्चात् मामला सुनवाई के लिए भेज दिया गया है । विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री अनूप भंभानी ने मुख्य रूप से यह निवेदन किया है :–

"(क) विचारण न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश एक ही दिन अर्थात् तारीख 23 फरवरी, 2012 को दिए गए जिससे अलाउद्दीन मियां और अन्य **बनाम** बिहार राज्य (1989) 3 एस. सी. सी. 5 वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि का पूर्णतया विरोध होता है और इससे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235(2) की भावना का भी अतिक्रमण होता है ।

(ख) जैसा कि **बचन सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 206 में अधिकथित किया गया है यह संभाव्यता कि अभियुक्त में सुधार आ सकता है, एक महत्वपूर्ण पहलू है और इस साक्ष्य द्वारा राज्य को यह साबित करना था कि अभियुक्त का सुधरना संभव नहीं था । तथापि, सबूत का यह भार राज्य द्वारा नहीं उठाया गया है और न ही इस संबंध में कोई साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है । राज्य द्वारा ऐसा कोई साक्ष्य प्रस्तुत न किए जाने पर कोई भी मृत्यु दंडादेश अधिनिर्णीत नहीं किया जा सकता और न ही उसकी पुष्टि की जा सकती है ।"

13. **अलाउद्दीन मियां** बनाम **बिहार राज्य** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के पैरा 10 का अवलंब लिया गया है जो निम्न प्रकार है :–

"10. दंड संहिता के उपबंधों पर सरसरी नजर डालने से ही यह दर्शित हो जाता है कि दंडादेश अपराध की गंभीरता के अनुरूप सावधानीपूर्वक नियत किया जाना चाहिए ; जघन्य अपराधों में विहित दंडादेश कड़े होते हैं जबकि तुच्छ अपराधों के लिए रियायत बरती जाती है । यहां भी बुद्धिमत्ता से काम लेने की पूरी गुंजाइश है क्योंकि दंडादेश का विकल्प न्यायाधीश के विवेकाधिकार पर अधिकतम सीमा के साथ छोड़ दिया गया है । ऐसे कुछ ही मामले हैं जिनमें न्यूनतम दंड विहित किया गया है । अब प्रश्न यह है कि न्यायाधीश को किसी अपराध में उचित दंडादेश अधिनिर्णीत करने के लिए कौन सा तरीका अपनाना चाहिए ? न्यायाधीश को इसके लिए छूट दी गई है जिसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 की उपधारा (2) में वर्णित किया है । धारा 235 की उपधारा (2) निम्न प्रकार है –

> यदि अभियुक्त दोषसिद्ध किया जाता है तो न्यायाधीश, उस दशा के सिवाय जिसमें वह धारा 360 के उपबंधों के अनुसार कार्यवाही करता है, दंडादेश के प्रश्न पर अभियुक्त को सुनेगा और तब विधि के अनुसार ही उसके बारे में दंडादेश देगा ।

अभियुक्त की सुनवाई किए जाने की अपेक्षा का आशय नैसर्गिक न्याय के नियम का समाधान करना है । यह निष्पक्ष कार्यवाही किए जाने की मूल अपेक्षा है कि उस अभियुक्त से यह पूछा जाना चाहिए, जो दोषी होने के प्रश्न को लेकर अभियोजन साक्ष्य पर केन्द्रित है, कि उसे दंडादेश की मात्रा के प्रश्न पर कोई साक्ष्य प्रस्तुत करना है या नहीं । यह सब किया जाना बहुत आवश्यक है क्योंकि सामान्यतया

न्यायालयों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे दंडादेश की मात्रा के संबंध में अपने विवेकाधिकार का व्यापक रूप से प्रयोग करें । उचित दंडादेश नियत किए जाने में न्यायालय की सहायता करने के लिए विधान-मण्डल ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 की उपधारा (2) का उपबंध किया है । अतः, उक्त उपबंध के अन्तर्गत दोनों प्रयोजनों का समाधान हो जाता है ; अर्थात् इससे अभियुक्त के अनुसार नैसर्गिक न्याय के नियम का समाधान हो जाता है कि अभियुक्त को दंडादेश की मात्रा के प्रश्न पर सुनवाई का अवसर दिया जाता है और साथ ही यह समाधान हो जाता है कि न्यायालय को दंडादेश अधिनिर्णीत करने में सहायता मिल जाती है । चूंकि इस उपबंध का आशय अभियुक्त को यह अवसर देना है कि वह न्यायालय के समक्ष उस संपूर्ण सामग्री को प्रस्तुत कर दे जिसका संबंध दंडादेश के प्रश्न से होता है, इस संबंध में कोई संदेह नहीं है कि यह उपबंध हितकारी है और इसका प्रयोग सतर्कता के साथ किया जाना चाहिए । यह स्पष्ट रूप से आज्ञापक है और इसे मात्र औपचारिकता नहीं समझना चाहिए । अतः, श्री गर्ग ने यह शिकायत करके न्यायोचित किया है कि विचारण न्यायालय ने इसे वास्तव में एक औपचारिकता समझा है जैसा कि इस तथ्य से स्पष्ट है कि विचारण न्यायालय ने तारीख 31 मई, 1987 को अभियुक्त के दोषी होने का निष्कर्ष जिस दिन अभिलिखित किया था, उसी दिन इससे पहले कि अभियुक्त दोषसिद्धि के आघात से उबरकर सामान्य अवस्था में आ पाते, उनसे न्यायालय द्वारा यह प्रश्न किया गया कि उन्हें दंडादेश की मात्रा के प्रश्न पर कुछ कहना है या नहीं और तत्काल पश्चात् ही दो अभियुक्तों पर मृत्यु शास्ति अधिरोपित कर दी । जीवन और मृत्यु के मामले में, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, पीठासीन अधिकारी को अभियुक्त के कानूनी अधिकार के लिए भी चिन्तित रहना चाहिए और उसे अभियुक्तों से उनकी इच्छा पूछकर मात्र औपचारिकता नहीं समझना चाहिए । यदि अभियुक्त, से उसको प्रभावी और वास्तविक अवसर दिए बिना विकल्प पूछा जाता है और उसके इतिहास, उसकी सामाजिक तथा आर्थिक पृष्ठभूमि, अपराध की उपशमनकारी और गुरुतरकारी परिस्थितियों आदि को विचार में लिए बिना उससे विकल्प मांगा जाता है तब दंडादेश की मात्रा को लेकर न्यायालय का विनिश्चय शिथिल माना जाएगा । हमें यह उल्लेख करने की

आवश्यकता नहीं है कि बहुत से मामलों में दंडादेश की मात्रा से संबंधित विनिश्चय के परिणाम अभियुक्त और उसके परिवार के सदस्यों के जीवन पर ऐसे विनिश्चय की अपेक्षाकृत अधिक गंभीर होते हैं जो पूर्णतया प्रशासनिक विनिश्चय होता है, अतः निष्पक्ष कार्यवाही का सिद्धांत पिछले मामले में अधिक सावधानी के साथ लागू किया जाना चाहिए । सिविल परिणाम वाला प्रशासनिक विनिश्चय, यदि सुनवाई का अवसर दिए बिना पारित किया जाता है तब वह आमतौर पर खारिज कर दिया जाता है क्योंकि उससे नैसर्गिक न्याय के नियम का अतिक्रमण होता है । इसी प्रकार, दंडादेश की मात्रा से संबंधित विनिश्चय यदि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 की उपधारा (2) की अपेक्षाओं का अनुसरण किए बिना दिया जाता है, तब उसका भी यही परिणाम होगा और उसे एक उचित आदेश से प्रतिस्थापित करना होगा । दंडादेश की मात्रा नियत करने वाले न्यायालय को गंभीरता से इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए और यह भी देखना चाहिए कि अभिलेख पर दंडादेश के प्रश्न से संबंधित सभी तथ्य और परिस्थितियां प्रस्तुत की गई हैं या नहीं । न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत उपशमनकारी तथा गुरुतरकारी परिस्थितियों पर सम्यक् रूप से विचार करने के पश्चात् ही न्यायालय को दंडादेश सुनाना चाहिए । एक सामान्य नियम के रूप में हमारा यह विचार है कि विचारण न्यायालयों को दोषसिद्धि अभिलिखित करने के पश्चात् मामले को आगे किसी तारीख पर सुनवाई के लिए स्थगित कर देना चाहिए और अभियोजन तथा प्रतिरक्षा अर्थात् दोनों ही पक्षों को दंडादेश की मात्रा के प्रश्न से संबंधित सुसंगत सामग्री प्रस्तुत करने का अवसर देना चाहिए और इसके पश्चात् अपराधी पर दंडादेश अधिरोपित करना चाहिए । वर्तमान मामले में, जैसा कि पहले ही इंगित किया गया है, हमें खेद है कि विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 की उपधारा (2) की आज्ञापक अपेक्षाओं को पर्याप्त महत्व नहीं दिया है ।"

14. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 235 की उपधारा (2) के अधीन न्यायालय दंडादेश के प्रश्न पर अभियुक्त की सुनवाई करने के लिए बाध्य है और आमतौर पर यह प्रत्याशा की जाती है कि दोषसिद्धि अभिलिखित करने के पश्चात् मामले को किसी भविष्यवर्ती तारीख के लिए स्थगित कर दिया जाए और अभियोजन तथा प्रतिरक्षा पक्ष को दंडादेश के प्रश्न से संबंधित सुसंगत सामग्री उपलब्ध कराने का निदेश भी दिया जाए ।

दोषसिद्धि अभिलिखित करने और उसी दिन मृत्यु दंडादेश अधिरोपित करने के प्रभाव पर **मल्कियत सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा विचार किया गया है । इस मामले में, इस न्यायालय ने मामले को छह वर्ष बाद सुनवाई के लिए मंगाना समीचीन नहीं समझा और मृत्यु दंडादेश आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया । यह मत व्यक्त किया गया है :–

> "18. इस निष्कर्ष पर पहुंचने पर कि अभियुक्त ने आरोपित अपराध कारित किया है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235(2) के अधीन न्यायाधीश को इस संबंध में शक्ति प्रदान की गई है कि वह अभियुक्त की सुनवाई करने के पश्चात् विधि के अनुसरण में दंडादेश पारित करेगा । सुनवाई का अर्थ केवल मौखिक सुनवाई से नहीं है अपितु इसका आशय अभियोजन पक्ष तथा अभियुक्त को न्यायालय के समक्ष दंडादेश के प्रश्न से संबंधित तथ्यों और सामग्री प्रस्तुत करने का अवसर देना है, और यदि किसी भी पक्ष की ओर से गुरुतरकारी या उपशमनकारी परिस्थितियों को साबित करते हुए मृत्यु दंडादेश या कम दंड दिए जाने की गुहार की जाती है तब दोनों पक्षों को इसका अवसर दिया जाना चाहिए । अतः, अभियुक्त और अभियोजन पक्ष को दंडादेश के प्रश्न से संबंधित पर्याप्त समय दिया जाना चाहिए ताकि वे आधार दर्शाए जा सकें जिनके अनुसार अभियोजन पक्ष या अभियुक्त क्रमशः यह साबित कर सके कि मृत्यु दंडादेश जैसा गुरुतर दंड या आजीवन कारावास जैसा उपशमित दंड अधिनिर्णीत किया जा सकता है, जैसी भी स्थिति हो । निःसंदेह, अभियुक्त ने मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत करने से इनकार कर दिया है । किंतु इस बात से अभियुक्त-1 पर उपशमित दंड अधिरोपित किए जाने का साक्ष्य प्रस्तुत करने से नहीं रोका जा सकता । इस न्यायालय ने ऊपर कथित **अलाउद्दीन** [(1989) 3 एस. सी. सी. 5] और **अंगुरवामी** [(1989) 3 एस. सी. सी. 33] वाले मामलों में यह अभिनिर्धारित किया है कि अभियुक्त को दोषसिद्ध करने वाले दिन ही दंडादिष्ट करना विधि के अनुसरण में नहीं है । आमतौर पर मामले को पुनर्विचार किए जाने के लिए विशेष न्यायालय को भेज देना चाहिए । किंतु इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि अभियुक्त-1 अपनी दोषसिद्धि की तारीख से छह वर्ष के लंबे समय से कारावास भोग रहा है, इसलिए हमारी सुविचारित राय में अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं है । यह पर्याप्त होगा कि अभियुक्त-1 को अधिनिर्णीत मृत्यु दंडादेश आजीवन कठोर कारावास में परिवर्तित किया

---

[1] (1991) 4 एस. सी. सी. 341.

जाए । तद्नुसार, मृत्यु दंडादेश उपान्तरित किया जाता है और अभियुक्त-1 चारों मृतकों की हत्या कारित करने के लिए आजीवन कठोर कारावास भोगने हेतु दंडादिष्ट किया जाता है ।"

15. **बी. ए. उमेश** बनाम **कर्नाटक उच्च न्यायालय**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विद्वान् तीन न्यायाधीशों ने हाल ही में दिए गए निर्णय के तथ्य लगभग इसी के अनुरूप हैं, इस मामले में दंडादेश दिए जाने के लिए कोई भी तारीख दोषसिद्धि अभिलिखित करने के पश्चात् नियत नहीं की गई थी । इस निर्णय का पैरा 8 निम्न प्रकार है :-

"8. उपरोक्त बातों के अतिरिक्त आवेदक (पुनर्विलोकन आवेदक) की ओर से यह दलील दी गई है कि चूंकि दंडादेश के लिए वर्तमान मामले में विचारण न्यायालय द्वारा अलग से कोई भी तारीख नियत नहीं की गई थी इसलिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235(2) के अतिक्रमण को दृष्टिगत करते हुए मृत्यु दंडादेश की पुष्टि नहीं की जा सकती । हमने सुश्री सुई द्वारा दी गई दलील पर विचार किया है । यह सत्य है कि दोषसिद्ध किए गए व्यक्ति को दंडादेश दिए जाने के पूर्व सुनवाई का अधिकार प्राप्त है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235(2) में ऐसा कोई आदेश नहीं किया गया है कि दंडादेश की सुनवाई के लिए अलग से कोई तारीख नियत की जाए । यह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर है कि उसमें दंडादेश की सुनवाई के लिए या पक्षकारों को उसी दिन दंडादेश पर दलील देने के लिए सामान्य होने हेतु कोई तारीख अलग से नियत की जाए । यदि किसी भी पक्षकार ने दंडादेश पर सुनवाई किए जाने के लिए अलग से तारीख नियत किए जाने पर बल दिया होता या दोनों पक्षकारों ने दोषसिद्धि की तारीख से अन्य अलग किसी दिन सुनवाई किए जाने का निवेदन किया होता तब स्थिति भिन्न हो सकती थी । वर्तमान मामले में, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा दिए गए पुनर्विलोकनाधीन निर्णय से स्पष्ट है, पक्षकारों को निचले दोनों न्यायालयों द्वारा तथा अन्त में इस न्यायालय द्वारा दंडादेश के प्रश्न पर सुनवाई की गई है । इस प्रकार, मात्र इस कारण से कि दंडादेश के प्रश्न पर सुनवाई किए जाने के लिए अलग से कोई भी तारीख नियत नहीं की गई है, पुनर्विलोकन आवेदन मंजूर नहीं किया जा सकता ।"

---

[1] (2016) 9 स्केल 600.

इसके पश्चात् इस न्यायालय ने **दगडू** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांत का अवलंब लिया है जिसका अनुसरण तत्पश्चात् **तरलोक सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में विद्वान् तीन न्यायाधीशों की एक अन्य न्यायपीठ द्वारा किया गया है । दंडादेश के प्रश्न पर सुनवाई किए जाने के लिए अलग से कोई भी तारीख नियत नहीं की गई थी, इन परिस्थितियों में, हमारा यह निष्कर्ष है कि मात्र इस आधार पर सम्पूर्ण प्रक्रिया अनुचित या दूषित नहीं है । चूंकि हमने आवेदक को **दगडू** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** (उपरोक्त) वाले में अधिकथित सिद्धांतों के आलोक में अभिलेख पर सुसंगत सामग्री प्रस्तुत करने के लिए मंजूर किया है, इसलिए हम अभिलेख पर प्रस्तुत की गई सामग्री पर विचार करेंगे और इन कारकों का आंकलन करेंगे तथा पुनर्विलोकनाधीन निर्णय में इस न्यायालय द्वारा विचार की गई गुरुतरकारी परिस्थितियों का भी परिशीलन करेंगे ।

16. तथापि, ऐसे विचार के पूर्व हम विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री भंभानी द्वारा दी गई दूसरी दलील का परिशीलन करेंगे । अपनी दलील में इस न्यायालय के **बचन सिंह** (उपरोक्त) वाले विनिश्चय के पैरा 206 के निबंधनों में शर्त-3 और शर्त-4 को दृष्टिगत करते हुए सबूत का भार राज्य पर था जिसका निर्वहन बिल्कुल नहीं किया गया । तत्पश्चात्, विद्वान् काउंसेल के अनुसार मृत्यु दंडादेश आजीवन कारावास में परिवर्तित किया जाना था । इस विनिश्चय के पैरा 206 में उपशमनकारी परिस्थितियों का विस्तार से उल्लेख किया गया है और शर्त-3 और शर्त-4 पर विचार करते समय इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि राज्य का यह कर्तव्य है कि वह साक्ष्य द्वारा यह साबित करे कि अभियुक्त ने शर्त-3 और शर्त-4 का समाधान नहीं किया है । तथापि, पश्चात्वर्ती पैराओं से यह दर्शित होता है कि वे परिस्थितियां निश्चित रूप से सुसंगत हैं और उन्हें अत्यधिक महत्व दिया जाना चाहिए किन्तु एक ओर उपशमनकारी परिस्थितियों तथा दूसरी ओर गुरुतरकारी तथ्यों के संचीय प्रभाव के आधार पर अन्तिम निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए ताकि अन्तिम रूप से यह निर्धारण किया जा सके कि क्या "विरल से विरलतम" की अपेक्षा का समाधान हुआ है या नहीं । ऐसा नहीं है कि राज्य द्वारा ऐसा साक्ष्य प्रस्तुत न किए जाने से यह मुद्दा अभियुक्त के पक्ष में चला जाएगा ।

17. इसके पश्चात् विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री भंभानी ने **राजेश**

---

[1] (1977) 3 एस. सी. सी. 218.

कुमार बनाम **राज्य द्वारा राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय के पैरा 73 और 74 का अवलंब निम्न प्रकार लिया है :–

> "73. वर्तमान मामले में राज्य यह दर्शाने में असफल रहा है कि अपीलार्थी समाज के लिए निरन्तर भय बना हुआ है और यह दर्शाने में भी असफल रहा है कि वह सुधार और पुनर्वास किए जाने से परे है । दूसरी ओर उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय के पैरा 77 में निम्न प्रकार मत व्यक्त किया गया है :–
>
> > 'हमारे समक्ष ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि अपीलार्थी समाज में पुनर्वास किए जाने योग्य नहीं है । हमारे समक्ष ऐसा भी कोई साक्ष्य नहीं है कि वह समाज में पुनर्वास किए जाने योग्य है । ऐसी परिस्थिति को उदासीन परिस्थिति कहा जा सकता है ।'
>
> 74. उच्च न्यायालय के उपर्युक्त निष्कर्ष से यह स्पष्ट हो जाता है कि अभिलेख पर यह दर्शाने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि अभियुक्त समाज में सुधरने और पुनर्वास किए जाने के योग्य नहीं है और उच्च न्यायालय ने इसे एक उदासीन परिस्थिति कहा है । हमारी राय में उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से गलती की है । यह तथ्य कि अभियुक्त का समाज में पुनर्वास किया जा सकता है और उसमें सुधार भी किया जा सकता है, इसलिए यह निश्चित रूप से एक उपशमनकारी परिस्थिति इसलिए है कि राज्य ने इसके प्रतिकूल कोई भी साक्ष्य नहीं दिया है और उच्च न्यायालय इस परिस्थिति पर विचार करने में असफल रहा है । उच्च न्यायालय इस पर विचार करने में भी असफल रहा है कि अपीलार्थी किसी भी प्रतिकूल साक्ष्य के अभाव में समाज के लिए एक निरन्तर बने रहने वाला भय है । अतः, ससम्मान, उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय के पैरा 78 में अपीलार्थी से संबंधित उपशमनकारी परिस्थितियों को बहुत ही संकीर्ण दृष्टि से देखा गया है । उच्च न्यायालय ने केवल इस बात पर विचार किया है कि उसने यह अपराध पहली बार किया है और उस पर एक परिवार की देख-रेख की जिम्मेदारी है । अतः, हमें यह कहना पड़ रहा है कि उपशमनकारी परिस्थितियों से संबंधित उच्च न्यायालय का मत, जहां तक अपीलार्थी का संबंध है, अत्यंत अनुचित और संकीर्ण है ।"

---

[1] (2011) 13 एस. सी. सी. 706.

इस चर्चा से यह दर्शित होता है कि इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अपीलार्थी के पक्ष में जाने वाली उपशमनकारी परिस्थितियों पर समुचित रूप से विचार नहीं किया गया है और अन्तिम विश्लेषण के अनुसार मामला विरल से विरलतम की शर्त को पूरा नहीं करता है, अतः, इस न्यायालय ने मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास से प्रतिस्थापित किया है । उच्च न्यायालय के विनिश्चय के पैरा 73 और 74 में की गई चर्चा से यह उपदर्शित नहीं होता है कि शर्त-3 और शर्त-4 से संबंधित राज्य द्वारा प्रस्तुत किए गए किसी भी साक्ष्य के अभाव में, जैसा कि **बचन सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 206 में कहा गया है, संपूर्ण कार्यवाही दूषित हो जाती है और यह मामला सदैव अभियुक्त के पक्ष में ही जाना चाहिए । निःसंदेह, यह एक सुसंगत विचार है जिसका आंकलन, अभिलेख पर प्रस्तुत अन्य परिस्थितियों के साथ न्यायालय द्वारा संचयी रूप से किया जाना चाहिए । अतः, हमारा यह निष्कर्ष है कि विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दूसरी दलील में कोई सार नहीं है ।

18. **राम नरेश और अन्य** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने मृत्यु दंडादेश से संबंधित सिद्धांतों के अर्थान्वयन पर विचार किया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि गुरुतरकारी और उपशमनकारी दोनों ही प्रकार की परिस्थितियों के संचयी प्रभाव पर विचार किया जाना चाहिए । निर्णय के पैरा 76 से 81 निम्न प्रकार हैं :–

> "76. इस न्यायालय द्वारा हाल ही में दिए गए विनिश्चयों में अधिकथित विधि के, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, अन्तर्गत ऐसे सिद्धांतों का उल्लेख किया गया है जिनका अवलंब **बचन सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में और उसके पश्चात् **माछी सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में लिया गया था । उपर्युक्त निर्णयों में प्राथमिक रूप से इन दोनों सिद्धांतों का दो खण्डों में वर्णन किया गया है – एक गुरुतरकारी परिस्थितियों के रूप में जबकि दूसरा उपशमनकारी । न्यायालय ने इन दोनों पहलुओं के संचयी प्रभाव पर विचार किया है और सामान्यतया न्यायालय के लिए यह अधिक उचित नहीं होगा कि वह दंड दिए जाने के सिद्धांत को अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू को निम्न परिस्थितियों में से विनिश्चत करे और शेष परिस्थितियों को पूर्णतया अनदेखा करे । न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह दोनों परिस्थितियों पर संतुलित रूप से विचार करे । न्यायालय के लिए यह उचित होगा

---

[1] (2012) 4 एस. सी. सी. 257.

कि वह संतुलित रूप से ऐसा अन्तिम निष्कर्ष निकाले जिसके आधार पर दांडिक न्याय तंत्र को और बेहतर किया जा सके तथा वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 354(3) के अधीन अनुध्यात प्रभावी और अर्थपूर्ण तर्कणा उपलब्ध कराए ।

गुरुतरकारी परिस्थितियां

(1) ऐसे अभियुक्तों द्वारा कारित किए गए हत्या, बलात्संग, सशस्त्र डकैती, अपहरण आदि जैसे जघन्य अपराध जो पूर्वापराधी होते हैं या पहले से गंभीर अपराध कारित किए होते हैं और उनके लिए दोषसिद्ध भी किए गए होते हैं ।

(2) अपराध ऐसी दशा में कारित किया गया हो जब अपराधी एक अन्य गंभीर अपराध के कारित किए जाने में पहले से आलिप्त हो ।

(3) अपराध इस आशय से कारित किया गया हो ताकि समाज में भय का वातावरण बन जाए और अपराध ऐसे हथियार से सार्वजनिक स्थान पर कारित किया गया हो जो एक से अधिक व्यक्तियों के जीवन के लिए भयपरत हो ।

(4) हत्या का अपराध मुक्तिधन के लिए कारित किया गया हो या इसी प्रकार के अन्य अपराध जो धनीय लाभ के लिए कारित किए जाते हैं ।

(5) अपराध भाड़े के अपराधी द्वारा कारित किया गया हो ।

(6) अपराध पैशाचिक रूप में कारित किया गया हो जिसमें आहत के साथ यातनापूर्ण और अमानवता का व्यवहार किया गया हो ।

(7) अपराध ऐसे व्यक्ति द्वारा कारित किया गया हो जब वह विधिपूर्ण अभिरक्षा में हो ।

(8) हत्या या कोई अपराध ऐसे व्यक्ति को रोकने के लिए कारित किया गया हो जो स्वयं के या अन्य किसी व्यक्ति के विधिपूर्ण परिरोध में गिरफ्तार किए जाने या अभिरक्षा में लेने जैसे कार्य से संबंधित विधिपूर्वक अपनी ड्यूटी कर रहा हो । उदाहरणार्थ, ऐसे व्यक्ति की हत्या किया जाना जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 43 के अधीन अपने कर्तव्य का विधिपूर्ण निर्वहन कर रहा था ।

(9) जब अपराध इतनी बड़ी संख्या में किया गया हो कि जैसे संपूर्ण परिवार या किसी विशेष समुदाय के सदस्यों की हत्या का

प्रयास किया गया हो ।

(10) जब बालक, महिला, पिता के साथ रहने वाली पुत्री या अपने चाचा के साथ रहने वाली भतीजी जैसे निर्दोष आहत, असहाय व्यक्ति या ऐसे व्यक्ति के साथ अपराध कारित किया गया हो जिसने अपराधी के संबंध पर भरोसा किया हो और सामाजिक रीतियों पर विश्वास किया हो ।

(11) जब हत्या ऐसे हेतु के लिए की गई हो जिससे पूर्ण रूप से दुर्वृत्तता और क्षुद्रता साबित होती हो ।

(12) जब हत्या बिना प्रकोपन के निर्दयतापूर्वक रूप में की गई हो ।

(13) जब अपराध इतनी बर्बरता से किया गया हो कि इससे न केवल न्यायिक अन्तःकरण को आघात पहुंचे अपितु सामाजिक अन्तःकरण भी क्षतिग्रस्त हो जाए ।

उपशमनकारी परिस्थितियां

(1) ऐसी रीति और परिस्थितियां जिनके अन्तर्गत और अधीन अपराध कारित किया गया है, उदाहरणार्थ, घोर मानसिक या भावनात्मक असंतुलन या घोर प्रकोपन जैसी परिस्थितियां जो कि सामान्य अनुक्रम में इन सभी परिस्थितियों के विरोधाभासी होती हैं ।

(2) अभियुक्त की आयु एक सुसंगत विचार है किंतु स्वयं में कोई निर्णायक कारक नहीं है ।

(3) पुनः अपराध के कारित किए जाने में अभियुक्त के आलिप्त न होने की संभावना और उसके सुधर जाने या उसका पुनर्वास होने की संभाव्यता ।

(4) अभियुक्त की दशा से यह दर्शित होता हो कि वह मानसिक रूप से अशक्त था और इस अशक्तता के कारण वह अपने आपराधिक आचरण से संबंधित परिस्थितियों को नहीं समझ सका था ।

(5) जीवन के सामान्य अनुक्रम में आने वाली ऐसी परिस्थितियों से अभियुक्त का ऐसा आचरण संभव हो और इससे निरन्तर किए जा

रहे प्रपीड़न जैसी उल्लिखित परिस्थितियों में उसका मानसिक संतुलन प्रभावित होता हो या वास्तव में ऐसी परिस्थितियों से मानव आचरण ऐसी सीमा तक पहुंच जाता हो जिसमें मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए अभियुक्त को यह विश्वास हो जाता हो कि वह इस अपराध को कारित करने के लिए नैतिक रूप से न्यायोचित है ।

(6) जब न्यायालय साक्ष्य का समुचित मूल्यांकन करने पर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अपराध पूर्व नियोजित रीति में कारित नहीं किया गया है और यह कि मृत्यु एक अन्य अपराध कारित किए जाने के परिणामस्वरूप हुई है और यह कि यह अर्थ लगाए जाने की संभावना हो कि प्राथमिक अपराध कारित किए जाने के परिणामस्वरूप मृत्यु हुई है ।

(7) जब एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के परिसाक्ष्य के आधार पर अवलंब लेना पूर्णतया उचित हो यद्यपि अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त का दोष साबित कर दिया हो ।

77. दंडादेश के सिद्धांत से संबंधित प्रश्न को तय करते समय न्यायालय को कतिपय सिद्धांतों का अनुसरण करना चाहिए और ये सिद्धांत मृत्यु दंडादेश के अधिरोपित किए जाने या अन्यथा दंड दिए जाने से संबंधित उपरोक्त विचारों के अतिरिक्त अत्यंत महत्वपूर्ण आधार हैं ।

सिद्धांत

(1) न्यायालय को मृत्यु दंडादेश अधिरोपित करने के लिए इस कसौटी का प्रयोग करना चाहिए कि मामला विरल से विरलतम मामले की कोटि में आता है या नहीं ।

(2) न्यायालय की राय में, अन्य कोई दंडादेश अर्थात् आजीवन कारावास अधिरोपित किया जाना पूर्णतया अनुचित होगा और इससे न्याय नहीं होगा ।

(3) आजीवन कारावास नियम है और मृत्यु दंडादेश अपवाद ।

(4) आजीवन कारावास के दंडादेश के विकल्प का प्रयोग अपराध की प्रकृति और परिस्थितियों तथा सभी सुसंगत विचारों को

दृष्टिगत करते हुए सावधानीपूर्वक नहीं किया जा सकता ।

(5) अपराध कारित किए जाने का तरीका (नियोजित या अन्यथा) और रीति (बर्बरता और अमानवता आदि की सीमा) तथा उन परिस्थितियों पर भी विचार किया जाना चाहिए जिनके अधीन ऐसा जघन्य अपराध कारित किया गया है ।

78. कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है, ये सिद्धांत न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग किए जाने के लिए स्वीकृत संकेत हैं किंतु सदैव यह प्रयास किया जाता है कि इन सिद्धांतों का अत्यधिक परिगणन किसी भी प्रकार से करने से न्यायिक विवेकाधिकार विचलित न हो । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय ये ऐसे विचार हैं जो संचयी रूप से या अन्यथा न्यायालय के ध्यान में रहते हैं । इसे परम नियम कहना कठिन होगा । प्रत्येक मामला उसके अपने गुणागुणों के आधार पर विनिश्चित किया जाना चाहिए । न्यायिक विनिश्चय में केवल वह भाव व्यक्त किया जाता है जिसके आधार पर न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग सीमित रूप से किया जा सकता है । प्रत्येक मामले के अपने तथ्यों के आधार पर ही न्याय किया जा सकता है । ये ऐसे कारक हैं जिनके आधार पर न्यायालय दोनों पक्षों के बीच पूर्ण न्याय करने पर विचार कर सकता है ।

79. इसके पश्चात् न्यायालय को गुरुतरकारी और उपशमनकारी परिस्थितियों का एक तुलनपत्र बनाना चाहिए । इन दोनों पहलुओं को महत्व दिया जाना चाहिए । न्यायालय को दोनों परिस्थितियों के बीच संतुलित रूप से विचार करना चाहिए और यह तय करना चाहिए कि न्याय किस ओर दिया जाना चाहिए । अपराध और दंड के बीच अनुपात का सिद्धांत 'जैसे को तैसा' का सिद्धांत है जो प्रत्येक दंडादेश का आधार है जिसे न्यायोचित माना जाता है । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि भारतीय दांडिक विधिशास्त्र के अधीन आनुपातिकता का सिद्धांत, दंडादेश के सिद्धांत को पूरी तरह लागू होता है । इस प्रकार, न्यायालय को केवल इस पर विचार नहीं करना होगा कि उचित क्या है अपितु यह भी देखना होगा कि अभियुक्त का समाज पर व्यापक रूप से क्या प्रभाव पड़ेगा ।

80. प्रत्येक दंडादेश का अपना प्रभाव पड़ता ही है, वह न केवल अकेले अभियुक्त पर अपितु उसका प्रभाव सम्पूर्ण समाज पर भी पड़ता है । इस प्रकार, न्यायालय को मृत्यु दंडादेश जैसा घोर दंडादेश अधिरोपित करते समय दंडादेश के प्रतिकारात्मक और निवारक पहलू पर भी विचार करना चाहिए ।

81. निःसंदेह, जब कभी कारित किए गए अपराध की रीति, उससे संबंधित परिस्थितियां और अपराध किए जाने के हेतु और आहत की हैसियत के आधार पर मामला विरल से विरलतम मामले की परिधि के अधीन आ जाता है और न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि आजीवन कारावास अधिरोपित किया जाना अनुचित माना जाएगा, तब न्यायालय मृत्यु शास्ति अधिनिर्णीत कर सकता है । जब कभी मामला विरल से विरलतम जैसे मामले के अपवाद के अधीन आ जाता है, तब न्यायालय का यह विवेकाधिकार बन जाता है कि वह मृत्यु दंडादेश के स्थान पर आजीवन कारावास अधिरोपित करे ।"

19. इस प्रकार यह सुस्थापित है, न्यायालय दोनों परिस्थितियों (गुरुतरकारी तथा उपशमनकारी परिस्थितियां) के संचयी प्रभाव पर विचार करेगा और न्यायालय के लिए यह अधिक समुचित नहीं होगा कि वह दंडादेश के सिद्धांत के सबसे अधिक महत्वपूर्ण पहलू को, अन्य बातों को अनदेखा करते हुए विनिश्चित करे और न्यायालय का यह प्राथमिक कर्तव्य है कि वह दोनों परिस्थितियों पर संतुलित रूप से विचार करे । इसके अतिरिक्त, सदैव यह प्रयास किया जाना चाहिए कि किसी भी प्रकार से इन सिद्धांतों का अत्यधिक परिगणन करने से न्यायिक विवेकाधिकार विचलित न हो और यह कि गुरुतरकारी तथा उपशमनकारी परिस्थितियों को अपेक्षाकृत महत्व दिया जाना चाहिए और यह कि न्यायालय को दोनों परिस्थितियों के बीच संतुलन स्थापित करना चाहिए तथा इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि न्याय के लिए किसको अधिक महत्व दिया जाए । अब हम इन सिद्धांतों को दृष्टिगत करते हुए, वर्तमान पुनर्विलोकन आवेदन पर विचार करेंगे ।

20. अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री से यह दर्शित होता है कि पुनर्विलोकनाधीन निर्णय दिए जाने के पश्चात्, आवेदक ने इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय से स्नातक प्रारंभिक परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है जिसके आधार पर वह स्नातक स्तर पर अध्ययन कर सकता है और यह

कि वह गांधी विचार परीक्षा में भी सफल हो गया है और उसने जनवरी, 2016 में आयोजित कला प्रतियोगिता में भाग लिया है । यह प्रकथन किया गया है कि आवेदक का कारावास के दौरान का आचरण बेदाग है । इस मामले में **बचन सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 206 में उल्लिखित शर्त 1, 2, 5, 6 और 7 से संबंधित कोई भी प्रतिवाद नहीं किया गया है किंतु अब इस बात पर बल दिया गया है कि यह संभावना है कि अभियुक्त में सुधार आ सकता है और उसका पुनर्वास किया जा सकता है । यद्यपि, आवेदक द्वारा यह प्रयास पुनर्विलोकनाधीन निर्णय दिए जाने के पश्चात् किए गए हैं, फिर भी हमने इस संबंध में प्रस्तुत की गई सामग्री पर विचार किया है कि इनके आधार पर भिन्न मत दिया जा सकता है या नहीं । हमने अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री का सूक्ष्मता से परिशीलन किया है किंतु हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि गुरुतरकारी परिस्थितियां अर्थात् अत्यंत दुर्वृत्तता और बर्बरतापूर्ण रीति जिसमें अपराध कारित किया गया था और यह तथ्य कि आहत चार वर्ष की एक असहाय बालिका थी, से स्पष्ट रूप से उपशमनकारी परिस्थितियां जो अब अभिलेख पर प्रस्तुत की गई हैं, विचार में लाने योग्य नहीं रह जाती हैं । मामले की संपूर्ण पृष्ठभूमि पर विचार करने के पश्चात्, हमारी सुविचारित राय में यह भिन्न मत व्यक्त किए जाने का मामला नहीं है । अतः, हम पुनर्विलोकनाधीन निर्णय में व्यक्त किए गए मत की पुष्टि करते हैं और वर्तमान पुनर्विलोकन आवेदन खारिज करते हैं ।

आवेदन खारिज किए गए ।

अस.

मुत्तइकोस उर्फ सुब्रह्मणि

बनाम

तमिलनाडु राज्य मार्फत पुलिस निरीक्षक

3 जुलाई, 2017

न्यायमूर्ति प्रफुल्ल सी. पन्त और न्यायमूर्ति दीपक गुप्ता

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – हत्या – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का विलंबित होना – पुलिस थाने से घटनास्थल का दूर होना – आहत को सर्वप्रथम अस्पताल भेजना – घटना 4.30 बजे अपराह्न में घटित हुई थी और उसके तत्काल पश्चात् आहत को अस्पताल ले जाया गया, ऐसी स्थिति में घटनास्थल से छह किलोमीटर दूर पुलिस थाने में 11.30 बजे अपराह्न में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराना विलंबित नहीं कहा जा सकता ।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 3 – हितबद्ध साक्षी – घटना के दौरान नातेदार साक्षियों का आहत होना – स्पष्ट साक्ष्य दिया जाना – नातेदार साक्षियों द्वारा घटनाक्रम से संबंधित स्पष्ट साक्ष्य दिया गया है, इसलिए उनके साक्ष्य को इस आधार पर अविश्वसनीय नहीं ठहराया जा सकता कि वे हितबद्ध साक्षी हैं और उनके साक्ष्य के आधार पर की गई दोषसिद्धि न्यायोचित होगी ।

इस मामले में इत्तिलाकर्ता और अभियुक्तों की भूमि एक दूसरे के साथ सटी हुई थी और बीच में मेंड बनी हुई थी जिसके दोनों ओर नारियल के वृक्ष लगाने पर दोनों पक्षों के बीच विवाद हो गया और इसी झगड़े के दौरान नटराजन की मृत्यु हो गई । विचारण न्यायालय के समक्ष पांच अभियुक्तों का विचारण किया गया जिनमें अभियुक्त-1, अभियुक्त-2, अभियुक्त-4 और अभियुक्त-5 को दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 302 के अधीन नटराजन की हत्या करने का दोषी पाया गया । विचारण न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर अभियुक्तों द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की गई । उच्च न्यायालय ने केवल अभियुक्त-2 को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध का दोषी

पाया और अभियुक्त-1, अभियुक्त-4 और अभियुक्त-5 को दंड संहिता की धारा 324 के अधीन अपराध का दोषी पाया । इसके पश्चात् अभियुक्त-2 ने उच्च न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर अपनी दोषसिद्धि के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के आदेश की पुष्टि की और अभियुक्त की अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह घटना तारीख 26 मार्च, 2004 को 4.30 बजे अपराह्न में घटित हुई है । उसी दिन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट 11.30 बजे अपराह्न में दर्ज कराई गई है । पुलिस थाने से घटनास्थल की दूरी छह किलोमीटर है । यहां यह बात कहना सुसंगत होगा कि इत्तिलाकर्ता को, जो इस घटना में आहत हुआ था, सबसे पहले अस्पताल ले जाया गया था । इन परिस्थितियों में हमें अपीलार्थी की ओर से दी गई इस दलील में कोई बल दिखाई नहीं देता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में हुए विलंब के संबंध में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है । (पैरा 8)

नातेदार साक्षियों के परिसाक्ष्य में अभिलेख से यह स्पष्ट है कि चारों प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अर्थात् अभि. सा. 1, अभि. सा. 2, अभि. सा. 3 और अभि. सा. 4 आहत हुए हैं और उनको कारित हुई क्षतियां अभिलेख पर साबित की गई हैं । इन साक्षियों के साक्ष्य को मात्र इस कारण अविश्वसनीय नहीं ठहराया जा सकता कि वे इत्तिलाकर्ता के नातेदार हैं । निःसंदेह, हितबद्ध साक्षी या नातेदार साक्षी के साक्ष्य की कड़ी सावधानी से संवीक्षा की जानी चाहिए, किन्तु वर्तमान मामले में आहत साक्षियों के परिसाक्ष्य की कड़ी सावधानी से संवीक्षा करने के पश्चात् भी हमारा यह निष्कर्ष है कि उनके परिसाक्ष्य पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है । जहां तक अभियुक्त-1 के बारे में मृतक की हत्या कारित करने के अपराध के हेतु या आशय का संबंध है, यह बात महत्वपूर्ण है कि अपीलार्थी (अभियुक्त-2) ने , जो घातक आयुध से लैस था, मृतक का पीछा किया था और उसके सिर पर दो बार हमला किया था । इन सभी तथ्यों पर संचयी रूप से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इस मामले में जो आपराधिक मानव वध किया गया है वह हत्या की कोटि में आता है । यह कहना आवश्यक नहीं है कि अभिलेख पर यह दर्शाने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि मृतक ने अपने ऊपर हमला करवाने के लिए अपीलार्थी को प्रकोपित किया था । (पैरा 11 और 12)

अवलंबित निर्णय

पैरा

[2008] (2008) 12 एस. सी. सी. 173 :
अशोक कुमार चौधरी और अन्य बनाम
बिहार राज्य ; 9

[2001] (2001) 7 एस. सी. सी. 690 :
रविन्दर कुमार और एक अन्य बनाम **पंजाब राज्य** । 10

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2010 की दांडिक अपील सं. 1206.

2007 की दांडिक अपील सं. 618 में मद्रास उच्च न्यायालय के तारीख 18 जून, 2009 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से — सर्वश्री वी. गंगाराज (ज्येष्ठ अधिवक्ता), (श्रीमती) एन. शोभा, राम अधिमूलम, शिल्प विनोद और शोभा रामामूर्ति

प्रत्यर्थी की ओर से — सुश्री नित्य श्रीनिवासन और श्री एम. योगेश कन्ना

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति प्रफुल्ल सी. पन्त ने दिया ।

न्या. पन्त – यह अपील 2007 की दांडिक अपील सं. 618 में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 18 जून, 2009 को पारित किए गए उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है जिसके अनुसार उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी मुत्तइकोस **उर्फ** सुब्रह्मणि के संबंध में भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 302 के अधीन किए गए अपराध के लिए अपर सेशन न्यायाधीश, इरोड द्वारा की गई दोषसिद्धि और अधिरोपित दंडादेश की पुष्टि की है ।

2. हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना है और अभिलेख पर प्रस्तुत दस्तावेज का परिशीलन किया है ।

3. संक्षेप में, अभियोजन वृत्तांत इस प्रकार है कि सुंदरामूर्ति (इत्तिलाकर्ता), चितंबरम (अभि. सा. 2) और श्रीमती पपाती (अभि. सा. 3) का पुत्र है । युवराज (अभि. सा. 4) और रामास्वामी (अभि. सा. 12) इत्तिलाकर्ता के नातेदार हैं । ये सभी ग्राम इलावन्तम के निवासी हैं । अभियुक्त गुरुस्वामी (अभियुक्त-1) और अभि. सा. 2 के पास एक दूसरे के

बराबर में भू-संपत्ति थी । उनकी भूमि के बीच में एक मेंड बनी हुई थी । इस मेंड के दोनों ओर नारियल के पेड़ लगाने पर दोनों पक्षों के बीच विवाद हो गया । तारीख 26 मार्च, 2004 को लगभग 9.30 बजे पूर्वाह्न में, अपीलार्थी (अभियुक्त-2) अन्य सह-अभियुक्तों के साथ इत्तिलाकर्ता के घर पर आया और उसने विवाद निपटाने के लिए पंचायत बैठाने के लिए विवश किया जिस पर इत्तिलाकर्ता ने उससे कहा कि उसके स्थान के अतिरिक्त अन्य किसी स्थान पर पंचायत बिठाई जाए । इस पर लगभग 4.30 बजे अपराह्न में उस दिन अभियुक्त-2 अरुवल से लैस होकर अन्य अभियुक्तों के साथ आया जिनके पास डंडे, सरिये और गदाला जैसे घातक आयुध मौजूद थे और अभियुक्त-1 के द्वारा उकसाए जाने पर उन्होंने अभि. सा. 1, अभि. सा. 2, अभि. सा. 3, अभि. सा. 4, अभि. सा. 7 और नटराजन (मृतक) पर हमला किया । अभियुक्त-2 अर्थात् अपीलार्थी के संबंध में यह कहा गया है कि उसने नटराजन का पीछा करके उसके सिर पर अरुवल से दो बार वार किया था । मृतक नटराजन वह व्यक्ति था जिसने झगड़ा करने वाले दो दलों का मात्र बीच-बचाव ही किया था । अन्य अभियुक्तों ने अभि. सा. 1 से अभि. सा. 4 और अभि. सा. 7 पर हमला किया । जब झगड़ा होने पर भीड़ एकत्र हो गई, तब अभियुक्त वहां से भाग गए । ईश्वरामूर्ति (अभि. सा. 11) सभी आहतों को अस्पताल ले गया किन्तु नटराजन की मृत्यु हो चुकी थी । लगभग 9 बजे अपराह्न में, शेष आहतों (अभि. सा. 1 से अभि. सा. 4 और अभि. सा. 7) को सरकारी अस्पताल, इरोड से लोटस अस्पताल भेज दिया गया । अस्पताल से सूचना प्राप्त होने पर उप निरीक्षक (अभि. सा. 27) वहां पहुंचा और उसने अभि. सा. 1 का कथन अभिलिखित किया और अपराध सं. 42/2004 के अनुसार दंड संहिता की धारा 147, 148, 447, 448, 452, 427, 324, 307 और 302 के अधीन मामला दर्ज किया ।

4. अन्वेषण के दौरान, पुलिस निरीक्षक रवीन्द्रन (अभि. सा. 28) घटनास्थल पर पहुंचा और उसका मुआयना किया । वह अस्पताल भी गया और नटराजन के शव की मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट तैयार की । डा. परमेश्वरम (अभि. सा. 10) ने तारीख 27 मार्च, 2004 को मृतक के शव का शव-परीक्षण किया और मृत्यु-पूर्व की क्षतियां अभिलिखित की । चिकित्सक ने यह राय दी कि मृतक की मृत्यु आघात और रक्तस्राव के कारण हुई है । डा. कनगचलाकुमार (अभि. सा. 8) ने प्रत्यक्षदर्शी आहत साक्षी को कारित हुई क्षतियां अभिलिखित कीं । अन्वेषण अधिकारी ने साक्ष्य एकत्र करने के और अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् अपीलार्थी मुत्तइकोस **उर्फ** सुब्रह्मणि

सहित सभी 14 अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया ।

5. मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द किए जाने पर पक्षकारों की सुनवाई के पश्चात् सभी अभियुक्तों के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 147, 450, 307, 324 और 302 तथा तमिलनाडु संपत्ति (नुकसानी और हानि) निवारण अधिनियम की धारा 3 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आरोप विरचित किया गया जिस पर उन्होंने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने की मांग की । अभियोजन पक्ष ने कुल मिलाकर 28 साक्षियों की परीक्षा कराई और अभिलेख पर उपलब्ध कई दस्तावेजी साक्ष्य साबित किए जो अभियुक्त के समक्ष रखे गए थे । अभियुक्तों ने यह अभिकथन किया कि उनके विरुद्ध जो साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है वह मिथ्या है । अभियुक्तों ने अपनी प्रतिरक्षा में डा. वेलुस्वामी (प्रतिरक्षा साक्षी-1) की परीक्षा कराई । विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि अभियुक्त-1, अभियुक्त-2, अभियुक्त-4 और अभियुक्त-5 दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 302 के अधीन नटराजन की हत्या कारित किए जाने से संबंधित दंडनीय अपराध के दोषी हैं । दोषसिद्ध किए गए इन व्यक्तियों ने उच्च न्यायालय के समक्ष दांडिक अपील फाइल की ।

6. उच्च न्यायालय ने साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थी (अभियुक्त-2) ने मृतक का पीछा करके उसके सिर पर दो बार वार किया है, इस प्रकार केवल अभियुक्त-2 ही दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध का ही दोषी है और उच्च न्यायालय ने, इस अपीलार्थी के संबंध में विचारण न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत आजीवन कारावास के दंडादेश और अधिरोपित किए गए 2,000/- रुपए के जुर्माने, की पुष्टि की है और अभियुक्त-1, अभियुक्त-4 और अभियुक्त-5 ने अन्य साक्षियों पर हमला किया था इसलिए उन्हें दंड संहिता की धारा 324 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है और उनमें प्रत्येक अभियुक्त को पहले से भोगे गए कारावास की अवधि जितने कारावास से दंडादिष्ट किया गया है । यह अपील अभियुक्त-2 द्वारा फाइल की गई है जिसके संबंध में दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए की गई दोषसिद्धि और दिए गए दंडादेश की पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई है ।

7. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने हमारे समक्ष यह दलील दी है कि वर्तमान मामले में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट विलंब से दर्ज कराई गई है और इस रिपोर्ट में जिस कहानी का उल्लेख किया गया है वह अभियुक्त-2 सहित अनेक व्यक्तियों को अपराध में फंसाने के लिए बाद में आया विचार है ।

अपीलार्थी की ओर से यह भी दलील दी गई है कि अभि. सा. 1, अभि. सा. 2, अभि. सा. 3 और अभि. सा. 4 एक दूसरे के नातेदार हैं, इसलिए उनका परिसाक्ष्य विश्वसनीय नहीं है । यह भी दलील दी गई है कि वैसे भी यह मामला अचानक झगड़ा होने का मामला है और ऐसी स्थिति में नटराजन की हत्या कारित करने के लिए अभियुक्त-2 के संबंध में कोई भी हेतु या आशय हो ही नहीं सकता था । यह भी दलील दी गई है कि अभियुक्त-2 पिछले सात वर्षों से जेल में कारावास भोग रहा है ।

8. हमने अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की दलीलों और राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा दिए गए उत्तरों पर विचार किया है । वर्तमान मामले में यह साबित किया गया है कि यह घटना तारीख 26 मार्च, 2004 को 4.30 बजे अपराह्न में घटित हुई है । उसी दिन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट 11.30 बजे अपराह्न में दर्ज कराई गई है । पुलिस थाने से घटनास्थल की दूरी छह किलोमीटर है । यहां यह बात कहना सुसंगत होगा कि इत्तिलाकर्ता को, जो इस घटना में आहत हुआ था, सबसे पहले अस्पताल ले जाया गया था । इन परिस्थितियों में हमें अपीलार्थी की ओर से दी गई इस दलील में कोई बल दिखाई नहीं देता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में हुए विलंब के संबंध में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है ।

9. **अशोक कुमार चौधरी और अन्य** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्न मत व्यक्त किया है :–

> "16. यह बड़ी आम बात है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई जाने में मात्र विलंब का होना अभियोजन पक्षकथन के लिए स्वयं में घातक नहीं है । फिर भी, यह एक ऐसा सुसंगत कारक है जिस पर न्यायालय को अवश्य ध्यान देना चाहिए और यह देखना चाहिए कि विलंब के संबंध में कोई स्पष्टीकरण दिया गया है या नहीं और यदि कोई स्पष्टीकरण दिया गया है तब इस पर विचार करना चाहिए कि यह समाधानप्रद है या नहीं । यदि कोई भी समाधानप्रद स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है, तब अभियोजन पक्ष के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जा सकता है । तथापि, ऐसी स्थिति में कि विलंब समुचित और समाधानप्रद रूप से स्पष्ट किया गया हो, अभियोजन पक्षकथन को मात्र इस आधार पर त्यक्त नहीं किया जा सकता कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट विलंब से दर्ज कराई गई है । स्पष्टतः, यह स्पष्टीकरण

---

[1] (2008) 12 एस. सी. सी. 173.

मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों के आलोक में दिया जाना चाहिए ।"

10. **रविन्दर कुमार और एक अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्न मत व्यक्त किया है :–

> "14. जब किसी मामले में इस आधार पर आलोचना की जाती है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट विलंबित है, तब न्यायालय को इस बात पर विचार करना चाहिए कि ऐसा विलंब क्यों हुआ है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराए जाने में बहुत से युक्तियुक्त कारण हो सकते हैं । ग्रामीण व्यक्ति इस बात से अनभिज्ञ रहते हैं कि समय बर्बाद किए बिना अपराध की सूचना पुलिस को दी जानी चाहिए । इस प्रकार की अनभिज्ञता शहरी व्यक्तियों में भी कम नहीं पाई जाती । ऐसे व्यक्ति तत्काल यह नहीं सोच पाते हैं कि पुलिस थाने जाया जाए । दूसरी संभावना यह होती है कि पुलिस थाने पहुंचने के लिए इत्तिलाकर्ताओं के पास समुचित वाहन की सुविधा नहीं होती है । तीसरी संभावना इस बात की होती है, जो कि आमतौर पर पाई जाती है कि मृतक के परिवार के सदस्य अपने मन को शांत करने और दुख भरे वातावरण को सामान्य करने में अधिक समय लेते हैं और उसके पश्चात् ही वे आवश्यक सूचना देने के लिए पुलिस थाने जा पाते हैं । एक अन्य कारण यह भी है कि जिन व्यक्तियों से ऐसी सूचना पुलिस थाने में दिए जाने की प्रत्याशा की जाती है, वे भी मानसिक रूप से इतने अशक्त हो जाते हैं कि पुलिस को उनसे स्पष्ट सूचना नहीं मिल पाती है ।"

विधि की उपरोक्त सुस्थापित स्थिति को दृष्टिगत करते हुए और अभियोजन पक्ष की ओर से दिए गए स्पष्टीकरण पर विचार करते हुए हमारा यह निष्कर्ष है कि ऐसा कोई कारण दिखाई नहीं देता है जिसके आधार पर अभियोजन वृत्तांत को इसलिए संदिग्ध कहा जाए कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट विलंबित है ।

11. नातेदार साक्षियों के परिसाक्ष्य में अभिलेख से यह स्पष्ट है कि चारों प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अर्थात् अभि. सा. 1, अभि. सा. 2, अभि. सा. 3 और अभि. सा. 4 आहत हुए हैं और उनको कारित हुई क्षतियां अभिलेख पर साबित की गई हैं । इन साक्षियों के साक्ष्य को मात्र इस कारण अविश्वसनीय नहीं ठहराया जा सकता कि वे इत्तिलाकर्ता के नातेदार हैं ।

---

[1] (2001) 7 एस. सी. सी. 690.

निःसंदेह, हितबद्ध साक्षी या नातेदार साक्षी के साक्ष्य की कड़ी सावधानी से संवीक्षा की जानी चाहिए, किन्तु वर्तमान मामले में आहत साक्षियों के परिसाक्ष्य की कड़ी सावधानी से संवीक्षा करने के पश्चात् भी हमारा यह निष्कर्ष है कि उनके परिसाक्ष्य पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है ।

12. जहां तक अभियुक्त-1 के बारे में मृतक की हत्या कारित करने के अपराध के हेतु या आशय का संबंध है, यह बात महत्वपूर्ण है कि अपीलार्थी (अभियुक्त-2) ने, जो घातक आयुध से लैस था, मृतक का पीछा किया था और उसके सिर पर दो बार हमला किया था । इन सभी तथ्यों पर संचयी रूप से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इस मामले में जो आपराधिक मानव वध किया गया है वह हत्या की कोटि में आता है । यह कहना आवश्यक नहीं है कि अभिलेख पर यह दर्शाने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि मृतक ने अपने ऊपर हमला करवाने के लिए अपीलार्थी को प्रकोपित किया था ।

13. ऊपर चर्चा किए गए कारणों के आधार पर हमारा यह निष्कर्ष है कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आक्षेपित आदेश में, जिसके द्वारा दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के संबंध में अपीलार्थी (अभियुक्त-2) की दोषसिद्धि और दंडादेश की पुष्टि की गई है, हस्तक्षेप करने के लिए कोई भी पर्याप्त कारण नहीं है ।

14. अतः, हमारा यह निष्कर्ष है कि इस अपील में कोई भी सार नहीं है और यह खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

अस.

संसद् के अधिनियम

[1][गर्भधारण पूर्व और प्रसवपूर्व निदान-तकनीक (लिंग चयन प्रतिषेध)] अधिनियम, 1994

(1994 का अधिनियम संख्यांक 57)

[20 सितम्बर, 1994]

[2][गर्भधारण से पूर्व या उसके पश्चात् लिंग चयन के प्रतिषेध का और आनुवंशिकी अप्रसामान्यताओं या मेटाबोली विकारों या गुण-सूत्री अप्रसामान्यताओं या कतिपय जन्मजात विकृतियों या लिंग-सहलग्न विकारों का पता लगाने के प्रयोजनों के लिए प्रसवपूर्व निदान-तकनीकों के विनियमन का तथा लिंग अवधारण के लिए ऐसी तकनीकों के, जिनके कारण स्त्री-लिंगी भ्रूणवध हो सकता हो, दुरुपयोग के निवारण का तथा उन से संबंधित या उनके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम]

भारत गणराज्य के पैंतालीसवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1

प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारम्भ – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम [1][गर्भधारण पूर्व और प्रसवपूर्व निदान-तकनीक (लिंग चयन प्रतिषेध)] अधिनियम, 1994 है ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय सम्पूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे ।

---

[1] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 3 द्वारा (14-2-2003 से) प्रतिस्थापित ।

[2] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 2 द्वारा (14-2-2003 से) वृहत नाम के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

2. परिभाषाएं – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "समुचित प्राधिकारी" से धारा 17 के अधीन नियुक्त समुचित प्राधिकारी अभिप्रेत है ;

(ख) "बोर्ड" से धारा 7 के अधीन गठित केन्द्रीय पर्यवेक्षण बोर्ड अभिप्रेत है ;

[1][(खक) "गर्भ उत्पाद" से गर्भाधान से जन्म होने तक विकास के किसी भी प्रक्रम पर गर्भधारण का कोई उत्पाद अभिप्रेत है, जिसमें अतिरिक्त भ्रूण-झिल्ली तथा भ्रूण या गर्भ सम्मिलित है ;

(खख) "भ्रूण" से गर्भाधान के पश्चात् आठ सप्ताह (छप्पन दिन) के अंत तक कोई विकासोन्मुख मानव जीव अभिप्रेत है ;

(खग) "गर्भ" से गर्भाधान या सृजन से अनुगामी सत्तानवें दिन से प्रारंभ होकर (जिसमें कोई ऐसा समय अपवर्जित करके जिसमें उसका विकास निलंबित रहा हो) और जन्म पर समाप्त होने वाली इसकी विकास की अवधि के दौरान कोई मानव जीव अभिप्रेत है ;]

(ग) "आनुवंशिकी सलाह केन्द्र" से रोगियों को आनुवंशिकी सलाह देने के लिए कोई संस्था, अस्पताल, परिचर्यागृह या कोई स्थान, चाहे वह किसी भी नाम से ज्ञात हो, अभिप्रेत है ;

(घ) "आनुवंशिकी क्लिनिक" से अभिप्रेत है, कोई क्लिनिक, संस्था, अस्पताल, परिचर्यागृह या कोई स्थान, चाहे वह किसी भी नाम से ज्ञात हो, जिसका प्रसवपूर्व निदान प्रक्रियाएं करने के लिए उपयोग किया जाता है ।

[1][**स्पष्टीकरण** – इस खंड के प्रयोजनों के लिए, "आनुवंशिकी क्लिनिक" में कोई ऐसा यान सम्मिलित है जिसमें अल्ट्रासाउंड मशीन या इमेजिंग मशीन या स्कैनर अथवा ऐसे अन्य उपस्कर का जो गर्भ के लिंग का अवधारण करने में सक्षम हो या किसी ऐसे वहनीय उपस्कर का जो गर्भावस्था के दौरान लिंग का पता लगाने के लिए या गर्भधारण से पूर्व लिंग चयन के लिए सक्षम है, उपयोग किया जाता है ;]

---

[1] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 4 द्वारा (14-2-2003 से) अंत:स्थापित ।

(ङ) "आनुवंशिकी प्रयोगशाला" से कोई प्रयोगशाला अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत कोई ऐसा स्थान भी है जहां आनुवंशिकी क्लिनिक से प्रसवपूर्व निदान-परीक्षण के लिए प्राप्त नमूनों का विश्लेषण या परीक्षण करने की सुविधाएं दी जाती हैं ।

[1][**स्पष्टीकरण** – इस खंड के प्रयोजनों के लिए, "आनुवंशिकी प्रयोगशाला" में कोई ऐसा स्थान सम्मिलित हैं, जहां अल्ट्रासाउंड मशीन या इमेजिंग मशीन या स्कैनर अथवा ऐसे अन्य उपस्कर का, जो गर्भ के लिंग का अवधारण करने में सक्षम हैं या किसी ऐसे वहनीय उपस्कर का जो गर्भावस्था के दौरान लिंग का पता लगाने या गर्भधारण से पूर्व लिंग चयन करने में सक्षम है, उपयोग किया जाता है ;]

(च) "स्त्री रोग विशेषज्ञ" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है, जिसके पास स्त्री रोग विज्ञान और प्रसूति विज्ञान में स्नातकोत्तर अर्हता है ;

[2][(छ) "चिकित्सा आनुवंशिकीविज्ञ" में ऐसा व्यक्ति सम्मिलित है जिसके पास लिंग चयन और प्रसवपूर्व निदान-तकनीकों के क्षेत्रों में आनुवंशिकी विज्ञान में कोई उपाधि या डिप्लोमा है या निम्नलिखित अर्हता अभिप्राप्त करने के पश्चात् इनमें से किसी क्षेत्र में कम से कम दो वर्ष का अनुभव है :–

(i) भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् अधिनियम, 1956 (1956 का 102) के अधीन मान्यताप्राप्त चिकित्सा अर्हताओं में से कोई ; या

(ii) जैव-विज्ञान में कोई स्नातकोत्तर उपाधि ;]

(ज) "बाल चिकित्सक" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसके पास बाल चिकित्सा विज्ञान में स्नातकोत्तर अर्हता है ;

[3][(झ) "प्रसवपूर्व निदान प्रक्रिया" से अभिप्रेत है सभी स्त्री रोग संबंधी या प्रसूति विज्ञान संबंधी या चिकित्सा संबंधी प्रक्रियाएं, जैसे कि पराश्रव्य लेखन, भ्रूण दार्शिकी, गर्भधारण के पूर्व या पश्चात् लिंग

---

[1] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 4 द्वारा (14-2-2003 से) अंत:स्थापित ।

[2] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 4 द्वारा (14-2-2003 से) खंड (छ) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 4 द्वारा (14-2-2003 से) खंड (झ) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

चयन के लिए, किसी प्रकार के किसी विश्लेषण या प्रसवपूर्व निदान-परीक्षण के लिए, किसी पुरुष या स्त्री के, उल्व-तरल, जरायु अंकुरिका, भ्रूण, रक्त या किसी अन्य टिशू या तरल का किसी आनुवंशिकी प्रयोगशाला या आनुवंशिकी क्लिनिक में भेजने के लिए नमूना लेना या निकालना ;]

(ञ) "प्रसवपूर्व निदान-तकनीक" के अन्तर्गत सभी प्रसवपूर्व निदान प्रक्रियाएं और प्रसवपूर्व निदान परीक्षण हैं ;

[1][(ट) "प्रसवपूर्व निदान परीक्षण" से किसी गर्भवती स्त्री या गर्भ उत्पाद के आनुवंशिकी या मेटाबोली विकारों या गुणसूत्री अप्रसामान्यताओं या जन्मजात असंगतियों या हीमोग्लोबिन विकृतियों या लिंग सहलग्न रोगों का पता लगाने के लिए किया गया पराश्रव्य लेखन या उसके उल्व-तरल, जरायु अंकुरिका, रक्त या किसी टिशू या तरल का कोई परीक्षण या विश्लेषण अभिप्रेत है ;]

(ठ) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए, नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(ड) "रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी" से ऐसा चिकित्सा व्यवसायी अभिप्रेत है, जिसके पास भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् अधिनियम, 1956 (1956 का 102) की धारा 2 के खंड (ज) में परिभाषित कोई मान्यताप्राप्त चिकित्सा अर्हता है और जिसका नाम राज्य चिकित्सा रजिस्टर में प्रविष्ट है ;

(ढ) "विनियम" से इस अधिनियम के अधीन बोर्ड द्वारा विरचित विनियम अभिप्रेत है ;

[2][(ण) "लिंग चयन" के अन्तर्गत इस बात को सुनिश्चित करने या उसकी संभाव्यता को वर्धित करने के प्रयोजन के लिए कि भ्रूण किसी विशिष्ट लिंग का होगा कोई प्रक्रिया, तकनीक, परीक्षण या कोई प्रयोग या नुस्खा या व्यवस्था है ;

(त) "सोनोलोजिस्ट या चित्रण विशेषज्ञ" से कोई ऐसा व्यक्ति

---

[1] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 4 द्वारा (14-2-2003 से) खंड (ट) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 4 द्वारा (14-2-2003 से) अंत:स्थापित ।

अभिप्रेत है जिसके पास भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् अधिनियम, 1956 (1956 का 102) के अधीन मान्यताप्राप्त कोई चिकित्सा अर्हता है या जिसके पास पराश्रव्य लेखन या इमेजिंग तकनीकों या विकिरण विज्ञान में कोई स्नातकोत्तर अर्हता है ;

(थ) "राज्य बोर्ड" से धारा 16क के अधीन गठित कोई राज्य पर्यवेक्षण बोर्ड या कोई संघ राज्यक्षेत्र पर्यवेक्षण बोर्ड अभिप्रेत है ;

(द) विधान-मंडल वाले संघ राज्यक्षेत्र के संबंध में "राज्य सरकार" से संविधान के अनुच्छेद 239 के अधीन राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त उस संघ राज्यक्षेत्र का प्रशासक अभिप्रेत है ।]

अध्याय 2

आनुवंशिकी सलाह केन्द्रों, आनुवंशिकी प्रयोगशालाओं और आनुवंशिकी क्लिनिकों का विनियमन

3. आनुवंशिकी सलाह केन्द्रों, आनुवंशिकी प्रयोगशालाओं और आनुवंशिकी क्लिनिकों का विनियमन – इस अधिनियम के प्रारंभ से ही, –

(1) कोई भी आनुवंशिकी सलाह केन्द्र, आनुवंशिकी प्रयोगशाला या आनुवंशिकी क्लिनिक जब तक कि वह इस अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत न हो, प्रसवपूर्व निदान-तकनीकों से संबंधित कोई क्रियाकलाप नहीं करेगा या ऐसे क्रियाकलापों के किए जाने में सहबद्ध या सहायक नहीं होगा ।

[1][(2) कोई भी आनुवंशिकी सलाह केन्द्र, आनुवंशिकी प्रयोगशाला या आनुवंशिकी क्लिनिक किसी ऐसे व्यक्ति को जिसके पास ऐसी अर्हताएं, जो विहित की जाएं, नहीं हैं, मानार्थ या संदाय पर नियोजित नहीं करेगा या नियोजित नहीं कराएगा या उसकी सेवाएं नहीं लेगा ।]

(3) कोई भी चिकित्सा आनुवंशिकीविज्ञ, स्त्री रोग विशेषज्ञ, बाल चिकित्सक, रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी या कोई अन्य व्यक्ति, इस अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत स्थान से भिन्न किसी स्थान पर कोई प्रसवपूर्व निदान-तकनीक प्रक्रिया स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से उपयोग नहीं करेगा या नहीं कराएगा या उसके उपयोग में

---

[1] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 5 द्वारा (14-2-2003 से) उपधारा (2) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

सहायता नहीं करेगा ।

[1][**3क. लिंग चयन पर प्रतिषेध** – कोई व्यक्ति, जिसमें बंध्यता के क्षेत्र में कोई विशेषज्ञ या विशेषज्ञों का दल सम्मिलित है, किसी स्त्री या किसी पुरुष या दोनों पर अथवा उनमें से किसी से या दोनों से लिए गए किसी टिशू, भ्रूण गर्भ उत्पाद, तरल या गेमीट पर स्वयं लिंग चयन नहीं करेगा या किसी अन्य व्यक्ति से नहीं कराएगा अथवा ऐसा करने में स्वयं सहायता नहीं करेगा या किसी अन्य व्यक्ति से सहायता नहीं लेगा ।

3ख. ऐसे व्यक्तियों, प्रयोगशालाओं, क्लिनिकों, आदि को, जो अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत नहीं हैं, पराश्रव्य मशीन के विक्रय पर प्रतिषेध – कोई व्यक्ति ऐसे किसी आनुवंशिकी सलाह केन्द्र, आनुवंशिकी प्रयोगशाला, आनुवंशिकी क्लिनिक या किसी अन्य व्यक्ति को जो अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत नहीं है, पराश्रव्य मशीन, इमेजिंग मशीन या स्कैनर या भ्रूण के लिंग का पता लगाने के लिए सक्षम किसी अन्य उपस्कर का विक्रय नहीं करेगा ।]

अध्याय 3

प्रसवपूर्व निदान-तकनीकों का विनियमन

4. **प्रसवपूर्व निदान-तकनीकों का विनियमन** – इस अधिनियम के प्रारंभ से ही, –

(1) ऐसे किसी भी स्थान का, जिसके अन्तर्गत रजिस्ट्रीकृत आनुवंशिकी सलाह केन्द्र या आनुवंशिकी प्रयोगशाला या आनुवंशिकी क्लिनिक है, किसी व्यक्ति द्वारा, खंड (2) में विनिर्दिष्ट प्रयोजनों और खंड (3) में विनिर्दिष्ट किन्हीं बातों को पूरा करने के पश्चात् के सिवाय, प्रसवपूर्व निदान-तकनीक प्रक्रिया करने के लिए उपयोग नहीं किया जाएगा अथवा उपयोग नहीं कराया जाएगा ;

(2) कोई भी प्रसवपूर्व निदान-तकनीक का निम्नलिखित अप्रसामान्यताओं में से किसी का पता लगाने के प्रयोजनों के सिवाय, उपयोग नहीं किया जाएगा :–

(i) गुणसूत्री अप्रसामान्यताएं ;

(ii) आनुवंशिकी मेटाबोली रोग ;

---

[1] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 6 द्वारा (14-2-2003 से) अंत:स्थापित ।

(iii) हीमोग्लोबिन विकृतियां ;

(iv) लिंग सहलग्न आनुवंशिकी रोग ;

(v) जन्मजात असंगतियां ;

(vi) ऐसी कोई अप्रसामान्यताएं या रोग जो केन्द्रीय पर्यवेक्षण बोर्ड द्वारा विनिर्दिष्ट किए जाएं ।

[1][(3) किसी भी प्रसवपूर्व निदान-तकनीक का उपयोग या परिचालन तभी किया जाएगा जब ऐसा करने के लिए अर्हित व्यक्ति का उन कारणों से जो लेखबद्ध किए जाएंगे, यह समाधान हो जाता है कि निम्नलिखित किसी शर्त की पूर्ति हो गई है, अर्थात् :–

(i) गर्भवती स्त्री की आयु पैंतीस वर्ष से अधिक है ;

(ii) गर्भवती स्त्री के दो या दो से अधिक स्वतःगर्भपात हुए हैं या भ्रूण हानि हुई है ;

(iii) गर्भवती स्त्री, विभव विरूपजनकों, जैसे कि ओषधियों, विकिरणों, संक्रमण या रसायनों से प्रभावित हुई है ;

(iv) गर्भवती स्त्री या उसके पति के कुटुम्ब में मानसिक मंदता या शारीरिक विरूपिता जैसे कि संस्तम्भता या किसी अन्य आनुवंशिकी रोग का परिवार वृत है ;

(v) कोई अन्य शर्त जो बोर्ड द्वारा विनिर्दिष्ट की जाए :

परंतु किसी गर्भवती स्त्री पर पराश्रव्य लेखन करने वाला व्यक्ति क्लिनिक में ऐसी रीति में जो विहित की जाए, उसका पूरा अभिलेख रखेगा और उसमें पाई गई कोई कमी या अशुद्धि या धारा 5 या धारा 6 के उपबंधों का उल्लंघन मानी जाएगी जब तक कि ऐसा पराश्रव्य लेखन करने वाला व्यक्ति उसके विपरीत साबित नहीं कर देता है ।

(4) कोई व्यक्ति जिसमें गर्भवती स्त्री का नातेदार या पति सम्मिलित है, खंड (2) में विनिर्दिष्ट प्रयोजनों के सिवाय, उस पर किसी प्रसवपूर्व निदान-तकनीक का उपयोग नहीं कराएगा या उसे प्रोत्साहित नहीं करेगा ।

(5) कोई व्यक्ति जिसमें किसी स्त्री का कोई नातेदार या पति

---

[1] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 7 द्वारा (14-2-2003 से) उपधारा (3) और उपधारा (4) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

सम्मिलित है, उस स्त्री पर या उसके नातेदार या पति पर या दोनों पर किसी लिंग चयन करने वाली तकनीक का प्रयोग नहीं कराएगा या कराने के लिए उन्हें प्रोत्साहित नहीं करेगा ।]

5. गर्भवती स्त्री की लिखित सहमति और भ्रूण के लिंग की संसूचना का प्रतिषेध – (1) धारा 3 के खंड (2) में निर्दिष्ट कोई भी व्यक्ति, प्रसवपूर्व-निदान प्रक्रियाओं का उपयोग तब करेगा जब –

(क) उसने संबंधित गर्भवती स्त्री को ऐसी प्रक्रियाओं के सभी ज्ञात अनुषंगी प्रभावों और अनुवर्ती प्रभावों को स्पष्ट कर दिया हो ;

(ख) उसने ऐसी प्रक्रियाएं कराने की उसकी लिखित सहमति ऐसी भाषा में, जो वह समझती है; विहित प्रारूप में प्राप्त कर ली हो ;

(ग) खंड (ख) के अधीन प्राप्त उसकी लिखित सहमति की प्रति गर्भवती स्त्री को दे दी हो ।

[1][(2) कोई व्यक्ति जिसमें प्रसवपूर्व निदान-प्रक्रिया करने वाला व्यक्ति सम्मिलित है, संबंधित गर्भवती स्त्री या उसके नातेदारों या किसी अन्य व्यक्ति को शब्दों, संकेतों द्वारा या किसी अन्य रीति से भ्रूण का लिंग संसूचित नहीं करेगा।] ।

6. लिंग अवधारण का प्रतिषेध – इस अधिनियम के प्रारंभ से ही, –

(क) कोई भी आनुवंशिकी सलाह केन्द्र या आनुवंशिकी प्रयोगशाला या आनुवंशिकी क्लिनिक किसी प्रसवपूर्व निदान-तकनीक का जिसके अन्तर्गत भ्रूण के लिंग का अवधारण करने के प्रयोजन के लिए पराश्रव्य लेखन है, अपने केन्द्र, प्रयोगशाला या क्लिनिक में उपयोग नहीं करेगा या नहीं कराएगा ;

(ख) कोई भी व्यक्ति, किसी भ्रूण के लिंग का अवधारण करने के प्रयोजन के लिए किसी प्रसवपूर्व निदान-तकनीक का, जिसके अन्तर्गत पराश्रव्य लेखन है, उपयोग नहीं करेगा या नहीं कराएगा ;

[2][(ग) कोई भी व्यक्ति, गर्भधारण से पूर्व या उसके पश्चात् लिंग का चयन किसी भी ढंग से कारित नहीं करेगा या कारित करवाने के

---

[1] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 7 द्वारा (14-2-2003 से) उपधारा (2) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 9 द्वारा (14-2-2003 से) अंतःस्थापित ।

लिए अनुज्ञात नहीं करेगा ।]

अध्याय 4

केन्द्रीय पर्यवेक्षण बोर्ड

7. केन्द्रीय पर्यवेक्षण बोर्ड का गठन – (1) केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के अधीन बोर्ड को प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग और कृत्यों का पालन करने के लिए एक बोर्ड का, जो केन्द्रीय पर्यवेक्षण बोर्ड के नाम से ज्ञात होगा, गठन करेगी ।

(2) बोर्ड निम्नलिखित से मिलकर बनेगा, अर्थात् :–

(क) परिवार कल्याण मंत्रालय या विभाग का भारसाधक मंत्री, जो पदेन अध्यक्ष होगा ;

(ख) भारत सरकार का सचिव जो परिवार कल्याण विभाग का भारसाधक है, पदेन उपाध्यक्ष होगा ;

[1][(ग) केन्द्रीय सरकार द्वारा महिला और बाल विकास, विधि और न्याय मंत्रालय के विधि कार्य विभाग या विधायी विभाग तथा आयुर्विज्ञान और होम्योपैथी की भारतीय पद्धति के भारसाधक केन्द्रीय सरकार के मंत्रालयों का प्रतिनिधित्व करने के लिए, नियुक्त किए गए तीन पदेन सदस्य ;]

(घ) केन्द्रीय सरकार का स्वास्थ्य सेवा महानिदेशक, पदेन ;

(ङ) दस सदस्य, जो निम्नलिखित में से दो-दो केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किए जाएंगें –

(i) विख्यात चिकित्सा आनुवंशिकीविज्ञ ;

[2][(ii) विख्यात स्त्री रोग विज्ञानी और प्रसूतिरोग विज्ञानी या स्त्री रोग या प्रसूति तंत्र का विशेषज्ञ ;]

(iii) विख्यात बालचिकित्सा विज्ञानी ;

---

[1] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 10 द्वारा (14-2-2003 से) खंड (ग) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 10 द्वारा (14-2-2003 से) उपखंड (ii) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(iv) विख्यात समाज विज्ञानी ; और

(v) महिला कल्याण संगठनों के प्रतिनिधि ;

(च) तीन महिला संसद् सदस्य, जिनमें से दो लोक सभा द्वारा और एक राज्य सभा द्वारा निर्वाचित की जाएंगी ;

(छ) चार सदस्य, जो राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने के लिए दो वर्णानुक्रम में और दो उलटे वर्णानुक्रम में केन्द्रीय सरकार द्वारा चक्रानुक्रम से नियुक्त किए जाएंगे :

परन्तु इस खंड के अधीन कोई नियुक्ति, यथास्थिति, राज्य सरकार या संघ राज्यक्षेत्र की सरकार की सिफारिश पर ही की जाएगी, अन्यथा नहीं ;

(ज) केन्द्रीय सरकार के संयुक्त सचिव की पंक्ति से अनिम्न पंक्ति का या उसके समतुल्य पंक्ति का अधिकारी, जो परिवार कल्याण या भारसाधक है ; पदेन सदस्य-सचिव होगा ।

8. सदस्यों की पदावधि – (1) पदेन सदस्य से भिन्न सदस्य की पदावधि, –

(क) धारा 7 की उपधारा (2) के खंड (ङ) या खंड (च) के अधीन नियुक्ति की दशा में, तीन वर्ष होगी : [1]***

[2][परंतु धारा 7 की उपधारा (2) के खंड (च) के अधीन निर्वाचित सदस्य की पदावधि, जैसे ही वह सदस्य, मंत्री या राज्य मंत्री या उप मंत्री अथवा लोक सभा की अध्यक्ष या उपाध्यक्ष अथवा राज्य सभा की उप सभापति हो जाती है अथवा उस सदन की सदस्य नहीं रह जाती है, जिससे वह निर्वाचित की गई थी, समाप्त हो जाएगी ; और]

(ख) उक्त उपधारा के खंड (छ) के अधीन नियुक्ति की दशा में, एक वर्ष होगी ।

(2) यदि किसी अन्य सदस्य के पद में कोई आकस्मिक रिक्ति, चाहे वह उसकी मृत्यु, पदत्याग या रुग्णता अथवा अन्य असमर्थता के कारण

---

[1] 2001 के अधिनियम सं. 32 की धारा 2 द्वारा (3-9-2001 से) "और" शब्द का लोप किया गया ।

[2] 2001 के अधिनियम सं. 32 की धारा 2 द्वारा (3-9-2001 से) अंत:स्थापित ।

अपने कृत्यों के निर्वहन में अयोग्यता के कारण होती है तो ऐसी रिक्ति, केन्द्रीय सरकार द्वारा नए सिरे से नियुक्ति करके भरी जाएगी और इस प्रकार नियुक्त सदस्य, उस व्यक्ति की, जिसके स्थान पर उसे ऐसे नियुक्त किया गया है, शेष पदावधि के लिए, पद धारण करेगा ।

(3) उपाध्यक्ष ऐसे कृत्यों का पालन करेगा जो, समय-समय पर, अध्यक्ष द्वारा उसे सौंपे जाएं ।

(4) सदस्यों द्वारा अपने कृत्यों के निर्वहन में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया वह होगी, जो विहित की जाए ।

9. बोर्ड के अधिवेशन – (1) बोर्ड का अधिवेशन ऐसे समय और स्थान पर होगा और वह अपने अधिवेशनों में कारबार के संव्यवहार के बारे में (जिसके अन्तर्गत ऐसे अधिवेशनों में गणपूर्ति है) प्रक्रिया के ऐसे नियमों का पालन करेगा जो विनियमों द्वारा उपबंधित किए जाएं :

परंतु बोर्ड का अधिवेशन छह माह में कम से कम एक बार होगा ।

(2) अध्यक्ष और उसकी अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष बोर्ड के अधिवेशनों की अध्यक्षता करेगा ।

(3) यदि किसी कारणवश अध्यक्ष या उपाध्यक्ष बोर्ड के किसी अधिवेशन में उपस्थित होने में असमर्थ है तो अधिवेशन में उपस्थित सदस्यों द्वारा चुना गया कोई अन्य सदस्य अधिवेशन की अध्यक्षता करेगा ।

(4) ऐसे सभी प्रश्न जो बोर्ड के किसी अधिवेशन के समक्ष आएं, उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत द्वारा विनिश्चित किए जाएंगे और मत बराबर होने की स्थिति में, अध्यक्ष या उसकी अनुपस्थिति में पीठासीन व्यक्ति का द्वितीय या निर्णायक मत होगा और वह उसका प्रयोग करेगा ।

(5) पदेन सदस्यों से भिन्न सदस्य बोर्ड से, ऐसे भत्ते, यदि कोई हों, प्राप्त करेंगे, जो विहित किए जाएं ।

10. रिक्तियों, आदि से बोर्ड की कार्यवाहियों का अविधिमान्य न होना – बोर्ड का कोई कार्य या कार्यवाही, केवल इस कारण अविधिमान्य नहीं होगी कि, –

(क) बोर्ड में कोई रिक्ति है या उसके गठन में कोई त्रुटि है ; या

(ख) बोर्ड के सदस्य के रूप में कार्य करने वाले किसी व्यक्ति की नियुक्ति में कोई त्रुटि है ; या

(ग) बोर्ड की प्रक्रिया में कोई ऐसी अनियमितता है, जो मामले के गुणागुण पर प्रभाव नहीं डालती है ।

11. **विशिष्ट प्रयोजनों के लिए बोर्ड के साथ व्यक्तियों का अस्थायी सहयोजन** – (1) बोर्ड अपने साथ ऐसी रीति से और ऐसे प्रयोजनों के लिए जो विनियमों द्वारा अवधारित किए जाएं, किसी ऐसे व्यक्ति को सहयोजित कर सकेगा जिसकी सहायता या सलाह की वह इस अधिनियम के किसी उपबन्ध को कार्यान्वित करने के लिए वांछा करे ।

(2) उपधारा (1) के अधीन किसी प्रयोजन के लिए, बोर्ड द्वारा अपने साथ सहयोजित व्यक्ति को उस प्रयोजन से सुसंगत चर्चा में भाग लेने का अधिकार होगा किन्तु उसे बोर्ड के अधिवेशन में मत देने का अधिकार नहीं होगा और वह किसी अन्य प्रयोजन के लिए सदस्य नहीं होगा ।

12. बोर्ड के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति – (1) इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों के दक्षतापूर्ण निर्वहन में बोर्ड को समर्थ बनाने के प्रयोजन के लिए बोर्ड, ऐसे विनियमों के अधीन रहते हुए, जो इस निमित्त बनाए जाएं, उतने अधिकारियों या अन्य कर्मचारियों को (चाहे प्रतिनियुक्ति पर या अन्यथा) नियुक्त कर सकेगा, जितने वह आवश्यक समझे :

परंतु अधिकारियों के ऐसे प्रवर्ग की नियुक्ति, जिन्हें ऐसे विनियमों में विनिर्दिष्ट किया जाए, केन्द्रीय सरकार के अनुमोदन से की जाएगी ।

(2) बोर्ड द्वारा नियुक्त प्रत्येक अधिकारी या अन्य कर्मचारी, सेवा की ऐसी शर्तों के अधीन होगा और ऐसे पारिश्रमिक का हकदार होगा, जो विनियमों में विनिर्दिष्ट किया जाए ।

13. बोर्ड के आदेशों और अन्य लिखतों का अधिप्रमाणन – बोर्ड के सभी आदेश और विनिश्चय अध्यक्ष के या इस निमित्त बोर्ड द्वारा प्राधिकृत किसी अन्य सदस्य के हस्ताक्षर से अधिप्रमाणित किए जाएंगे और बोर्ड द्वारा जारी की गई सभी अन्य लिखतें, बोर्ड के सदस्य-सचिव, या वैसी ही रीति से इस निमित्त प्राधिकृत बोर्ड के किसी अन्य अधिकारी के हस्ताक्षर से अधिप्रमाणित की जाएंगी ।

14. सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए निरर्हताएं – कोई व्यक्ति सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए निरर्हित होगा, यदि वह –

(क) किसी ऐसे अपराध के लिए दोषसिद्ध ठहराया गया है और कारावास से दंडादिष्ट किया गया है, जिसमें, केन्द्रीय सरकार की राय में, नैतिक अधमता अन्तर्वलित है ; या

(ख) अनुन्मोचित दिवालिया है ; या

(ग) विकृतचित्त का है, और उसे सक्षम न्यायालय द्वारा ऐसा घोषित कर दिया गया है ; या

(घ) सरकार की या सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण में के किसी निगम की सेवा से हटा दिया गया है या पदच्युत कर दिया गया है ; या

(ङ) केन्द्रीय सरकार की राय में बोर्ड में ऐसा वित्तीय या अन्य हित रखता है जिसके कारण उसके द्वारा सदस्य के रूप में अपने कृत्यों के निर्वहन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है ; या

[1][(च) केन्द्रीय सरकार की राय में, लिंग के अवधारण के लिए प्रसवपूर्व निदान-तकनीक के उपयोग या उन्नयन में या किसी लिंग चयन तकनीक में सहयुक्त रहा है ।]

15. पुन: नियुक्ति के लिए सदस्य की पात्रता – सेवा के ऐसे अन्य निबन्धनों और शर्तों के अधीन रहते हुए जो विहित की जाएं, कोई व्यक्ति जो सदस्य नहीं रह जाता है, ऐसे सदस्य के रूप में पुन: नियुक्ति के लिए पात्र होगा :

[2][परन्तु पदेन सदस्य से भिन्न कोई सदस्य लगातार दो अवधियों से अधिक के लिए नियुक्त नहीं किया जाएगा ।]

[3][**16. बोर्ड के कृत्य** – बोर्ड के निम्नलिखित कृत्य होंगे, अर्थात् :–

(i) प्रसवपूर्व निदान-तकनीकों, लिंग चयन तकनीकों के

---

[1] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 11 द्वारा (14-2-2003 से) खंड (च) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 12 द्वारा (14-2-2003 से) अंत:स्थापित ।

[3] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 11 द्वारा (14-2-2003 से) धारा 16 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

उपयोग और उनके दुरुपयोग के विरुद्ध नीति-विषयक मामलों पर केन्द्रीय सरकार को सलाह देना ;

(ii) अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के कार्यान्वयन का पुनर्विलोकन करना और उन्हें मानीटर करना तथा केन्द्रीय सरकार को उक्त अधिनियम और नियमों में परिवर्तन करने के लिए सिफारिश करना ;

(iii) गर्भधारण पूर्व लिंग चयन और गर्भ के लिंग का प्रसवपूर्व अवधारण करने की प्रथा के विरुद्ध, जिसके कारण स्त्री लिंगी भ्रूण वध हो, लोक जागृति पैदा करना ;

(iv) आनुवंशिकी सलाह केन्द्रों, आनुवंशिकी प्रयोगशालाओं और आनुवंशिकी क्लिनिकों में कार्यरत व्यक्तियों द्वारा अनुपालन की जाने वाली आचार संहिता अधिकथित करना ;

(v) अधिनियम के अधीन गठित विभिन्न निकायों के कार्यपालन का निरीक्षण करना और उसके समुचित और प्रभावी क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए समुचित कदम उठाना ;

(vi) कोई अन्य कृत्य जो अधिनियम के अधीन विहित किए जाएं ।]

[1][**16क. राज्य पर्यवेक्षण बोर्ड और संघ राज्यक्षेत्र पर्यवेक्षण बोर्ड का गठन** – (1) विधान-मंडल वाला प्रत्येक राज्य और संघ राज्यक्षेत्र, यथास्थिति, राज्य पर्यवेक्षण बोर्ड या संघ राज्यक्षेत्र पर्यवेक्षण बोर्ड के नाम से ज्ञात एक बोर्ड का गठन करेगा जिसके निम्नलिखित कृत्य होंगे :–

(i) राज्य में गर्भधारणपूर्व लिंग चयन और गर्भ के लिंग का प्रसवपूर्व अवधारण करने की प्रथा के विरुद्ध, जिसके कारण स्त्रीलिंगी भ्रूणवध हो, लोक जागृति पैदा करना ;

(ii) राज्य में कार्यरत समुचित प्राधिकारियों के क्रियाकलापों का पुनर्विलोकन करना और उनके विरुद्ध समुचित कार्रवाई की सिफारिश करना ;

(iii) अधिनियम और नियमों के उपबंधों के कार्यान्वयन को

---

[1] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 12 द्वारा (14-2-2003 से) अंत:स्थापित ।

मानीटर करना और उनके संबंध में बोर्ड को उपयुक्त सिफारिशें करना ;

(iv) अधिनियम के अधीन राज्य में किए गए विभिन्न क्रियाकलापों की बाबत बोर्ड और केन्द्रीय सरकार को ऐसी समेकित रिपोर्टें भेजना, जो विहित की जाएं ; और

(v) ऐसे अन्य कृत्य, जो अधिनियम के अधीन विहित किए जाएं ।

(2) राज्य बोर्ड निम्नलिखित से मिलकर बनेगा :–

(क) राज्य में स्वास्थ्य और परिवार कल्याण का भारसाधक मंत्री, जो पदेन अध्यक्ष होगा ;

(ख) स्वास्थ्य और परिवार कल्याण विभाग का भारसाधक सचिव, जो पदेन उपाध्यक्ष होगा ;

(ग) महिला और बाल विकास, समाज कल्याण, विधि और आयुर्विज्ञान तथा होम्योपैथी की भारतीय पद्धति विभागों के भारसाधक पदेन सचिव या आयुक्त अथवा उनके प्रतिनिधि ;

(घ) राज्य सरकार के स्वास्थ्य और परिवार कल्याण या आयुर्विज्ञान तथा होम्योपैथी की भारतीय पद्धति का पदेन निदेशक ;

(ङ) विधान सभा या विधान परिषद् की तीन महिला सदस्य ;

(च) राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किए गए दस सदस्य, जिनमें से प्रत्येक दो निम्नलिखित प्रवर्गों से होंगे :–

(i) विख्यात समाज विज्ञानी और विधि विशेषज्ञ ;

(ii) गैर-सरकारी संगठनों से या अन्यथा विख्यात महिला सक्रियतावादी ;

(iii) विख्यात स्त्री रोग विज्ञानी और प्रसूति विज्ञानी या स्त्री रोग या प्रसूति तंत्र के विशेषज्ञ ;

(iv) विख्यात बाल चिकित्सक या चिकित्सीय आनुवंशिकी-विज्ञानी ;

(v) विख्यात विकिरण चिकित्सा विज्ञानी या सोनोलोजिस्ट ;

(छ) एक अधिकारी, जो परिवार कल्याण के भारसाधक संयुक्त

निदेशक की पंक्ति से नीचे का न हो और जो पदेन सदस्य सचिव होगा ।

(3) राज्य बोर्ड की बैठक चार मास में कम से कम एक बार होगी ।

(4) पदेन सदस्य से भिन्न किसी सदस्य की पदावधि तीन वर्ष की होगी ।

(5) पदेन सदस्य से भिन्न किसी सदस्य के पद में रिक्ति होने की दशा में, उसे नई नियुक्ति करके भरा जाएगा ।

(6) यदि विधान सभा का कोई सदस्य या विधान परिषद् का कोई सदस्य, जो राज्य बोर्ड का सदस्य है, मंत्री या विधान सभा का अध्यक्ष या उपाध्यक्ष अथवा विधान परिषद् का सभापति या उपसभापति हो जाता है तो वह राज्य बोर्ड का सदस्य नहीं रहेगा ।

(7) राज्य बोर्ड की गणपूर्ति इसकी कुल सदस्य संख्या के एक तिहाई से होगी ।

(8) राज्य बोर्ड, जब कभी अपेक्षित हो, एक सदस्य को सहयोजित कर सकता है परन्तु सहयोजित सदस्यों की संख्या राज्य बोर्ड की कुल सदस्य संख्या के एक तिहाई से अधिक नहीं होगी ।

(9) सहयोजित सदस्यों की, मताधिकार के सिवाय, वही शक्तियां और कृत्य होंगे जो अन्य सदस्यों के हैं और वे नियमों तथा विनियमों का पालन करेंगे ।

(10) उन विषयों के संबंध में, जो इस धारा में विनिर्दिष्ट नहीं हैं, राज्य बोर्ड उन्हीं प्रक्रियाओं तथा शर्तों का अनुसरण करेगा, जो बोर्ड को लागू हैं ।]

अध्याय 5

समुचित प्राधिकारी और सलाहकार समिति

17. समुचित प्राधिकारी और सलाहकार समिति – (1) केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, एक या अधिक समुचित प्राधिकारियों को, प्रत्येक संघ राज्यक्षेत्र के लिए नियुक्त करेगी ।

(2) राज्य सरकार, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, राजपत्र में

अधिसूचना द्वारा, एक या अधिक समुचित प्राधिकारियों को, संपूर्ण राज्य या उसके भाग के लिए प्रसवपूर्व लिंग अवधारण की समस्या की व्यापकता को, जिससे स्त्रीलिंगी, भ्रूणवध होता है, ध्यान में रखते हुए, नियुक्त करेगी ।

(3) उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन समुचित प्राधिकारियों के रूप में नियुक्त अधिकारी, –

[1][(क) जब संपूर्ण राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के लिए नियुक्त किए जाएं, तब वे निम्नलिखित तीन सदस्यों से मिलकर बनेंगे :–

(i) स्वास्थ्य और परिवार कल्याण के संयुक्त निदेशक की या उससे ऊपर की पंक्ति का एक अधिकारी या अध्यक्ष ;

(ii) महिला संगठन का प्रतिनिधित्व करने वाली एक विख्यात महिला ; और

(iii) संबंधित राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के विधि विभाग का एक अधिकारी :

परन्तु यह संबंधित राज्य या संघ राज्यक्षेत्र का कर्तव्य होगा कि वह प्रसवपूर्व निदान-तकनीक (विनियमन और दुरुपयोग निवारण) संशोधन अधिनियम, 2002 के प्रवृत्त होने के तीन मास के भीतर राज्य या संघ राज्यक्षेत्र स्तरीय बहुसदस्यीय समुचित प्राधिकरण का गठन करे :

परन्तु यह और कि उसमें होने वाली किसी रिक्ति को, उसके होने के तीन मास के भीतर भरा जाएगा ;]

(ख) जब राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के किसी भाग के लिए नियुक्त किए जाएं ऐसी अन्य पंक्ति के होंगे, जो, यथास्थिति, राज्य सरकार या केन्द्रीय सरकार उचित समझे ।

(4) समुचित प्राधिकारी के निम्नलिखित कृत्य होंगे, अर्थात् :–

(क) आनुवंशिकी सलाह केन्द्र, आनुवंशिकी प्रयोगशाला या आनुवंशिकी क्लिनिक के लिए रजिस्ट्रीकरण मंजूर, निलंबित या रद्द करना ;

---

[1] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 15 द्वारा (14-2-2003 से) खंड (क) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(ख) आनुवंशिकी सलाह केन्द्र, आनुवंशिकी प्रयोगशाला और आनुवंशिकी क्लिनिक के लिए विहित मानक लागू करना ;

(ग) इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों के भंग से संबंधित परिवादों का अन्वेषण करना और तत्काल कार्रवाई करना ;

(घ) रजिस्ट्रीकरण के आवेदनों पर तथा रजिस्ट्रीकरण के निलंबन या रद्दकरण की शिकायतों पर उपधारा (5) के अधीन गठित सलाहकार समिति की सलाह लेना और उस पर विचार करना ;

[1][(ङ) किसी व्यक्ति द्वारा किसी स्थान पर किसी लिंग चयन तकनीक के उपयोग के विरुद्ध स्वप्रेरणा से या उसकी जानकारी में लाए जाने पर उपयुक्त विधिक कार्रवाई करना और ऐसे मामले में स्वतंत्र रूप से अन्वेषण भी आरंभ करना ;

(च) लिंग चयन या प्रसवपूर्व लिंग अवधारण की प्रथा के विरुद्ध जनसाधारण में जागरूकता पैदा करना ;

(छ) अधिनियम और नियमों के उपबंधों के कार्यान्वयन का पर्यवेक्षण करना ;

(ज) प्रौद्योगिकी या सामाजिक दशाओं में परिवर्तनों के अनुसार नियमों में अपेक्षित उपांतरणों के संबंध में बोर्ड और राज्य बोर्डों को सिफारिश करना ;

(झ) रजिस्ट्रीकरण के निलंबन या रद्दकरण के लिए परिवाद के अन्वेषण के पश्चात् सलाहकार समिति द्वारा की गई सिफारिशों पर कार्रवाई करना ।]

(5) यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार समुचित प्राधिकारी को उसके कृत्यों के निर्वहन में सहायता और सलाह देने के लिए प्रत्येक समुचित प्राधिकारी के लिए एक सलाहकार समिति गठित करेगी और सलाहकार समिति के सदस्यों में से एक को उसका अध्यक्ष नियुक्त करेगी ।

(6) सलाहकार समिति निम्नलिखित से मिलकर बनेगी, अर्थात् :–

(क) स्त्री रोग विशेषज्ञ, प्रसूति विज्ञानी, बाल चिकित्सा विज्ञानी

---

[1] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 15 द्वारा (14-2-2003 से) अंत:स्थापित ।

और चिकित्सा आनुवंशिकीविज्ञों में से तीन आयुर्विज्ञान विशेषज्ञ ;

(ख) एक विधि विशेषज्ञ ;

(ग) यथास्थिति, राज्य सरकार या संघ राज्यक्षेत्र के सूचना और प्रचार से संबंधित विभाग का प्रतिनिधित्व करने के लिए अधिकारी ;

(घ) तीन विख्यात सामाजिक कार्यकर्ता जिनमें कम से कम एक महिला संगठनों के प्रतिनिधियों में से होगा ।

[1][(7) कोई भी व्यक्ति, जो लिंग के अवधारण या लिंग चयन की प्रसवपूर्व निदान-तकनीकों के उपयोग या उन्नयन में सहयुक्त रहा है, सलाहकार समिति का सदस्य नियुक्त नहीं किया जाएगा ।]

(8) सलाहकार समिति का अधिवेशन, रजिस्ट्रीकरण के किसी आवेदन पर या रजिस्ट्रीकरण के निलंबन या रद्दकरण के किसी परिवाद पर विचार करने के लिए और उस पर सलाह देने के लिए जब कभी वह उचित समझे या समुचित प्राधिकारी के अनुरोध पर किया जा सकेगा :

परन्तु दो अधिवेशनों के बीच की अवधि विहित अवधि से अधिक नहीं होगी ।

(9) वे निबन्धन और शर्तें जिनके अधीन रहते हुए कोई व्यक्ति सलाहकार समिति में नियुक्त किया जा सकेगा और ऐसी समिति द्वारा अपने कृत्यों के निर्वहन में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया वह होगी, जो विहित की जाए ।

[2][**17क. समुचित प्राधिकरियों की शक्तियां** – समुचित प्राधिकारी को निम्नलिखित विषयों की बाबत शक्तियां होंगी, अर्थात् :–

(क) ऐसे किसी व्यक्ति को समन करना, जिसके कब्जे में इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों के उल्लंघन से संबंधित कोई जानकारी है ;

(ख) खंड (क) से संबंधित किसी दस्तावेज या भौतिक पदार्थ को पेश करना ;

(ग) ऐसे किसी स्थान के संबंध में तलाशी वारंट जारी करना,

---

[1] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 15 द्वारा (14-2-2003 से) प्रतिस्थापित ।

[2] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 16 द्वारा (14-2-2003 से) अंत:स्थापित ।

जिसके बारे में संदेह है कि वह लिंग चयन तकनीक या प्रसवपूर्व लिंग अवधारण में लिप्त है ; और

(घ) ऐसा कोई अन्य विषय, जो विहित किया जाए ।]

अध्याय 6

आनुवंशिकी सलाह केन्द्रों, आनुवंशिकी प्रयोगशालाओं और आनुवंशिकी क्लिनिकों का रजिस्ट्रीकरण

[1][**18. आनुवंशिकी सलाह केन्द्रों, आनुवंशिकी प्रयोगशालाओं या आनुवंशिकी क्लिनिकों का रजिस्ट्रीकरण** – (1) कोई भी व्यक्ति, प्रसवपूर्व निदान-तकनीक (विनियमन और दुरुपयोग निवारण) संशोधन अधिनियम, 2002 के प्रारंभ के पश्चात्, कोई आनुवंशिकी सलाह केन्द्र, आनुवंशिकी प्रयोगशाला या आनुवंशिकी क्लिनिक, जिसके अंतर्गत ऐसा क्लिनिक, प्रयोगशाला या केन्द्र भी है, जिसमें अल्ट्रासाउंड मशीन या इमेजिंग मशीन या स्कैनर या कोई अन्य ऐसी प्रौद्योगिकी है, जो भ्रूण के लिंग का अवधारण करने और लिंग का चयन करने में समर्थ है, या उनमें से कोई सेवाएं प्रदान करता है तब तक नहीं खोलेगा जब तक कि ऐसा केन्द्र, प्रयोगशाला या क्लिनिक इस अधिनियम के अधीन सम्यक् रूप से रजिस्ट्रीकृत नहीं किया जाता है ।]

(2) उपधारा (1) के अधीन रजिस्ट्रीकरण के लिए प्रत्येक आवेदन समुचित अधिकारी को ऐसे प्ररूप में और ऐसी रीति से किया जाएगा और उसके साथ ऐसी फीस होगी, जो विहित की जाए ।

(3) प्रत्येक आनुवंशिकी सलाह केन्द्र, आनुवंशिकी प्रयोगशाला या आनुवंशिकी क्लिनिक जो भागत: या अनन्यत: इस अधिनियम के प्रारंभ के ठीक पूर्व धारा 4 में उल्लिखित किसी प्रयोजन के लिए प्रसवपूर्व निदान-तकनीक संबंधी सलाह देने या उनके उपयोग करने में लगा हुआ है, ऐसे प्रारंभ की तारीख से साठ दिन के भीतर रजिस्ट्रीकरण के लिए आवेदन करेगा ।

(4) धारा 6 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, प्रत्येक ऐसा आनुवंशिकी

---

[1] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 17 द्वारा (14-2-2003 से) उपधारा (1) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

सलाह केन्द्र, आनुवंशिकी प्रयोगशाला या आनुवंशिकी क्लिनिक जो प्रसवपूर्व निदान-तकनीक संबंधी सलाह देने या उनके उपयोग करने में लगा हुआ है, इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख से छह मास की समाप्ति पर, जब तक कि ऐसे केन्द्र, प्रयोगशाला या क्लिनिक द्वारा रजिस्ट्रीकरण के लिए आवेदन नहीं किया गया हो और उसका इस प्रकार पृथक्त: या संयुक्तत:, रजिस्ट्रीकरण नहीं किया जाता है अथवा तब जब कि ऐसे आवेदन का निपटारा कर दिया जाता है, इनमें से जो भी पूर्वतर हो, ऐसी किसी तकनीक संबंधी सलाह देना या उनका उपयोग बन्द कर देगा ।

(5) कोई आनुवंशिकी सलाह केन्द्र, आनुवंशिकी प्रयोगशाला और आनुवंशिकी क्लिनिक इस अधिनियम के अधीन तब तक रजिस्ट्रीकृत नहीं किया जाएगा जब तक कि समुचित प्राधिकारी का यह समाधान नहीं हो जाता है कि ऐसा केन्द्र, प्रयोगशाला या क्लिनिक ऐसी सुविधाएं प्रदान करने, ऐसे उपस्कर का अनुरक्षण करने और स्तरमान बनाए रखने की स्थिति में हैं, जो विहित किए जाएं ।

19. रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र – (1) समुचित प्राधिकारी, जांच करने के पश्चात् और अपना यह समाधान कर लेने के पश्चात् कि आवेदक ने इस अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए नियमों की सभी अपेक्षाओं का अनुपालन कर दिया है, और इस निमित्त सलाहकार समिति की सलाह को ध्यान में रखते हुए, यथास्थिति, आनुवंशिकी सलाह केन्द्र, आनुवंशिकी प्रयोगशाला या आनुवंशिकी क्लिनिक को, पृथक्त: या संयुक्तत: विहित प्ररूप में रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र देगा ।

(2) यदि, जांच करने के पश्चात् और आवेदक को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् और सलाहकार समिति की सलाह को ध्यान में रखते हुए, समुचित प्राधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि आवेदक ने इस अधिनियम या नियमों की अपेक्षाओं का अनुपालन नहीं किया है तो वह रजिस्ट्रीकरण संबंधी आवेदन को, ऐसे कारणों से जो लेखबद्ध किए जाएंगे, नामंजूर कर देगा ।

(3) प्रत्येक रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र का, ऐसी रीति से और ऐसी अवधि के पश्चात् तथा ऐसी फीस का संदाय किए जाने पर, जो विहित की जाए, नवीकरण किया जाएगा ।

(4) रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र, रजिस्ट्रीकृत आनुवंशिकी सलाह केन्द्र, आनुवंशिकी प्रयोगशाला या आनुवंशिकी क्लिनिक द्वारा अपने कारबार के स्थान में किसी सहजदृश्य स्थान पर प्रदर्शित किया जाएगा ।

20. रजिस्ट्रीकरण का रद्दकरण या निलम्बन – (1) समुचित प्राधिकारी, स्वप्रेरणा से या परिवाद किए जाने पर, आनुवंशिकी सलाह केन्द्र, आनुवंशिकी प्रयोगशाला या आनुवंशिकी क्लिनिक को यह हेतुक दर्शित करने के लिए सूचना जारी कर सकेगा कि उसका रजिस्ट्रीकरण, सूचना में उल्लिखित कारणों से निलंबित या रद्द क्यों न कर दिया जाए ।

(2) यदि आनुवंशिकी सलाह केन्द्र, आनुवंशिकी प्रयोगशाला या आनुवंशिकी क्लिनिक को सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देने के पश्चात् और सलाहकार समिति की सलाह को ध्यान में रखते हुए, समुचित प्राधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि इस अधिनियम या नियमों के उपबंधों में से किसी को भंग किया गया है तो वह किसी दांडिक कार्यवाही पर, जो वह ऐसे केन्द्र, प्रयोगशाला या क्लिनिक के विरुद्ध कर सकेगा, प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, यथास्थिति, उसके रजिस्ट्रीकरण को, ऐसी अवधि के लिए जो वह उचित समझे, निलंबित कर सकेगा या, उसके रजिस्ट्रीकरण को रद्द कर सकेगा ।

(3) उपधारा (1) और उपधारा (2) में किसी बात के होते हुए भी, यदि समुचित प्राधिकारी की यह राय है कि लोक हित में ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो वह, उसके लिए जो कारण है उन्हें लेखबद्ध करके, उपधारा (1) में निर्दिष्ट ऐसी कोई सूचना जारी किए बिना, किसी आनुवंशिकी सलाह केन्द्र, आनुवंशिकी प्रयोगशाला या आनुवंशिकी क्लिनिक के रजिस्ट्रीकरण को निलंबित कर सकेगा ।

21. अपील – आनुवंशिकी सलाह केन्द्र, आनुवंशिकी प्रयोगशाला या आनुवंशिकी क्लिनिक, समुचित प्राधिकारी द्वारा धारा 20 के अधीन पारित रजिस्ट्रीकरण के निलंबन या रद्दकरण के आदेश की तारीख से तीस दिन के भीतर, ऐसे आदेश के विरुद्ध विहित रीति से, –

(i) जहां वह अपील केन्द्रीय समुचित प्राधिकारी के आदेश के विरुद्ध है, वहां केन्द्रीय सरकार को ; और

(ii) जहां वह अपील राज्य के समुचित प्राधिकारी के आदेश के विरुद्ध है वहां राज्य सरकार को, अपील कर सकेगा ।

अध्याय 7

अपराध और शास्तियां

[1][**22. गर्भधारण पूर्व और प्रसवपूर्व लिंग अवधारण संबंधी विज्ञापन का प्रतिषेध और उसके उल्लंघन के लिए दंड** – (1) कोई भी व्यक्ति, संगठन, आनुवंशिकी सलाह केन्द्र, आनुवंशिकी प्रयोगशाला या आनुवंशिकी क्लिनिक, जिसके अंतर्गत ऐसा क्लिनिक, प्रयोगशाला या केन्द्र भी है, जिसमें अल्ट्रासाउंड मशीन, इमेजिंग मशीन या स्कैनर या कोई अन्य ऐसी प्रौद्योगिकी है, जो भ्रूण के लिंग का अवधारण करने और लिंग चयन करने में समर्थ है, प्रसवपूर्व लिंग अवधारण या गर्भधारण पूर्व लिंग चयन की सुविधाओं के बारे में, जो ऐसे केन्द्र प्रयोगशाला, क्लिनिक या किसी अन्य स्थान पर उपलब्ध है, कोई विज्ञापन, किसी भी रूप में, जिसके अंतर्गत इंटरनेट भी है, जारी, प्रकाशित, वितरित या संसूचित नहीं करेगा या जारी, प्रकाशित, वितरित या संसूचित नहीं करवाएगा ।

(2) कोई भी व्यक्ति या संगठन, जिसके अंतर्गत आनुवंशिकी सलाह केन्द्र, आनुवंशिकी प्रयोगशाला या आनुवंशिकी क्लिनिक भी है, किसी भी प्रकार के साधनों के द्वारा, चाहे वैज्ञानिक हो या अन्यथा, लिंग के प्रसवपूर्व अवधारण या गर्भधारण पूर्व चयन के संबंध में किसी रीति में कोई विज्ञापन जारी, प्रकाशित, वितरित, संसूचित नहीं करेगा या जारी, प्रकाशित, वितरित या संसूचित नहीं करवाएगा ।

(3) ऐसा कोई व्यक्ति, जो उपधारा (1) या उपधारा (2) के उपबंधों का उल्लंघन करेगा, ऐसे कारावास से जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से, जो दस हजार रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए, "विज्ञापन" के अंतर्गत कोई सूचना, परिपत्र, लेबल, आवेष्टक या कोई अन्य दस्तावेज है, जिसके अंतर्गत इलैक्ट्रानिक या मुद्रित रूप में इंटरनेट के या किसी अन्य मीडिया के माध्यम से विज्ञापन भी है तथा इसमें पट्ट विज्ञापन, दीवार-पेंटिंग, संकेत, प्रकाश, ध्वनि, धुंआ या गैस के माध्यम से किया गया कोई दृश्यरूपण भी है ।]

---

[1] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 18 द्वारा (14-2-2003 से) धारा 22 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

23. अपराध और शास्तियां – (1) कोई चिकित्सा आनुवंशिकीविज्ञ, स्त्रीरोग विशेषज्ञ, रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी या कोई व्यक्ति, जो आनुवंशिकी सलाह केन्द्र, आनुवंशिकी प्रयोगशाला या आनुवंशिकी क्लिनिक का स्वामी है या ऐसे केन्द्र, प्रयोगशाला या क्लिनिक में नियोजित है तथा अपनी वृत्तिक या तकनीकी सेवाएं, ऐसे केन्द्र, प्रयोगशाला या क्लिनिक को चाहे वे अवैतनिक आधार पर हों या अन्यथा, प्रदान करता है, और जो इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों के किन्हीं उपबंधों का उल्लंघन करेगा, कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से, जो दस हजार रुपए तक का हो सकेगा और किसी पश्चात्वर्ती दोषसिद्धि पर, कारावास से जिसकी अवधि पांच वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से, जो पचास हजार रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

[1][(2) रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी का नाम समुचित प्राधिकारी द्वारा संबंधित राज्य आयुर्विज्ञान परिषद् को आवश्यक कार्रवाई करने के लिए, जिसके अंतर्गत रजिस्ट्रीकरण का निलंबन, यदि न्यायालय द्वारा आरोप विरचित किए जाते हैं, और मामले के निपटाए जाने तक, और सिद्धदोष ठहराए जाने पर उसके नाम को प्रथम अपराध के लिए पांच वर्ष की अवधि के लिए और पश्चात्वर्ती अपराध के लिए स्थायी रूप से परिषद् के रजिस्टर से हटाया जाना भी है, रिपोर्ट किया जाएगा ।

(3) कोई व्यक्ति, जो किसी आनुवंशिकी सलाह केन्द्र, आनुवंशिकी प्रयोगशाला या आनुवंशिकी क्लिनिक या अल्ट्रासाउंड क्लिनिक या इमेजिंग क्लिनिक की या किसी चिकित्सा आनुवंशिकी विज्ञानी, स्त्रीरोग विशेषज्ञ, सोनोलोजिस्ट, इमेजिंग विशेषज्ञ या रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी या किसी अन्य व्यक्ति की, धारा 4 की उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट प्रयोजनों से भिन्न प्रयोजनों के लिए किसी गर्भवती स्त्री पर लिंग चयन के लिए या प्रसवपूर्व निदान-तकनीक का उपयोग करने के लिए सहायता लेगा, प्रथम अपराध के लिए कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से, जो पचास हजार रुपए तक का हो सकेगा और किसी पश्चात्वर्ती अपराध के लिए, कारावास से जिसकी अवधि पांच वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

---

[1] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 18 द्वारा (14-2-2003 से) उपधारा (2) और उपधारा (3) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(4) शंकाओं को दूर करने के लिए, यह उपबंध किया जाता है कि उपधारा (3) के उपबंध ऐसी स्त्री को लागू नहीं होंगे, जिसे ऐसी निदान-तकनीक कराने या ऐसा लिंग चयन करने के लिए विवश किया गया हो ।]

[1][**24. प्रसवपूर्व निदान-तकनीकों के संचालन की दशा में उपधारणा** – भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) में किसी बात के होते हुए भी, न्यायालय, जब तक प्रतिकूल साबित नहीं कर दिया जाता है, यह उपधारणा करेगा कि गर्भवती स्त्री प्रसवपूर्व निदान-तकनीक का धारा 4 की उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट प्रयोजनों से भिन्न प्रयोजन के लिए उपयोग कराने के लिए, यथास्थिति, उसके पति या किसी अन्य नातेदार द्वारा विवश की गई थी और ऐसा व्यक्ति धारा 23 की उपधारा (3) के अधीन अपराध के दुष्प्रेरण के लिए दायी होगा और उस धारा के अधीन विनिर्दिष्ट अपराध के लिए दंडनीय होगा ।]

25. अधिनियम या नियमों के उन उपबंधों के उल्लंघन के लिए शास्ति जिनके लिए किसी विनिर्दिष्ट दंड का उपबंध नहीं किया गया है – जो कोई इस अधिनियम के या इसके अधीन बनाए गए किन्हीं नियमों के उन उपबंधों का उल्लंघन करेगा, जिनके लिए इस अधिनियम में अन्य किसी शास्ति का उपबंध नहीं है वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन मास तक की हो सकेगी या जुर्माने से, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा या दोनों से और जहां ऐसा उल्लंघन जारी रहता है वहां अतिरिक्त जुर्माने से जो ऐसे प्रत्येक दिन के लिए, जिसके दौरान ऐसा उल्लंघन ऐसे प्रथम उल्लंघन के लिए दोषसिद्धि के पश्चात् जारी रहता है, पांच सौ रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

26. कंपनियों द्वारा अपराध – (1) जहां इस अधिनियम के अधीन दंडनीय कोई अपराध किसी कंपनी द्वारा किया गया है वहां ऐसा प्रत्येक व्यक्ति, जो उस अपराध के किए जाने के समय उस कंपनी के कारबार के संचालन के लिए उस कंपनी का भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था और साथ ही वह कंपनी भी, ऐसे अपराध के दोषी समझे जाएंगे और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने के भागी होंगे :

---

[1] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 18 द्वारा (14-2-2003 से) धारा 24 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

परन्तु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति को दंड का भागी नहीं बनाएगी यदि वह यह साबित कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था या उसने ऐसे अपराध के किए जाने का निवारण करने के लिए सभी सम्यक् तत्परता बरती थी ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन दंडनीय कोई अपराध, किसी कंपनी द्वारा किया गया है और यह साबित हो जाता है कि वह अपराध कंपनी के किसी निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उस अपराध का किया जाना उसकी किसी उपेक्षा के कारण माना जा सकता है वहां ऐसा निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी भी उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने का भागी होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए, –

(क) "कंपनी" से कोई निगमित निकाय अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत फर्म या व्यष्टियों का अन्य संगम है ; और

(ख) फर्म के संबंध में, "निदेशक" से उस फर्म का भागीदार अभिप्रेत है ।

27. अपराध का संज्ञेय, अजमानतीय और अशमनीय होना – इस अधिनियम के अधीन प्रत्येक अपराध संज्ञेय, अजमानतीय और अशमनीय होगा ।

28. अपराधों का संज्ञान – (1) कोई भी न्यायालय, इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध का संज्ञान, –

(क) संबंधित समुचित प्राधिकारी द्वारा अथवा, यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या समुचित प्राधिकारी द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी अधिकारी द्वारा ; या

(ख) ऐसे व्यक्ति द्वारा जिसने अभिकथित अपराध की और न्यायालय में परिवाद करने के अपने आशय की कम से कम [1][पन्द्रह दिन] की सूचना विहित रीति से समुचित प्राधिकारी को दी है,

---

[1] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 21 द्वारा (14-2-2003 से) "तीस दिन" शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

किए गए परिवाद पर ही करेगा, अन्यथा नहीं ।

स्पष्टीकरण – इस खंड के प्रयोजन के लिए "व्यक्ति" के अंतर्गत कोई सामाजिक संगठन है ।

(2) महानगर मजिस्ट्रेट या प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट से भिन्न कोई न्यायालय इस अधिनियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध का विचारण नहीं करेगा ।

(3) जहां कोई परिवाद उपधारा (1) के खंड (ख) के अधीन किया गया है वहां न्यायालय, ऐसे व्यक्ति द्वारा मांग किए जाने पर, समुचित प्राधिकारी को, उसके कब्जे में के सुसंगत अभिलेखों की प्रतियां ऐसे व्यक्ति को उपलब्ध कराने का निदेश दे सकेगा ।

अध्याय 8

प्रकीर्ण

29. अभिलेख का रखा जाना – (1) इस अधिनियम और नियमों के अधीन रखे जाने के लिए अपेक्षित सभी अभिलेखों, चार्टों, प्ररूपों, रिपोर्टों, सहमति पत्रों तथा अन्य सभी दस्तावेजों का, दो वर्ष की अवधि तक या ऐसी अवधि तक, जो विहित की जाए, परिरक्षण किया जाएगा :

परन्तु यदि किसी आनुवंशिकी सलाह केन्द्र, आनुवंशिकी प्रयोगशाला या आनुवंशिकी क्लिनिक के विरुद्ध कोई दांडिक या अन्य कार्यवाही संस्थित की जाती है तो ऐसे केन्द्र, प्रयोगशाला या क्लिनिक के अभिलेखों और अन्य सभी दस्तावेजों का ऐसी कार्यवाही के अंतिम निपटारे तक परिरक्षण किया जाएगा ।

(2) ऐसे सभी अभिलेख, सभी युक्तियुक्त समयों पर, समुचित प्राधिकारी को या समुचित प्राधिकारी द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी अन्य व्यक्ति को निरीक्षण के लिए उपलब्ध कराए जाएंगे ।

30. तलाशी लेने और अभिलेखों, आदि के अभिग्रहण करने की शक्ति – [1][(1) यदि समुचित प्राधिकारी के पास यह विश्वास करने का कारण है कि इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध, किसी आनुवंशिकी

---

[1] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 22 द्वारा (14-2-2003 से) उपधारा (1) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

सलाह केन्द्र, आनुवंशिकी प्रयोगशाला या आनुवंशिकी क्लिनिक या किसी अन्य स्थान में किया गया है या किया जा रहा है तो ऐसा प्राधिकारी या इस निमित्त प्राधिकृत कोई अधिकारी, ऐसे नियमों के अधीन रहते हुए, जो विहित किए जाएं, सभी युक्तियुक्त समयों पर, ऐसे आनुवंशिकी सलाह केन्द्र, आनुवंशिकी प्रयोगशाला, आनुवंशिकी क्लिनिक या किसी अन्य स्थान में, ऐसी सहायता के साथ, यदि कोई हो, जैसी ऐसा प्राधिकारी या अधिकारी आवश्यक समझे, प्रवेश कर सकेगा और तलाशी ले सकेगा और वहां पाए गए किसी अभिलेख, रजिस्टर, दस्तावेज, पुस्तक, पुस्तिका, विज्ञापन या किसी अन्य भौतिक पदार्थ की परीक्षा कर सकेगा और उसे अभिगृहीत और मुहरबंद कर सकेगा, यदि ऐसे प्राधिकारी या अधिकारी के पास यह विश्वास करने का कारण है कि उससे इस अधिनियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध के किए जाने का साक्ष्य मिल सकता है ।]

(2) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के तलाशी और अभिग्रहण से संबंधित उपबंध, जहां तक हो सके, इस अधिनियम के अधीन ली गई प्रत्येक तलाशी या अभिग्रहण को लागू होंगे ।

31. सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण – इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसरण में सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात के लिए कोई भी वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या समुचित प्राधिकारी अथवा केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा या प्राधिकारी द्वारा प्राधिकृत किसी अधिकारी के विरुद्ध नहीं होगी ।

[1][**31क. कठिनाइयों का दूर किया जाना** – (1) यदि प्रसवपूर्व निदान-तकनीक (विनियमन और दुरुपयोग निवारण) संशोधन अधिनियम, 2002 के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा, ऐसे उपबंध बना सकेगी, जो उक्त अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हों, और जो उक्त कठिनाई को दूर करने के लिए उसे आवश्यक या समीचीन प्रतीत हों :

परंतु इस धारा के अधीन ऐसा कोई आदेश प्रसवपूर्व निदान-तकनीक (विनियमन और दुरुपयोग निवारण) संशोधन अधिनियम, 2002 के प्रारंभ की तारीख से तीन वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् नहीं किया

---

[1] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 23 द्वारा (14-2-2003 से) अंत:स्थापित ।

जाएगा ।

(2) इस धारा के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश, उसके किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जा सकेगा ।]

32. नियम बनाने की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसे नियमों में निम्नलिखित के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात :–

[1][(i) धारा 3 की उपधारा (2) के अधीन किसी रजिस्ट्रीकृत आनुवंशिकी सलाह केंद्र, आनुवंशिकी प्रयोगशाला या आनुवंशिकी क्लिनिक में नियोजित व्यक्तियों के लिए न्यूनतम अर्हताएं ;

(iक) वह रीति, जिसमें धारा 4 की उपधारा (3) के परंतुक के अधीन किसी गर्भवती स्त्री पर पराश्रव्य लेखन करने वाला व्यक्ति क्लिनिक में उसका अभिलेख रखेगा ;]

(ii) वह प्ररूप जिसमें गर्भवती स्त्री की धारा 5 के अधीन सहमति अभिप्राप्त की जानी है ;

(iii) धारा 8 की उपधारा (4) के अधीन केन्द्रीय पर्यवेक्षण बोर्ड के सदस्यों द्वारा अपने कृत्यों के निर्वहन में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया ;

(iv) पदेन सदस्यों से भिन्न सदस्यों को धारा 9 की उपधारा (5) के अधीन अनुज्ञेय भत्ते ;

[2][(ivक) आनुवंशिकी सलाह केन्द्र, आनुवंशिकी प्रयोगशाला और आनुवंशिकी क्लिनिकों में कार्यरत व्यक्तियों द्वारा पालन की जाने वाली आचार संहिता जिसे धारा 16 के खंड (iv) के अधीन केन्द्रीय पर्यवेक्षण बोर्ड द्वारा अधिकथित किया जाएगा ;

(ivख) वह रीति जिसमें राज्य और संघ राज्यक्षेत्र पर्यवेक्षण बोर्डों

---

[1] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 22 द्वारा (14-2-2003 से) खंड (i) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 2003 के अधिनियम सं. 14 की धारा 24 द्वारा (14-2-2003 से) अंत:स्थापित ।

द्वारा धारा 16क की उपधारा (1) के खंड (iv) के अधीन उक्त अधिनियम के अधीन राज्य में किए गए विभिन्न क्रियाकलापों के संबंध में बोर्ड और केन्द्रीय सरकार को रिपोर्ट दी जाएगी ;

(ivग) धारा 17क के खंड (घ) के अधीन किसी अन्य मामले में समुचित प्राधिकारी को सशक्त करना ;]

(v) धारा 17 की उपधारा (8) के परन्तुक के अधीन सलाहकार समिति के किन्हीं दो अधिवेशनों के बीच की अवधि ;

(vi) वे निबंधन और शर्तें जिनके अधीन रहते हुए किसी व्यक्ति को सलाहकार समिति में नियुक्त किया जा सकेगा और ऐसी समिति द्वारा धारा 17 की उपधारा (9) के अधीन अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया ;

(vii) वह प्ररूप जिसमें और रीति जिससे धारा 18 की उपधारा (2) के अधीन रजिस्ट्रीकरण के लिए आवेदन किया जाएगा और उसके लिए संदेय फीस ;

(viii) धारा 18 की उपधारा (5) के अधीन आनुवंशिकी सलाह केन्द्र, आनुवंशिकी प्रयोगशाला या आनुवंशिकी क्लिनिक द्वारा प्रदान की जाने वाली सुविधाएं, अनुरक्षित किए जाने वाले उपस्कर और बनाए रखे जाने वाले अन्य मानक ;

(ix) वह प्ररूप जिसमें धारा 19 की उपधारा (1) के अधीन, रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र दिया जाएगा ;

(x) वह रीति जिससे और वह अवधि जिसके पश्चात् धारा 19 की उपधारा (3) के अधीन रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र का नवीकरण किया जाएगा और ऐसे नवीकरण के लिए संदेय फीस ;

(xi) वह रीति जिससे धारा 21 के अधीन अपील की जा सकेगी ;

(xii) वह अवधि जिस तक धारा 29 की उपधारा (1) के अधीन अभिलेखों, चार्टों, आदि का परिरक्षण किया जाएगा ;

(xiii) वह रीति जिससे दस्तावेज, अभिलेख, सामग्री आदि का अभिग्रहण किया जाएगा और वह रीति जिससे अभिग्रहण सूची तैयार की जाएगी तथा उस व्यक्ति को दी जाएगी जिसकी अभिरक्षा से ऐसे दस्तावेज, अभिलेख या सामग्री धारा 30 की उपधारा (1) के अधीन

अभिगृहीत की गई थी ;

(xiv) कोई अन्य विषय जो विहित किया जाना अपेक्षित है या विहित किया जाए ।

33. विनियम बनाने की शक्ति – बोर्ड, केन्द्रीय सरकार की पूर्व मंजूरी से, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, ऐसे विनियम, जो इस अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों से असंगत न हों, निम्नलिखित का उपबंध करने के लिए बना सकेगा, अर्थात् :–

(क) धारा 9 की उपधारा (1) के अधीन बोर्ड के अधिवेशनों का समय और स्थान तथा ऐसे अधिवेशनों में कारबार के संव्यवहार के लिए अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया तथा उन सदस्यों की संख्या जिनसे मिलकर गणपूर्ति होगी ;

(ख) वह रीति जिससे कोई व्यक्ति धारा 11 की उपधारा (1) के अधीन बोर्ड के साथ अस्थायी रूप से सहयोजित किया जा सकेगा ;

(ग) धारा 12 के अधीन नियुक्त बोर्ड के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति का ढंग, सेवा की शर्तें तथा वेतनमान और भत्ते ;

(घ) साधारणत: बोर्ड के कार्यकलापों का दक्ष संचालन ।

34. नियमों और विनियमों का संसद् के समक्ष रखा जाना – इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम और प्रत्येक विनियम बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन, उस नियम या विनियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम या विनियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु उस नियम या विनियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

कार्यालय आदेश तारीख 13 फरवरी, 2017 के अनुसार विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पाठ्य पुस्तकों पर छूट देने की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम व प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पुस्तक की मुद्रित कीमत (रुपयों में)	7 वर्ष से पुराने संस्करण पर 35% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	8 से 15 वर्ष पुराने संस्करण पर 50% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	15 वर्ष से अधिक पुराने संस्करण पर 75% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)
1.	भारत का विधिक इतिहास - श्री सुरेन्द्र मधुकर - 1989	30	—	—	8
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि - डा. एन. वी. परांजपे - 1990	40	—	—	10
3.	वाणिज्य विधि - डा. आर. एल. भट्ट - 1993	108	—	—	27
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धांत - श्री शर्मन लाल अग्रवाल - 1993	40	—	—	10
5.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय - डा. एस. सी. खरे - 1996	115	—	—	29
6.	श्रम विधि - श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा - 1996	452	—	—	113
7.	संविदा विधि - डा. रामगोपाल चतुर्वेदी - 1998	275	—	—	69
8.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान - डा. सी. के. पारिख - 1999	293	—	—	74
9.	आधुनिक पारिवारिक विधि - श्री राम शरण माथुर - 2000	429	—	—	108
10.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) - विधि साहित्य प्रकाशन - 2000	225	—	—	57
11.	हिन्दू विधि - डा. रवीन्द्र नाथ - 2001	425	—	—	106
12.	भारतीय भागीदारी अधिनियम - श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ - 2001	165	—	—	41
13.	प्रशासनिक विधि - डा. कैलाश चन्द्र जोशी - 2001	200	—	—	50
14.	भारतीय दंड संहिता - डा. रवीन्द्र नाथ - 2002	741	—	—	185
15.	विधिक उपचार - डा. एस. के. कपूर - 2002	311	—	—	78
16.	विधि शास्त्र - डा. शिवदत्त शर्मा - 2005	580	—	290	—
17.	मानव अधिकार - डा. शिवदत्त शर्मा - 2006	120	—	60	—

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-**110001**

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105